

मुद्रक:—
श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
चौमुखीपुल, रतलाम.

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे,

जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला।

अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,

धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः॥

सहायकगण की शुभ नामावली



दिवाकर दिव्य ज्योति के नाम से स्व० श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित रत्न मुनि श्री चोथमलजी महाराज के प्रभाव-शाली व्याख्यान सीरीज रूप मे प्रकाशित कराने के लिए निम्न लिखित महानुभावो ने सहायता देकर अपूर्व लाभ लिया, इसके रुपये:—

१००१)	श्री श्वे. स्था. जैन महावीर मण्डल,	उदयपुर
५०१)	श्रीमान् सेठ सिरेमलजी नन्दलालजी पितलिया,	सिहोर की छावनी
५००)	श्रीमान् सेठ गुलराजजी पूनमचन्दजी,	मदनगंज
३००,	,, ,, चोथमलजी सुराणा,	नाथद्वारा
२५०)	,, ,, कुंवर मदनलालजी सचेती, ब्यावर	ब्यावर
	,, ,, सेठ जीवराजजी कोठारी	नसीराबाद
२०१)	,, ,, साहबलालजी मेहता फर्म गुलाबचन्द भंवरलाल महता धानमडी,	उदयपुर
२००)	,, ,, शम्भूमलजी गगारामजी बंबई फर्म की तरफ से श्रीमान् सेठ केवलचंदजी सा. चौपड़ा	सोजत सीटी
१५१)	,, ,, चन्दनलालजी मरलेचा गुलाबजार, बैंगलोर	कैंट
१५१)	,, ,, गेंदालालजी मोतीलालजी सा. पोरवाड़	इन्दौर

१५१) श्रीमान सेठ हजारीमलजी चंपालालजी सगरावत
मु. निम्बाहेड़ा (रोज,

१५०) ,, ,, राजमलजी नन्दलालजी भुसावल

१५०) ,, ,, हस्तीमलजी जेठमलजी, जोधपुर

१२१) ,, ,, कन्हैयालालजी कोटेचा की धर्मपत्नी सौभाग्यवती सूरजबाई कोटेचा फर्म कन्हैयालाल चाँदमल कोटेचा, बोदवड़ (पू खा.)

१२५) ,, ,, जिनगर अमरचन्दजी इन्द्रमलजी गोतमचंदजी जैन गंगापुर

१२५) ,, ,, कस्तूरचन्दजी पूनमचन्दजी जैन, गंगापुर

१२५) ,, ,, ठेकेदार तोलारामजी भंवरलालजी उदयपुर

१२५) ,, ,, धनराजजी फतहलालजी, उदयपुर

१२५) ,, ,, श्रीमती सौभाग्यवती तारादेवीबाई कोटेचा, फर्म श्रीमान् सेठ मांगीलालजी केसरीचंदजी कोटेचा. भुसावल (पू० खा०)

१०१) ,, ,, श्रीमान् सेठ रगलालजी झामड़ नादूंरा वाले की धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती तुलसी बाई नादूंरा (बरार)

१०१) श्रीमान् जिनगर तेजमलजी रोशनलालजी गंगापुर (मेवाड़)

१०१) ,, पन्नालालजी बाफणा की पूज्य मातेश्वरी मोहनबाई उदयपुर

१०१) श्रीमान् सेठ मोतीचन्दजी रतनचन्दजी चोरड़िया
मु० कटंगी (बालाघाट)

१०१) ,, ,, गणेशलालजी भँवरलाल पंसारी कोटा

१०१) ,, ,, अमोलकचंदजी बोहरा फर्म रखबचंदजी लालचंदजी जैन रामगंज मंडी

१०१) ,, ,, श्रीमान् सेठ जसराजजी मोहनलालजी बोहरा, मु० सोरापुर भंडार

१०१) श्रीमान् सेठ सूरजमलजी सा० बोथरा
फर्म कन्हैयालालजी इन्द्रमलजी जैन,
मु० रामगंज मन्डी

१०१ सौ० पार्वतीबाई फर्म उत्तमचंद नवलचन्द एन्ड सन्स
बरड़िया जलगांव (पू० खा०)

१०१) श्रीमान् सेठ रतनलालजी गांग के सुपुत्र पोपटलालजी की
धर्मपत्नी श्रीमती शान्तिबाई मु० चीचखेडा ता.
जामनेर पो. फतहपुर (पू. खा.)

१०१) श्रीमान् सेठ गणेशमलजी छत्तीसा बोहरा की धर्मपत्नी
श्रीमती सौ० पानबाई, खामगांव

१०१) ,, ,, मगनीरामजी हणुमतमलजी झामड तर्फे
श्रीमान् उत्तमचंदजी रतनलालजी झामड़
मु० खामगांव (बरार)

१०१) ,, ,, रामचन्द्रजी बोथरा अपने स्व० पूज्य पिताजी
सेठ घासीरामजी की स्मृति मे तांदली (बरार)

१०१) ,, ,, धनराजजी हीरालालजी जैन खटोड़ मेड़सीवाला
मु० पो० अकोला (बरार)

१०१) ,, ,, रामानन्दजी मोतीलालजी जांगड़ा
धामणगांव वरोरा (म. प्र.)

२०१ , ,, मांगीलालजी चोरड़िया की धर्मपत्नी
श्रीमती राजीबाई बरोरा (म. प्र)

१०१) ,, ,, भेरुलालजी अणतमलजी वरोरा (म. प्र.)

१०१) ,, ,, सागरमलजी राजमलजी बोहरा
चन्दनखेड़ा वाला बरोरा (म. प्र.)

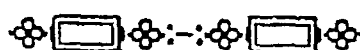
१०१) श्रीमान सेठ गणेशमलजी गुलाबचंदजी गोठी बरोरा (म.प्र.)

१०१) ,, मोहनलालजी मदनलालजी कोटेचा,
अड़ेगांव वाला (वणी) बरार

१०१) श्रीमान् बालचंदजी ताराचंदजी कोटेचा मु० वणी (बरार)
१०१) ,, चुन्नीलालजी के सुपुत्र स्व. पानमलजी चोरड़िया, की धर्मपत्नी श्री ताराबाई मु० वणी (बरार)
१०१) ,, मुलतानमलजी बलवन्तरामजी खींचा मु० सावरगांव (बरार)
१००) ,, प्राणलालजी सा. साखला, उदयपुर
१२१) ,, माणकचंदजी छगनलालजी गोठी, जयपुर
१०१) ,, जवाहरमलजी मुलतानमलजी बम्ब, भुसावल
५०१) ,, हीरालालजी मोतीलालजी धानेचा बोहरा खामगांव
१०१) ,, मिश्रीमलजी पारसमलजी कातरेला, बैंगलोर सिटी
१०१) ,, कन्हैयालालजी वच्छराजजी सुराणा, बागलकोट
१०१) ,, नवरतनमलजी सिंघवी फूलियाकलां
१०१) ,, मन्नालालजी भेरूलालजी पोरवाड़, राजाखेड़ी वाला, मन्दसौर
१०१) ,, लालचंदजी मोतीलालजी ललवानी तोंडापुर (खानदेश) स्वर्गीय पिताजी प्रतापमलजी की स्मृति में
१०५) ,, बसंतीलालजी सुन्दरलालजी जैन पिपलिया
१०१) ,, देवराजजी जीतमलजी बीजापुर
१०१) ,, जीवराजजी महता की धर्म पत्नी चन्द्रकलाबाई पूना
१०१) ,, रतनचंदजी सेसमलजी, बांद्रा बम्बई
१०१) ,, शम्भुमलजी माणकचंदजी चोरड़िया मद्रास
१०१) ,, कुन्दनमलजी पुखराजजी लूंकड बैंगलोर



प्रधान मंत्रीजी म. का अभिप्राय



आत्म-विकास और जीवन प्रगति का सुन्दर एवं सरल मार्ग है सन्त समागम, महापुरुषो के द्वारा उपदिष्ट वाणी को श्रवण और चिन्तन-मनन करते हुए मार्ग पर गति करना। जो महापुरुष इस भौतिकवाद से भरी-पूरी और अज्ञान अन्धकार एवं विकारो से परिप्लावित संसार अटवी में—आध्यात्मिक ज्ञानालोक का साक्षात्कार पा चुके है, उनके अन्तर हृदय से प्रस्फुटित उद्गार और स्नेह-रस भरित वचनामृत, वर्तमान युग के साधक के लिए ज्योति-स्तम्भ रूप है और उससे हम अपने जीवन-निर्माण में अलभ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

प्राणी-जगत के विकास में सन्तों का महत्त्व पूर्ण हाथ रहा है। उनके दिव्य-प्रकाश से प्रकाशमान होकर अनंत प्राणियों ने अपना हित साधा है और साधते जा रहे है। मनुज में मनुजत्व, इन्सानियत, अमरत्व और ईश्वरत्व का साक्षात्कार कराने वाले संत-सत्पुरुष ही होते हैं। संतों का हृदय उदार एवं विराट होता है। उनके जीवन में जाति, देश और सम्प्रदाय भेद की भित्तिका नहीं होती है और न घृणित तथा संकीर्ण मनोभावना ही होती है। उनके अन्तर मानस मे समस्त प्राणी-जगत् के हित की दिव्य एवं भव्य भावना लहराती रहती है और वे प्रति-क्षण स्व और पर के हित साधन मे लगे रहते हैं।

स्व. प्रसिद्ध वक्ता, जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. सा. उन सन्तों मे से थे, जिन्होंने अपना जीवन आत्म-साधना मे लगा रक्खा था। उनकी व्याख्यान शैली और बोलने की कला अपने ढंग की निराली ही थी। गहन से गहन विषय को भी सुगमता से जन--जन के हृदय में ठसा देने को उनके जीवन में अद्भुत शक्ति थी। जिससे श्रोता के हृदय पर सीधा असर होता और वे त्यागप्रत्याख्यान की ओर कदम उठाते थे। आपके उपदेशों से अनेक राजा महाराजाओं ने मूक जीवों की रक्षा करके अभयदान दिया था।

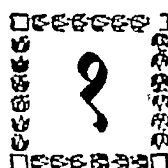
श्री स्व. दिवाकरजी म. के प्रवचन सर्वजनोपयोगी होते थे, आबाल--वृद्ध सभी जन उनके उपदेशों से लाभ उठाते थे। आप उर्दू, फारसी एवं हिन्दी भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे।

दिवाकर दिव्य--ज्योति उसी महापुरुष के अन्तर हृदय से प्रस्फुटित वाणी का संकलन है। इसके चवदह भाग पहले पाठकों के हाथ में पहुँच कर भव्य प्राणियों को मार्ग दिखा रहे हैं। यह पन्द्रहवाँ भाग भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। आशा है पाठक वृन्द आचरण के क्षेत्र में मूर्त रूप देकर अपने जीवन का विकास करेंगे।

ता. ७-१-५६
कुन्दन भवन
ब्यावर

श्री वर्द्ध स्था. जैन श्रमण संघ के प्रधान मंत्री
श्री आनन्द ऋषिजी म. सा. की आज्ञा से
—भानु ऋषि 'शास्त्री'

विषयानुक्रमणिका



गुण-गौरव



स्तुतिः—

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद—
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥

भगवान् ऋषभदेव जी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे नाथ ! आपकी स्तुति करने से आत्मा के समस्त दोषों एव पापों का नाश हो जाता है। यह समझ कर मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ। यद्यपि मेरी बुद्धि बहुत अल्प है।

आपके गुणों का स्तवन करने की क्षमता उसमें नहीं है। फिर भी आपके माहात्म्य के प्रभाव से वह सन्त जनों के हृदय को रुचिकर होगी। यह स्तवन सत्पुरुषों को प्रिय लगेगा तो इसका कारण स्तोता नहीं, स्तुत्य ही होगा। जल का छोटा-सा बिन्दु जब कमलिनी के पत्र पर पड़ता है तो ऐसा चमकने लगता है, जैसे मोती हो! जल के बिन्दु में यह जो चमक आ जाती है, उसका कारण कमलिनी है। इसी प्रकार इस स्तवन में यदि सुन्दरता आएगी तो आपके प्रभाव से ही आएगी।

भाइयो! यह स्तुति आचार्य मानतुंगजी ने रची है। इसकी शब्दरचना और इसके भावसौन्दर्य को देखकर यही अनुमान होता है कि आचार्य महाराज बड़े भक्त और विद्वान् कवि थे। फिर भी वह अपने आपको अल्पबुद्धि कहते हैं। अपनी सुन्दर रचना का श्रेय स्वयं नहीं लेना चाहते। उसे भगवान् को समर्पित करते हैं। कहते हैं कि स्तुति में अगर कोई अच्छाई है तो भगवान् ऋषभदेव के अलौकिक गुणों की बदौलत ही है। मेरी बदौलत नहीं। उनका इस प्रकार कहना ही सूचित करता है कि वे भगवान् के परम भक्त थे। उनमें अभिमान या अहंकार लेश मात्र नहीं था। जहाँ अहंकार होता है वहाँ सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। भक्त वही है जो अपने आपको भगवान् के चरणों मे पूरी तरह समर्पित कर देता है। जो अपने 'अहम्' को विसर्जित कर देगा, वही भक्त बन सकेगा। जिसने अपने को भगवान् से पृथक् समझा, वह अलग ही रह गया समझो! वह परमात्मा के स्वरूप में लीन नहीं हो सकता।

जिन ऋषभदेव भगवान् की स्तुति की ऐसी महिमा है, उन प्रभु को मेरा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! अपनी आत्मा को गुणवान् बनाना है तो भगवान् के गुणों का कीर्त्तन करो, चिन्तन करो, और फिर यह अनुभव करने का प्रयत्न करो कि वही गुण मेरी आत्मा में भी विद्यमान हैं। भगवद्गुणों के साथ आत्मिकगुणों की समता का विचार करोगे तो धीरे-धीरे आत्मा को ही परमात्मस्वरूप अनुभव करने लगोगे।

अपने जीवन-कमल में सद्गुणों के सौरभ को विकसित करने के लिए गुणग्राहक दृष्टि का विकास करना चाहिए। सृष्टि में जितने भी पदार्थ हैं, उनमें कुछ गुण होते हैं और कुछ अवगुण-दोष भी होते हैं। एकान्त गुणमय या एकान्त दोषमय कोई वस्तु नहीं है। इसके अतिरिक्त गुण और दोष के बीच में निर्णायक रेखा खींच सकना भी सरल नहीं है। वस्तु का एक ही धर्म किसी काल में गुण प्रतीत होता है और दूसरे काल में वही दोष बन जाता है। शीतकाल में जब कड़ाके की सर्दी पड़ रही हो तो ऊनी वस्त्र गुणकारक होते हैं। वही ग्रीष्मऋतु आने पर दोष रूप बन जाते हैं।

उसके सिवाय किसी वस्तु का एक ही धर्म एक व्यक्ति के लिए गुण तो दूसरे व्यक्ति के लिए दोष बन जाता है। एक बीमार के लिए दही प्राणघातक हो सकता है और दूसरे के लिए वही जीवनदाता भी हो जाता है। यह बात तो सभी सरलता से समझ सकते हैं।

ऐसी स्थिति में गुण और दोष की विवेचना करने का काम आसान नहीं है। एक नीतिकार कहते हैं—

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति,
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ॥

भाइयो ! जैसी दृष्टि तैसी सृष्टि ! गुणी जन, जो गुणों की परख करना जानते हैं, वही गुणों को ठीक-ठीक पहचान सकते हैं। निर्गुण क्या जाने गुणों की महत्ता को ? उसके लिए तो गुण भी अवगुण बन जाते हैं। एक श्रीमंत उदारहृदय है। खुले हाथों परोपकार के कार्यों में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करता है। विवेकवान् उसकी उदारता की सराहना करते हैं। परन्तु किसी कृपण से उसके विषय में पूछिए। वह कहेगा—अजी उड़ाऊ है उड़ाऊ ! इसके हाथ में शनीचर है ! पैसा ठहरता ही नहीं। बाप-दादाओं की पूंजी को उड़ाकर बाबा बन जाने की तैयारी कर रहा है !

लीजिए, एक ओर उसकी दानवीरता का गुणगान होता है तो दूसरी ओर कृपणमण्डल की ओर से उसे यह मानपत्र मिलता है !

ऐसी स्थिति में आपकी जीवननीति क्या होनी चाहिए ? यदि आपको गुणवान् बनना है तो आपके लिए एक ही मार्ग है और वह यही कि आप दूसरे के गुणों को दोष का रूप न दें और गुणों को ही ग्रहण करें। दूसरों के गुणों को ग्रहण करने वाला गुणों का भण्डार बन जाता है और दोषों को ग्रहण करने वाला दोषी बन जाता है। यह एक निश्चित तथ्य है। अब आप ही सोच लो कि आपको क्या बनना है ?

एक स्त्री किसी से बातें करती तो मुँह बाँका करके बोलती थी। एक आदमी उसकी नकल करने लगा। उसने

उपहास ही उपहास में नकल करना शुरु किया था, किन्तु वह दुर्गुण उसमें घर कर गया और वह भी मुँह बाँका करके बोलने लगा।

कोई औरत की चाल देखकर नकल करता है तो कालान्तर में वह भी वैसा ही चलने लगता है।

दूसरे की अच्छी बात सीखोगे तो तुम्हारे अन्दर भी अच्छी बात आएगी और दुर्गुण की तरफ देखोगे तो तुममें भी दुर्गुण आजाएँगे। अपने दृष्टिकोण का विचार करो। यदि ऊँची दृष्टि से तुम किसी को देखोगे तो दूसरा भी तुम्हें ऊँची निगाह से देखेगा। अतएव तुम्हें अच्छा बनना है तो अच्छाई ग्रहण करो। मत समझो कि दूसरों के पास बुराई ही बुराई है अच्छाई भी है। अच्छाई को देखने के लिए तुम्हारी दृष्टि में अच्छाई होनी चाहिए। जैसे रंग का चश्मा लगाओगे, वैसे ही रंग की वस्तुएँ दिखाई देने लगेंगी। बबूल में काँटे भी हैं, पर आदमी कहता है:—

औगुण नर धारया नहीं जो होवे वृक्ष बंबूल।

अरे बबूल में काँटे हैं तो रहने दो। तुम्हें उनसे क्या मतलब है? तुम तो घबराए हुए आये हो। तुम्हें छाया से प्रयोजन है! वह ले लो।

कइयों में ऐसी आदत हो जाती है कि वे गुण तो ग्रहण नहीं करते और दोषों की ही खोज में रहते हैं। दोष मिल गयो तो उसे चट से ले लेते हैं। नहीं मिलता तो उसके गुण को ही दोष मानकर उसे दोष रूप में ग्रहण कर लेते हैं।

किसी राजा ने एक बन्दर पाला। राजा के पास मोतियों की कमी नहीं थी। शौक ही तो ठहरा कि राजा ने बंदर के एक-एक बाल में मोती पिरो दिये। उस बन्दर के पास दूसरा बन्दर आया। उसने मोती तोड़-तोड़ फैंक दिये और जुएँ बीन-बीन कर खाने लगा। बेचारा बन्दर मोतियों का मूल्य क्या जाने? इसी प्रकार दुर्गुण को अच्छाई पसंद नहीं आती। वह तो बुराई को ही पसंद करता है।

मगधसम्राट् श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार की अनार्य देश के राजकुमार आर्द्रक के साथ मित्रता थी। एक बार अभयकुमार ने अपने मित्र के पास कोई सुन्दर उपहार भेजने का विचार किया। वह सोचने लगा-मित्र आर्द्रक को क्या वस्तु उपहार में भेजी जाय? खाने-पीने और ऐश-आराम की चीजें तो सभी सब को भेजते हैं। उनके भेजने में कोई विशेषता नहीं है। कोई मौलिकता होनी चाहिए। सोचते-सोचते अभयकुमार ने निश्चय कर लिया कि मैं अपने मित्र को आसन, प्रमार्जनिका, माला और मुखवस्त्रिका भेजूँ। उसने यही धर्मोपकरण आर्द्रक के पास उपहार में भेज दिये।

आर्द्रकुमार ने इन उपकरणों को देखा तो वह समझ न सका कि इनकी उपयोगिता क्या है? किस उद्देश्य से मेरे मित्र ने यह भेजी हैं? परन्तु उसे विश्वास था कि इनका कुछ विशेष अभिप्राय अवश्य होना चाहिए।

विचार करते-करते उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। उसने अब समझ लिया कि यह सब धर्म के उपकरण हैं। मेरे मित्र ने उपहार में धर्मोपकरण देकर मुझे धर्म का आचरण करने का संकेत किया है। यह संकेत सर्वथा उचित

है। मनुष्य मानवभव पाकर अगर धर्म नहीं करता तो मनुष्य होना वृथा है। उसके और पशु-पक्षी के जीवन में कुछ भेद नहीं रह जाता !

आर्द्रक ने गंभीर विचार किया। पूर्व भव के जो संस्कार सुप्त थे, वे जागृत हो उठे। उसने सोचा कि इस देश में तो साधु आते नहीं है और आर्यावर्त्त में तीर्थंकर, ऋषि, मुनि होते हैं। वहीं मुझे चलना चाहिए। वहीं सच्चा मार्ग दिखलाने वाले मिल सकते हैं। ऐसा विचार करके आर्द्रक चल दिये।

रास्ते में गोशालक, जिसने भगवान् महावीर स्वामी से अलग होकर नया पंथ चला लिया था, आर्द्रकुमार को मिल गया। गोशालक ने सोचा-आर्द्रकुमार रईस का लड़का है। यह मेरे पंथ में आ जायगा तो मेरे पंथ की महत्ता बढ़ जायगी। अतएव गोशालक राजकुमार से मिला और पूछने लगा—राजकुमार, कहाँ जा रहे हो?

आर्द्र—मैं ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर के पास जा रहा हूँ।

गोशालक—किस प्रयोजन से जा रहे हो?

आर्द्र—जीवन की सही राह तलाश करने।

गोशालक—अजी, वहाँ कहाँ है सही राह! मैं बहुत दिनों तक महावीर के पास रह चुका हूं और उनकी सब बातें जानता हूँ।

आर्द्र०—बतलाओगे, क्या जानते हो ?

गोशालक—क्यों नहीं ? देखो महावीर पहले अकेले रहते थे। अकेले ही विचरते थे। आत्मा को लक्ष्य बना कर ध्यान और तप किया करते थे। पर अब अपना सारा ढङ्ग बदल लिया है। अब जहाँ जाते हैं, वहीं चेले मुंडते फिरते हैं। हजारों चेले बना लिये हैं। चेलियों की सेना भी इकट्ठी कर रक्खी है। राजकुमार, विचार करो कि महावीर के इस परस्पर विरोधी आचरण का क्या हेतु है ? यदि अकेले रहने में धर्म है तो अब चेले क्यों बनाते हैं ? और यदि चेले बनाने में धर्म है तो पहले अकेले क्यों रहते थे ? इस असंगति का कारण क्या है ?

गोशालक की यह वक्तृता सुनकर आर्द्रकुमार ने कहा—गोशालक ! आपकी दृष्टि में असंगति है, भगवान् महावीर के व्यवहार में किसी भी प्रकार की असंगति नहीं है। पहले वे एकाकी रहते थे, क्योंकि उन्हें केवलज्ञान नहीं हुआ था। जब सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये तो उपदेश देने लगे। इसमें असंगति क्या है ?

जब तक तीर्थंकर भगवान् केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक वे उपदेश नहीं देते। सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही वे उपदेश देते हैं। इसी कारण उनका उपदेश सत्य होता है। अल्पज्ञ अवस्था में स्वच्छन्दतापूर्वक दिया हुआ उपदेश कल्याण का कारण न बन कर अकल्याण का कारण बन जाता है। जो स्वयं पूरी तरह प्रकाश में न आया हो, वह दूसरों को प्रकाश नहीं दे सकता। भगवान् जब तक सर्वज्ञ नहीं हो गए, तब तक उन्होंने उपदेश नहीं दिया। इससे तो भगवान् के उपदेश की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता ही प्रकट होती है।

परन्तु दोषदर्शी गुणों को भी दोष के रूप मे कल्पित कर लेता है। गोशालक को भगवान् का यह गुण भी दोष प्रतीत हुआ! उसे समझना चाहिए था कि भगवान् महावीर ने छद्मस्थ अवस्था मे धर्मोपदेश न देकर सर्वज्ञावस्था मे उपदेश दिया, अतएव उनका उपदेश सत्य, तथ्य और पथ्य है; परन्तु उसने विपरीत ही समझा!

एक डॉक्टर के पास कोई बीमार गया। उसने कहा-मुझे बुखार आता है। दवा दीजिए। डाक्टर ने एक गोली देकर कहा—इसे खा लो, आज ही बुखार चला जायगा।

रोगी ने पूछा-डाक्टर साहब! आप कॉप क्यों रहे है?

डाक्टर ने कहा—क्या बताऊँ, मुझे पन्द्रह दिन से बुखार आ रहा है।

अब कहिए, क्या बीमार को इस डाक्टर की गोली पर विश्वास आ सकता है? जो डाक्टर स्वयं अपना रोग दूर करने में असमर्थ है, वह दूसरो का रोग कैसे दूर कर सकेगा? डाक्टर को स्वयं नीरोग होना चाहिए।

हाँ, तो भगवान् महावीर जब तक केवलज्ञानी नहीं हुए, तब तक उन्होने किसी को उपदेश नहीं दिया। जब केवलज्ञानी हो गए और समस्त तत्त्वों को पूर्ण रूप से जानने लगे, तीन लोक और तीन काल के सब पदार्थ हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष देखने लगे, तब उन्होंने दूसरों को ज्ञान देना आरंभ किया और तभी चेला-चेली बनाए।

चेला-चेली बनाने में भगवान् का कोई स्वार्थ नही था। वे तो संसार के जीवों को तारने के लिए तिरने का मार्ग बतलाने

के लिए उपदेश देते है। उपदेश सुन कर जो तिरना चाहता है, उसे भगवान् तिरने के मार्ग पर लगा देते हैं। उनके कल्याण-साधन मे निमित्त बन जाते हैं।

कहा जा सकता है कि यदि भगवान् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने से पहले उपदेश नहीं देते तो आपको भी उपदेश नहा देना चाहिए। आप जब केवलज्ञान प्राप्त कर लें तभी उपदेश देना ! किन्तु भाइयो ! हम अपनी ओर से कहाँ उपदेश देते हैं ? अपनी निज को कल्पना या बुद्धि से हम किसी चीज़ का उपदेश नहीं देते। हम तो केवलज्ञानी के ही उद्गार सुनाते हैं। हमको केवलज्ञानी प्रभु की जो वाणी प्राप्त हुई है, उस वाणी को जिस रूप मे हमने समझा है, वही श्रोताओं के सामने रख देते है। उसमे हमारी निज की कोई कल्पना नहीं है। स्वच्छन्द बुद्धि से दिया गया छद्मस्थ का उपदेश अकल्याणकर होता है। अतएव हम स्वच्छंद भाव से कुछ नही कहते। हम तो भगवान् महावीर के संदेशवाहक है। उनके उपदेशो का शास्त्रों के रूप में, हमें संग्रह मिला। उसे हमने यथाशक्ति समझने का प्रयत्न किया। गुरु महाराज की अनुकम्पा से तथा अपनी सहज बुद्धि से जैसा समझा, वैसा आपको सुनाते हैं।

सैलाना के राजा साहब ने भी हमसे यही प्रश्न किया था। मैंने उनको भी बतलाया कि-जैसे किसी सेठ ने किसी के पास पत्र पहुँचाने के लिए दिया उसने पत्र लेकर यथास्थान पहुँचा दिया। अथवा जैसे पोस्टमैन एक का पत्र किसी के पास पहुँचा देता है, उस पत्र के साथ पत्रवाहक का कोई वास्ता नहीं है। वह पत्र प्रेषक का है, पत्रवाहक का नहीं। इसी प्रकार हम तो भगवान् महावीर के संदेशवाहक हैं। हम जो संदेश सुनाते हैं, वह तो भगवान् का ही है।

किसी गाँव में एक वैद्यराज रहते थे। वे वैद्यक में बड़े कुशल थे। इतने कुशल कि मरीज़ को बिना देखे, केवल उसके पहन कर उतारे हुए कपड़ों को सूंघ कर ही बीमारी को पहचान लेते थे। बीमारी को पहचान कर जो दवा देते तो आनन-फानन असर होता था!

भाइयो! उन वैद्यराज को ऐसा इष्ट था। इष्ट भी होना चाहिए। इष्ट बिना भ्रष्ट है। इष्ट भी जबर्दस्त चीज़ है! देखो, अलवर के पास वसुआ गाँव है। वहाँ उपाश्रय में एक यतिजी रहते थे। हम उनके मकान में ठहरे थे। अब वह यतिजी नहीं रहे है। एक पण्डितजी वहां पोसाल में पढ़ाते थे। उन्होंने बतलाया कि यतिजी उत्कृष्ट कोटि के वैद्य थे। एक उदाहरण भी उन्होंने दिया। कहने लगे-एक बार अलवर नरेश की महारानी बीमार हुई। बहुत इलाज कराया, पानी की तरह पैसा बहाया, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। तब यतिजी को बुलाया गया। उनसे कहा गया-रानीजी बीमार हैं। आप इलाज कर सकें तो कीजिए।

यतिजी ने कहा-पहले बीमार की नाड़ी देखूँ तब कुछ कह सकता हूं।

दीवान-मगर रानीजी तो पर्दे में रहती है। आप वहाँ नहीं जा सकते।

यतिजी-कोई हर्ज नहीं, आप रानीजी के हाथ में एक डोरा बँधवा दीजिए। फिर उसे खुलवा कर मुझे दे दीजिए। मै डोरे की परीक्षा करके रानीजी की बीमारी की परीक्षा कर लूँगा।

राजा को यतिजी की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। उसे

विश्वास नहीं आया। सोचने लगा-यतिजी रानी की बीमारी की परीक्षा करेंगे तब करेंगे। पहले मैं इनकी परीक्षा तो कर लूँ !

राजा ने रणवास में एक भैंस बँधवा दी। फिर उसके पैर में एक डोरा बाँधा और उसे खोल कर यतिजी को दे दिया ! यतिजी कुछ समय तक उसे देखते रहे और सूंघते रहे !

देर हुई देख राजा ने कहा-महाराज, नब्ज देखने में इतनी देर लगती है क्या ?

यतिजी बोले-नाड़ी देख ली है और बीमारी भी पहचान ली है। इन 'महिषी' महारानीजी को भूख बहुत लगी है। चार गट्ठा घास और कुछ बिनौले मँगवा कर इन्हें खिला दीजिए। बीमारी भाग जाएगी।

राजा—यतिजी महाराज, आप हँसी कर रहे हैं।

यतिजी—नहीं, हँसी नहीं करता। यह बात तो नब्ज कह रही है !

राजा को यतिजी पर विश्वास आ गया। उसके बाद रानीजी के हाथ में डोरा बाँधा गया और उसकी परीक्षा करके यतिजी ने रानी के रोग की परीक्षा की। दवा दी और रानीजी स्वस्थ हो गईं।

राजा ने सन्तुष्ट होकर यतिजी को एक बगीचा भेंट किया। प्रतिदिन दो रुपये देते रहने का भी वायदा किया। यह कोई कल्पित घटना नहीं है; सौ फी सदी सत्य हकीकत है।

एक वैद्य के दो लड़के थे-एक बड़ा और एक छोटा। वैद्यजी के बीमार होने पर बड़े लड़के ने सोचा-मैं पिताजी के मरने पर एक

बड़ा स्मारक बना दूंगा। छोटे लड़के ने वैद्यजी के बताए हुए नुस्खे इकट्ठे करने शुरु कर दिये। थोड़े दिन में वैद्यजी नीलाम बोल गये !

वैद्यजी के मरने पर एक बीमार दूर देश से वैद्यजी की तारीफ सुन कर आया। पूछते-पूछते बड़े लड़के के पास पहुँचा। लड़के ने कहा-भाई, वैद्यजी तो संसार से विदा हो चुके हैं। मेरे पास और तो कुछ नहीं, उनका स्मारक है। उस स्मारक में जाकर बैठ जाओ और भजन करो तो अच्छे हो जाओगे।

बीमार छह महीने तक स्मारक में पड़ा रहा, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तब निराश होकर वह छोटे लड़के के पास गया। छोटे लड़के के पास नुस्खे थे। उसने पूछा-क्या बीमारी है ? बीमार ने कहा-मुझे तपेदिक हो गया है ! तब लड़के ने अपनी पुस्तक निकाल कर तपेदिक का नुस्खा ढूँढा और कहा-अमुक-अमुक चीजें कूट-छान कर सेवन करो। बीमार ने वह दवा ली तो अच्छा हो गया। बीमार ने प्रसन्न होकर छोटे लड़के को दस हजार रुपये इनाम दिये।

भाइयो ! इस संसार में जीवों को जन्म-जरा-मरण, अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि की अनेक बीमारियाँ लगी हुई हैं। वीतराग देव रूपी महावैद्यराज ने इन बीमारियों को दूर करने के लिए नुस्खे बतलाये हैं। वही नुस्खे शास्त्रों में लिखे हैं और वही हमारे पास हैं। जो हमारे पास आता है, उसे हम वही नुस्खे बतला देते हैं। जैसी बीमारी हो वैसी ही दवा दे देते हैं। किसी को कहते हैं-उपवास करो, किसी को कहते हैं-स्वाध्याय करो, ध्यान करो, आदि आदि। तात्पर्य यह है कि कुछ लोग संसार में ऐसे छिद्रान्वेषी होते हैं जो उत्तम से उत्तम पुरुष में और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु में भी दोष ही देखते हैं। परमवीतराग, परम निर्मोह, निष्काम,

निर्विकार, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जगद्बन्धु, जगन्नाथ, लोकहितकर अरिहन्त देव से अधिक गुणवान् इस संसार में और कौन हो सकता है ? परन्तु गोशालक जैसे छिद्रान्वेषी ने उनको भी नहीं छोड़ा ! तब आप और हम किस गिनती में हैं ?

इसके विपरीत कुछ गुणग्राहक भी ऐसे होते हैं जो निकृष्ट से निकृष्ट वस्तु में भी गुण ही देखा करते हैं । इस संबंध में श्रीकृष्णजी की एक घटना प्रसिद्ध है । कृष्णजी बड़े गुणग्राहक थे वे दोष वाली वस्तु मे भी रहे हुए गुण को देखा करते थे और दोषों की उपेक्षा करते थे । उनकी गुणग्राहकता की प्रशंसा फैलती-फैलती स्वर्ग तक पहुँच गई । एक बार इन्द्र महाराज ने देवों की सभा में श्रीकृष्णजी के इस गुण की प्रशसा की । एक देव को इच्छा हुई कि देखें, कृष्णजी कितने गुणग्राहक है ! परीक्षा को कसौटी पर कस कर देखना चाहिए ।

यह सोच कर वह देव स्वर्ग से रवाना हुआ । वह ऐसे अवसर पर द्वारिका पहुँचा जब कृष्णजी सेना सहित भगवान् अरिष्टनेमि की वंदना के लिए जा रहे थे । जिस मार्ग से कृष्णजी जाने वाले थे, उसी मार्ग में देव ने एक मृतक कुत्ते का रूप बनाया । वह रास्ते मे एक ओर पड़ा रहा । कृष्ण महाराज की सेना उधर से निकली तो कुत्ते के पास पहुंच कर उसकी बदबू से घबरा उठी । अत्यन्त उग्र दुर्गन्ध उसमे से निकल रही थी । उसे सहन करना कठिन था । सैनिक अपनी-अपनी नाक दबा कर और मुँह सिकोड़ कर इधर-उधर होने लगे ।

श्रीकृष्णजी पीछे थे । उन्होंने गड़बड़ देखी तो पूछा-क्या बात है ? सेनाध्यक्ष ने कहा-पृथ्वीनाथ ! आगे एक कुत्ता पड़ा है । मर गया है और सड़ गया है । उसके दांत बाहर निकल पड़े हैं ।

काले रंग का कुत्ता है। उसके शरीर मे से इतनी उग्रतर दुर्गन्ध निकल रही है कि सहन नहीं होती!

श्रीकृष्णजी वहाँ पहुँचे। कुत्ते को देखकर बोले-अहा! कुत्ते के काले काले शरीर मे धवल दांत ऐसे सुशोभित हो रहे है, जैसे नीलम के पात्र मे हीरे जड़े हो!

देव ने अपनी समझ से इतना बुरा रूप बनाया था कि उसमें कोई गुण खोज निकालना संभव नहीं था। वह सोचता था-कृष्णजी इस रूप मे क्या गुण खोज सकेंगे! परन्तु वासुदेव ने उसकी धारणा को मिथ्या सिद्ध कर दिया। उन्होने उसमें भी अच्छाई खोज निकाली। बड़े-बड़े दोषों की उपेक्षा करके भी इस प्रकार गुणों को देखने वाले भला गुणवान् न होंगे तो क्या होंगे? अपनी इस उत्तम गुणग्राहक प्रकृति के कारण वे महान् गुणवान् बने!

भगवान् जिनेन्द्र देव का कथन है कि प्रत्येक वस्तु में अनन्त-अनन्त धर्म विद्यमान हैं। समभावी और सम्यग्दृष्टि जीव उनमे से किसी धर्म का निषेध नहीं करता। वह तो किसी को मुख्य और किसी को गौण रूप मे देखता है। वह किसी बुराई को अच्छा नहीं समझता; बल्कि वस्तु मे रही हुई अच्छाइयो पर दृष्टि रखता है और बुराई की उपेक्षा करता है। मिथ्यादृष्टि इससे विपरीत होता है। वह अच्छाई को भी बुराइ समझता है और उस बुराई को ही प्रधानता देता है!

भाइयो! यह सब अपनी-अपनी दृष्टि का ही खेल है। जिसकी जैसी दृष्टि बन जाती है, उसे उसी रूप मे वस्तु दृष्टिगोचर होने लगती है। दृष्टिवैचित्र्य के विषय में कहा गया है:—

वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकारम्,
ज्योतिर्विदो ग्रहकृतं प्रवदन्ति दोषम्।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति,
प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति ॥

एक रोगी घर से निकल कर कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे एक वैद्य मिल गये। उसने अपनी मुसीबत का हाल सुनाया तो वैद्यजी कहने लगे–तुम्हारा वात, पित्त, कफ बढ़ गया है! दस रुपये लगेगे। औषध ले लो।

बीमार कुछ आगे गया तो लम्बी चोटी फहराये और ललाट पर लम्बा--चौड़ा तिलक लगाये एक ज्योतिषी मिले। उनके सामने रोगी ने अपना दुखडा रोया तो वह मीन, मेष, मकर की गणना करके कहने लगे–तुम्हारे ऊपर शनि की दृष्टि है। उसकी शान्ति करवाओगे तो चंगे हो जाओगे। पच्चीस का खर्च है, पर जिंदगी सुखमय बन जाएगी।

बीमार और आगे चला तो माता की मढ़िया मे एक भोपाजी जंजीरे पटक रहे थे। बीमार वहीं जा पहुँचा। वहाँ कई अक्ल के लट्ठ इकट्ठे थे और भोपाजी को भगवान् का प्रतिनिधि मान कर उनकी करामाते देख रहे थे। इस बीमार ने अपनी कष्टकथा सुनाई। भोपाजी ने माताजी की ओर से कहा–तेरी आँखों में तो तीन चुड़ैलें खेल रही हैं। थावरवार को आना। हनुमानजी की चौकी बिठला कर ठीक कर दूंगा। पचास रुपये खर्च होंगे!

'ठीक है' कह कर बीमार वहाँ से भी चला तो एक जंत्र–मंत्र वाला मिल गया। उसने कहा–तुम्हारे किसी दुश्मन ने कामण कर

दिया है। चाहो तो उसका निवारण कर दूं। मगर अंटो खाली करनी पड़ेगी !

बीमार फिर आगे चला तो एक मुनिराज मिल गए। बीमार ने उन्हे नमस्कार किया। उसके विषाद से घिरे चेहरे को देखकर सहज अनुकम्पा भाव से मुनिराज ने पूछा-क्यों भाई, क्या कष्ट है तुम्हें ? बीमार ने अपना दुःख बतलाया तो वह बोले-तुमने पूर्वजन्म मे पाप किये है। हिंसा की है, असत्यभाषण किया है, चोरी की है, जानवरों के कलेजे सेंक-सेंक कर खाये हैं। वही पाप अब उदय में आये हैं।

पापी ! थारो कैसे होगा उद्धार
तू तो डूबेगा मँझधार।
दान न दीना शील न चोह्ना, ताकी पराई नार।
दया न पाली थें झूठ न टाली, हिंसा कीनी अपार ॥
मांस को खाया शराब उड़ाया, नहिं भक्ष्याभक्ष्य विचार।
फूटा है बेड़ा समुद्र में डेरा, अंधा है खेवनहार।
ईश्वर भजा नहीं क्रोध तजा नहीं, न किया परउपकार।
कहै चौथमल अज्ञानी संभल, आतम का कर ले विचार ॥

भाइयो ! पापियों का कैसे कल्याण होगा ? भलाई का काम आ पड़े तो उठे नहीं और पाप का काम हो-बुराई का काम मिल जाय तो फौरन दौड़ा-दौड़ा जाय ! जरा-सा स्वार्थ सिद्ध होता हो तो जाति में धड़े पटक दे ! रंडी के नाच के लिए पाँच सौ रुपया और जाजम दे दे। भगवत्कथा के लिए कोई जाजम माँगने जाय

तो कह दे कि दूसरी जगह गई है! ऐसे पापी जीवों का कल्याण कब और कैसे होगा? पहले पाप करके आया और अब भी पाप कर रहा है! चाहता है कि सुखी होऊँ तो कैसे होगा?

जो जीव घोर पाप करके आया है और जिसकी तक़दीर फूटी है, उसको रक्षा भैरों और भवानी भी नहीं कर सकते। खेत में तो डाली नहीं, घर में मुट्ठी भर अनाज नहीं और भैरोंजी से कहता है कि मेरे घर मे गाड़ी भर अनाज हो जायगा तो पचास नारियल चढ़ाऊँ! कहो भाई, भैरोंजी कैसे अनाज दे सकते है? जब पाप कर्म उदय में आता है तो न तो कोई देवी-देवता और न मंत्र-तंत्र ही काम आते हैं। कर्म का फल भुगतना ही पड़ता है। कर्म के अनुसार ही बुद्धि हो जाती है। औरों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े अवतार पुरुष भी कर्म के प्रभाव से प्रभावित होते हैं। यथा—

न भूतपूर्वो न च केन दृष्टो,
हेम्नः कुरंगो न कदापि वार्ता।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य,
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥

—हनुमन्नाटक,

अर्थात्-सोने का हिरण न पहले कभी हुआ है, न कभी किसी ने देखा है और न कभी किसी ने सुना ही है। फिर भी रामचन्द्रजी को सोने के मृग को पाने की तृष्णा हुई! सच है, विनाश का समय आता है तो बुद्धि भी उलटी हो जाती है।

भाइयो! अयोध्या के राज्य की अपेक्षा भी क्या सोने का

मृग अधिक मूल्यवान् और लुभावना था ? नहीं । रामचन्द्रजी ऐसे त्यागी पुरुष थे, इतने निस्पृह थे कि अयोध्या का विशाल राज्य त्यागते समय उन्हे तनिक भी खेद नही हुआ था मगर वही राम-चन्द्र सोने के मृग के पीछे-पीछे दौड़े ! परन्तु जब खराबी होने का समय आ जाता है तो बुद्धि भी बिगड़ जाती है ।

खोटे काम सूझते हैं जब खोटे दिन आ जाते हैं ।

अशुभकर्मों का उदय आता है तो किसी का जोर नहीं चलता ! अगर मनचाहा काम बनने लगे तो फिर पाप और पुण्य कोई चीज ही न रहे । और भैरोजी छोरा-छोरी देने लगें तो ससार मे कोई भी स्त्री बांझ न रहे । भाइयो कर्म का फल अमिट है । कर्म वह चीज हैं कि जब सीताजी को रावण ले जाने लगा तो एक भी देवता आड़ा न आया । और जब उसने अग्निकुंड में प्रवेश किया तो झट पानी हो गया ! कहिए, पहले ही देवता क्यो नहीं आ गये ? रावण को सीता--हरण करने से क्यो न रोक दिया ? किन्तु कर्म के सामर्थ्य के आगे किसी की नहीं चलती ।

सब चाहते हैं कि मैं पचास लाख का धनी बन जाऊँ, किन्तु सब की इच्छा पूरी नहीं हो सकती । मन कुछ भी विचार करे, होगा कर्मों के ही अनुसार । मनुष्य चाहता है--मैं सात खण्ड का महल बना कर रहूँ कर्म कहता है कि नहीं, मैं तुझे फूस की झोंपड़ी में रक्खूँगा । मनुष्य को अभिलाषा है कि मैं धनकुबेर बनूँ; कर्म कहता है--मै तुझे निर्धन हो रक्खूँगा !

होती होती कहाँ मन की धारी, कर्म करे जो होय ।
मन चाहे धनवान् बनूँ फिर ऊँचे महल चुनाऊँ ।
कर्म कहे मैं निर्धन रक्खूँ छप्पर में बिठलाऊँ ॥

मन चाहे फूलों की शय्या, कर्म जमीन लिटावे।
मन चाहे गद्दी पर बैठूं, कर्म घास खुदवावे॥

मन में आती है कि मै फूलों की सेज पर शयन करूँ, किन्तु कर्म कहता है कि मै तुझे बिना टाट के बिछौने के ज़मीन पर लिटाऊँगा! मन चाहता है, मोटी गादी पर बैठ कर हुंडियाँ लिखूँ, परन्तु कर्म कहता है कि मै तो घास खोदने के लिए खेत में भेजूँगा।

क्रोड़पति घर चाहे शादी, कर्म कुंवारा रखावे।
मन चाहे मैं बैठूं मोटर में, पैदल कर्म चलावे॥

मन बहुत चाहता है कि मैं करोड़पति के घर तोरण बाँधूँ, किन्तु कर्म कहता है-दुर पगले, मैं ने तुझे कुंवारा न रक्खा तो मेरा नाम नहीं! मन मोटर मे बैठने को होता है, किन्तु कर्म पाँव पैदल चलाता है।

मन चाहे पग पहनूं सोना बेड़ी कर्म डलावे।
मन चाहे तन्दुरुस्त रहना कर्म बीमार बनावे॥

मन तो पैरो में लंगर पहनना चाहता है, किन्तु कर्म लोहे की बेड़ियाँ पहनाता है। तन्दुरुस्त रहना कौन नहीं चाहता, फिर भी असाता का उदय जब आता है तो मनुष्य की अभिलाषा एक किनारे धरी रह जाती है और रोग का शिकार होना पड़ता है!

हाँ, पूर्वजन्म मे अगर अच्छे कर्म किये हो तो बेड़ियाँ पहरने का अवसर आ जाने पर भी बेड़ियाँ नहीं पहरनी पड़तीं।

किसी नगर में एक बड़ा राजा राज्य करता था। उसी

नगर मे एक करोड़पति सेठ रहता था। सेठ के एक सीधा-सादा लड़का था। वह एक दिन दुकान पर बैठा था और पाँच हजार रुपया प्रतिवर्ष पाने वाले मुनोमजो काम कर रहे थे। उस समय एक सिपाही एक चोर को, जिसके पैरों मे बेड़ियाँ और हाथो मे हथकड़ियाँ पड़ी थीं, लेकर निकला। सेठ के लड़के ने उसे देखकर कहा—मुनीमजी, क्या बात है ? यह आदमी क्यों पकड़ा गया है ?

मुनीम बोला—यह चोर है। आज इसकी पेशी होगी। इसोलिए सिपाही इसे ले जा रहा है।

लड़के ने कहा—मैं ने सब प्रकार का आनन्द लूटा है, खूब मौज की है किन्तु सिपाहो के साथ ऐसी बेड़ियाँ पहनकर कभी बाजार में नहीं निकला ! एक बार यह मजा भी लूटना चाहिए।

मुनीम—आपको भी क्या सूझी है कुंवर साहब ! खैर रास्ता तो मैं बता दूंगा, किन्तु सेठजी को पता चल गया तो मेरा टिकिट कट जाएगा !

लड़का—नहीं, मै पिताजी को नहीं कहूँगा।

मुनीम—मामूली रास्ता बतलाऊँगा, तो सेठजी घूंस देकर छुड़ा लेंगे। अतएव तुम्हे एक अच्छा रास्ता बतलाता हूँ। तुम कचहरी में तो जा ही सकते हो। वहाँ जाना और राजाजी के साफे को फैंक कर दो-चार थप्पड़ उन्हे जड़ देना। बस, फिर तुम्हे भी बेड़ियाँ पहनने को मिल जाएँगी।

सेठ के लड़के ने जाकर यही किया। राजा क्रोध से तमतमा उठा। उसने लड़के को पकड़ लेने का हुक्म दिया, किन्तु ज्यों ही साफे को देखा तो उसमे डेढ़ हाथ का काला साँप निकला।

साँप को देख राजा प्रसन्न हो गया और बोला—इसे मत पकड़ो। इसने तो देवता बन कर मेरी जान बचाई है!

राजा ने साँप को दूर छुड़वा दिया। लड़के को जागीर दी और हाथी पर सवार करके, दोनों ओर चँवर ढुरवा कर घर भेजा।

सेठ को यह सब देखकर आश्चर्य हुआ। वह लोगों से पूछने लगा—इसने ऐसा क्या काम किया है कि राजा की ओर से इतना बड़ा सन्मान मिला है?

लड़के ने आकर मुनीम ने कहा—वाह मुनीमजी, आपने भी खूब रास्ता बताया! राजा को खोपड़ी में जोर से मारा, परन्तु साफे में से साँप निकल पड़ा। उसके उपलक्ष्य मे यह सब हुआ!

मुनीम ने कहा—कुंवर साहब, आपका भाग्य अच्छा है। आपने पूर्वजन्म में जीवों की दया पाली है। दान, शील, तप और भावना रूप चतुर्विध धर्म की आराधनो की है। इसी कारण अपराध करने पर भी आप दंड से बच गये।

राजा ने सेठ के लड़के को राजमहल मे भी आने की अनुमति दे दी। फिर भी लड़के के मन से बेड़ियाँ पहनने की इच्छा दूर नहीं हुई!

एक दिन लड़का मुनीम के साथ वायुसेवन के लिए गया। उसने अपनी वही इच्छा फिर दोहराई। तब मुनीम ने कहा—देखो, राजाजी अपने महल की चौथी मंजिल पर झरोखे में बैठे है। तुम जाओ और उन्हें धक्का दे दो। वे नीचे गिर कर मर जाएँगे और तुम्हारे पैरों मे बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ पड़ जाएँगी।

लड़का सीधा राजमहल मे पहुँचा। उसने राजा के पास पहुंच कर, बिना रुके, राजा को धक्का दे दिया। सँभलने का मौका नहीं मिला। राजा नीचे गिर पड़ा। किन्तु नीचे रुई का ढेर था। अतएव उसे चोट नही आई। किन्तु क्रोध और क्षोभ से वह जल उठा। उसने कहा—पकड़ो उस छोकरे को! उसकी इतनी हिमाकत!

लड़का पकड़ा गया और राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा ने धक्का देने का कारण पूछा। लड़के ने उत्तर देने के लिए जीभ खोली ही थी कि उसी समय चौथी मंजिल का वह हिस्सा अकस्मात् टूट कर गिर पड़ा!

इस आकस्मिक घटना ने सारा रंग बदल दिया। राजा ने अपने प्राणो की रक्षा के लिए उस लड़के को धन्यवाद दिया। कहा-यह लड़का तो मेरे लिए देवदूत बन कर आया है! एक बार पहले मेरी जान बचा चुका और आज फिर ऐन मौके पर आ पहुंचा!

इस हर्ष के उपलक्ष्य में राजा ने फिर जागीर दी। पैरों में सोना पहनने को दिया। हाथी के हौदे पर बिठला कर राजा स्वयं उसे घर तक पहुंचाने आया।

भाइयो क्या सुना आपने? भले ही यह कहानी उदाहरण मात्र हो, पर कर्म के फल को प्रकट करती है। कर्म यदि अनुकूल है तो प्रतिकूल घटनाएँ भी सहज ही अनुकूल बन जाती हैं अतएव हम जो कहते हैं वह मान जाओ। हम कहें कि उपवास कर लो। हमारा कहना मान लो। मान लोगे तो तुम्हारा भविष्य मंगलमय बन जाएगा। जहाँ कहीं जाओगे वहीं सुख पाओगे। कभी नीचा न देखना पड़ेगा। हम जो कहते हैं, उसमें हमारा स्वार्थ नहीं है। तुम उपवास करोगे तो हमारा पेट नहीं भर जायगा। तुम दान-दोगे

तो हमारे पास सम्पदा नही आ जाएगी। हमे तो उसकी आवश्यकता भी नही है। जो थी, उसको ठुकरा कर आये हैं। हम केवल तुम्हारे कल्याण के लिए तुम्हे मार्ग बतलाते हैं। हम तो यह भी नही कहते कि हमसे वजन नही उठाया जाता, वजन उठाने के लिए एक घोड़ा दे दो! तुम जो कुछ भी करोगे, अपने भले के लिए करोगे! हम तो सिर्फ रास्ता दिखलाने वाले हैं और वही रास्ता दिखलाते हैं जो वीतराग भगवान् ने दिखलाया है।

हाँ तो गाजे-बाजे के साथ वह लड़का अपने घर आ गया। उसकी खूब प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि हो गई! किन्तु वह फिर मुनीम के पास पहुँचा और कहने लगा--मुनीमजी आपने तो इस बार भी कारगर रास्ता नहीं बतलाया! हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ तो पहनने से रह ही गई!

मुनीम ने कहा कुंवर साहब, अब मुझसे कुछ न पूछो। पूर्व जन्म मे पुण्य उपार्जन करके आये हो। कोई ऊपर से पटक दे या आग में फैंक दे, तब भी आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा।

भाइयो! पहले का पुण्य उदय मे हो तो बाल भी बांका नही हो सकता। जो पहले पुण्योपार्जन करके आये हैं, उनका मनचाहा कार्य सिद्ध होता है। इसके विपरीत जो पाप ही पाप कमा कर आये हैं, उनके मनोरथ की सिद्धि कैसे हो सकती है?

मन चाहे मैं रहूं सुहागिन, विधवा कर्म बनावे।
मन चाहे हो पुत्ररत्न पर वंध्या कर्म रखावे॥

स्त्री चाहती है कि मैं आजीवन सुहागिन रहूं, मेरा सौभाग्य अटल रहे, किन्तु कर्म कहता है कि मैं तुझे विवाह के बाद ही

विधवा बना कर रुलाऊँगा । सुहागिन चाहती है कि मेरी कूंख से श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो-रामजी सरीखा लाल मेरी गोदी मे खेले, परन्तु कर्म कहता है-नहीं; मै तुझे बांझड़ी रक्खूंगा ।

मन चाहे मैं राजा बन कर, सिर पर छत्र धराऊँ ।
वायुयान में बैठूँ, बोले कर्म गुलाम बनाऊँ ॥

कई लोग विचार करते हैं कि हम भी राजा बन जाएँ । हमारे सिर पर छत्र हो । हम भी हवाई जहाज में बैठे । मगर कर्म कहता है कि मैं तो गुलाम बनाऊँगा तुझे ! क्योंकि तू पाप करके आया है !

भाइयो ! कर्म के बदल जाने पर सभी रचना बदल जाती है । भारत मे बहुत-से राजा-महाराजा थे । किन्तु ऐसी हवा चली कि सब राजा मिट गये, महाराजा मिट गये । उनको खर्च सरकार ने मुकर्रर कर दिया । पहले जो हुक्म देते थे वही होता था । अब वह भी अन्य प्रजा के समान हो गए हैं । क्या यह साधारण बात है ?

कंस कृष्ण को मारन चाहा, कृष्ण कंस को मारा ।
रावण को मन सीता चाहे, राम ने उसे विडारा ॥

कृष्ण को मारने के लिए कंस ने कितने प्रपच किये ? कोई उपाय शेष नहीं रहने दिया । मगर अन्त मे कंस ही कृष्ण के हाथो मारा गया ।

रावण के मन में थी कि मै सीता को अपनी रानी बनाऊँ ! मन्दोदरी ने उसे बहुत समझाया कि पराई स्त्री लाये हो वापिस

लौटा दो। पर रावण नहीं माना। उसने कह दिया-कुछ भी हो, सीता को मैं नहीं लौटाऊँगा। प्राण दे दूंगा। और अन्त में सचमुच ही उसे प्राण दे देने पड़े! रावण कोई साधारण राजा नहीं था। कम धर्मात्मा भी नहीं था। वह नीतिज्ञ था। परन्तु कर्म के उदय को वह भी नहीं टाल सका। अतएव निश्चय समझो कि संचित कर्म अपना असर दिखाये बिना नहीं रहते।

चौथमल मन चाहा होता जो तू पुण्य कमाता।
धर्म कमा ले शुद्ध भाव से अय मन! जो सुख चाता॥

कई बार मनुष्य जब निराश होता है तो विषाद से घिर जाता है और शोक मनाने लगता है। अपने भाग्य को कोसता है या अपनी निराशा का जिसे कारण समझता है, उसे कोसने लगता है। परन्तु निराशा का मूल कारण पुण्य न होना है। पुण्यवान् के सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं और पापी के मनोरथ मन में ही रह जाते हैं। कहा भी है:—

पत्नी प्रेमवती सुतः सविनयो, भ्राता गुणालंकृतः।
स्निग्धो बन्धुजनः सखाऽतिचतुरो नित्यं प्रसन्नः प्रभुः।
निर्लोभोऽनुचरः स्वबन्धुसुमुनिप्रायोपयोग्यं धनम्,
पुण्यानामुदयेन सन्ततमिदं कस्यापि सम्पद्यते॥

भाइयो! इतनी बातें पूर्वपुण्य के उदय से मिलती हैं। कौन नहीं चाहता कि उसे प्रेममूर्त्ति पत्नी मिले? विनीत पुत्र, गुणों से सुशोभित भ्राता, स्नेहशील बन्धु-बान्धव, अत्यन्त चतुर मित्र और सदैव प्रसन्न रहने वाला स्वामी भी सभी चाहते हैं। सभी को इच्छा

होती है कि हमारा सेवक निर्लोभ हो-ईमानदारी से काम करे। अपने भाई-बंधुओं और सुसाधु जनों के उपयोग में आने वाला धन भी सब चाहते है। पर यह सब संयोग किसी विरले पुण्यशाली को ही मिलते है। जो पुण्य कमा कर आया है, उसी को यह सामग्री प्राप्त होती है।

इस कारण मैं कहता हूँ कि दो घड़ी भगवान् का भजन भी किया करो। बडी-बड़ी हवेलियाँ, लाखों की सम्पत्ति और मोटरें काम नहीं आएँगी। इन्हें तुम अपनी समझते हो, यह तुम्हारी भूल है। यह साथ जाने वाली नहीं है। कभी किसी के साथ धन-दौलत गई हो तो तुम्हारे साथ भी जाएगी ! गई है किसी के साथ ? अथवा तुम ही पहलेपहल ले जाना चाहते हो

नहीं गई है भाइयो ! और न जाएगी। पाप और पुण्य ही साथ लेकर जाओगे। पाप ले जाओगे तो दुखी होगे, पुण्य ले जाओगे तो ठाठ रहेगा। अब जो तुम्हे अच्छा लगे वह ले जा सकते हो !

पुण्योपार्जन करने की अभिलाषा है तो सद्‌गुणी बनो। गुणीजनों की सगति करो। ज्ञानवान् और सदाचारी पुरुषों की सेवा करो। दूसरों के गुणों की प्रशंसा करो। गुणो जनों को देख कर प्रसन्न होओ। गुणों का आदर करो। दूसरे के गुण ही ग्रहण करो। दोषों की उपेक्षा करो। गुणों को ग्रहण करते-करते निश्चय ही तुम गुणों के सागर बन जाओगे।

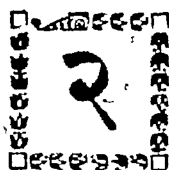
जाति, कुल, धन, वैभव आदि किसी गिनती में नहीं है। असल में गुणों की ही प्रतिष्ठा है, गुणों की ही कीमत है। गुणों से ही आत्मा का उद्धार और कल्याण होता है।

गुणाः पूजास्थानं ।

अर्थात्-गुण ही आदर-सत्कार के पात्र होते हैं।

भाइयो ! गुणों से ही तुम्हारा कल्याण होगा । अतएव गुणग्राहक बन कर अपनी आत्मा को सद्‌गुणो से सुशोभित करो। वीतराग भगवान् के सिद्धान्त मे गुणों को ही कल्याण का कारण बतलाया है। यह समझ कर गुणवान् बनोगे तो आनन्द ही आनंद होगा ।

राणावास
१८-१-४६ }



पुण्य प्रबल संसार में

स्तुतिः—

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाए जाएँ ।

हे महा प्रभो ! आपकी स्तुति करने से भव-भवान्तर में बँधे हुए जीवों के पापकर्म क्षण भर में उसी प्रकार क्षीण हो जाते हैं, जिस प्रकार समस्त लोक मे फैला हुआ, भ्रमर के समान काला रात्रि का सारा अन्धकार सूर्य की किरणों से शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

भाइयो ! रात्रि के समय का घोर अंधकार सर्वव्यापी होता है। तिस पर अगर कृष्णपक्ष हो और सघन मेघों से आकाश घिरा हो तब तो कहना ही क्या है ? उस समय तो हाथ को हाथ नहीं सूझता ! उस अंधकार को दूर करने के लिए कितने ही गैस के हंडे जलाएँ जाएँ या बिजली के लट्टू उजाले जाएँ, अंधकार पूरी तरह मिट नहीं सकता। रात रात ही बनी रही है। किन्तु प्रातःकाल जब सूर्य का उदय होता है तो वह अकेला ही समस्त अंधकार को सहसा निवारण कर देता है। इसी प्रकार भगवान् का गुणगान करने से और भगवान् के वचनामृत का पान करने से समस्त पाप-पुंज का विनाश हो जाता है और अनादि काल की जन्म-मरण की शृङ्खला टूट जाती है। हाँ, इस अपूर्व फल की प्राप्ति होती तभी है, जब सच्चे हृदय से गुणगान किया जाय !

यहाँ कोई कह सहता है-गुलाबजामुन कहने से अर्थात् मिठाई का नाम रटने से क्या मुँह मीठा हो सकता है ? नहीं। इसी तरह 'णमो अरिहंताण' का जाप जपने से या राम-राम कहने से भी क्या लाभ हो सकता है ?

ऐसा तर्क करने वाले से कहना चाहिए कि कोई-कोई चीजें ऐसी होती हैं कि जिनका नाम लेने से मुँह मीठा नहीं होता, ! किन्तु कुछ चीजें ऐसी भी हैं जिनका नाम लेने से ही मुँह का जायका बदल जाता है। कलाकंद का नाम लेने से मुँह मीठा नहीं होता, किन्तु नीबू का नाम लेने से अवश्य ही मुँह में पानी आ जाता है और मुँह का जायका बदल जाता है। इसी प्रकार परमात्मा के भजन से आत्मा का कल्याण होता है।

जैनशास्त्रों में उल्लेख है कि तीर्थंकर भगवान् जहाँ पधारते हैं, उस जगह के आसपास चार कोस तक काँटे उलटे हो जाते हैं।

इस संबंध मे कोई कह सकता है कि तीर्थंकर भगवान् का यह अतिशय तो भक्ति के आधिक्य के कारण कल्पित किया हुआ ही प्रतीत होता है। क्यो कि वे काँटे निर्जीव हैं और उन्हे कैसे पता चल सकता है कि तीर्थंकर भगवान् पधारे हैं तो हम उलटे हो जाएँ! उन्हे कोई टेलीफोन नहीं करता और न तार ही देता है। उनमे समझने-सोचने की शक्ति नहीं है। उनमे आत्मा होती तो कदाचित् वे सोच भी सकते, पर यह बात तो है नहीं। फिर यह सब कैसे हो सकता है?

यह तर्क उपस्थित करने वाले स्थूल बुद्धि के मनुष्य है। उन्होंने जगत् का सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन नहीं किया है। वे समझते हैं कि हमारी आँखें जिस तत्त्व को देख सकती हैं, जिस बात को हमारे कान सुन सकते हैं, अर्थात् जो इन स्थूल इन्द्रियो से ग्राह्य है, वही सब कुछ है। इन्द्रियो से अगोचर कोई सूक्ष्म तत्त्व इस जगत् में विद्यमान ही नहीं है। किन्तु यह उनका भ्रम है। इस विराट विश्व मे जितनी स्थूल शक्तियाँ है, उससे बहुत अधिक सूक्ष्म शक्तियाँ विद्यमान हैं। उन्हे हम देख नहीं सकते, सिर्फ इसी कारण उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते।

यही नहीं, स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म वस्तु अधिक प्रभावशाली होती है। स्थूल बम की अपेक्षा सूक्ष्म परमाणुबम अधिक शक्तिशाली है, और परमाणुबम से भी अधिक सूक्ष्म उद्जनबम में तो और भी अधिक शक्ति है। यह बात आधुनिक विज्ञान ने प्रत्यक्ष साबित कर दी है। शास्त्र भी यही कहते हैं। किन्तु पदार्थों की सूक्ष्म शक्तियों का सर्वसाधारण को पता नहीं चलता। इसी कारण वे उनके विषय मे शंकाशील रहते हैं।

भाइयो! यह मत समझो कि जो बात तुम्हारी बुद्धि मे नहीं

आती, जिसे तुम अपनी इन्द्रियों से नही जान सकते, वह है ही नहीं। ऐसा समझना अंधकार मे भटकना है। अपने आपको धोखा देना है। इस स्थूल सृष्टि के पीछे एक महान् और प्रचण्ड शक्ति से सम्पन्न सूक्ष्म जगत् भी है। उसकी शक्ति के सामने स्थूल जगत की शक्ति नगण्य है। उसे समझने का प्रयत्न करो। जिन सूक्ष्मदृष्टि महात्माओ ने उसे देखा है, उन्होने बतलाया है कि वह शक्ति अपूर्व और असाधारण है। चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।

पदार्थों मे कैसे-कैसे गुण-धर्म स्थित हैं, यह बात जब तुम स्थिरचित्त होकर समझने का प्रयत्न करोगे, तब तुम्हारी दृष्टि एकदम बदल जाएगी। यह बात नहीं है कि तुम उन्हे समझ ही नहीं सकते। प्रयत्न करोगे, उस ओर दृष्टि दौड़ाओगे तो अवश्य समझ सकोगे।

एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर क्या असर पड़ता है और कैसे असर पड़ता है, यह बड़ा मनोरंजक विषय है। उस असर के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह पदार्थ सजीव ही हो। निर्जीव वस्तु का निर्जीव पर; सजीव का निर्जीव पर, निर्जीव का निर्जीव पर और सजीव का सजीव पर भी असर पड़ता है। किसी ने पापड़ बनायें और उनके पास से कोई ऋतुमती स्त्री निकल गई तो पापड़ लाल हो जाते हैं। उन पापड़ों को कौन सूचना देने पहुँचा था कि तुम लाल हो जाना? पापड़ निर्जीव है। उनमे चेतना नही है। वे किसी की सूचना को समझ नहीं सकते और न स्वयं सोच ही सकते हैं। फिर भी अज्ञात रूप में ही पापड़ प्रभावित हो जाते है।

आप भोजन करते हैं और रोटी दाल भात वगैरह अपने पेट में डाल लेने तक की क्रिया तो आप करते हैं, किन्तु उस भोजन को रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य के रूप मे पलटने

के लिए आप क्या करते है ? आपको तो यह भी नहीं मालूम कि कहाँ क्या परिवर्त्तन हो रहा है ? भोजन भी जड़ है, उसे भी नहीं मालूम है कि मुझे अमुक साहब ने अपने पेट में डाला है तो मैं रस बन जाऊँ, रक्त बन जाऊँ आदि। फिर भी वह सात धातुओ के रूप मे पलटता है। यही नही, वही भोजन आपके चेहरे पर चमक बन कर प्रतिबिम्बित होता है; आँखों में तेज बन कर झलकता है, विभिन्न इन्द्रियो मे विभिन्न प्रकार की शक्ति के रूप में काम करता है। फिर भी भोजन को आप सजीव तो नहीं मान सकते ? वह अपनी स्वाभाविक शक्ति से ही नाना रूप बदलता है।

मदिरा को भान है कि मैं मदिरापान करने वाले की चेतना को आवृत करके उन्माद उत्पन्न करूँ ? नहीं। फिर भी वह अपना असर दिखलाती ही है।

इसी प्रकार विचार करने पर आपकी दृष्टि खुल जाएगी। आप समझ सकेंगे कि स्थूल पदार्थ भी एक दूसरे से प्रभावित होते रहते है जब भोजन जैसे स्थूल पदार्थों मे भी अनेक-अनेक प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान है तो भगवान् के गुणगान मे क्या कोई प्रभाव न होगा ? भगवान् के गुणगान मे मुख्यतया दो वस्तुएँ काम करती हैं—गुणगान के शब्द और गुणगान करने वाले की भावना। इस प्रकार भगवद्गुणगान मे सजीव और निर्जीव दोनो प्रकार की शक्तियाँ सन्निहित हैं। जब अकेली निर्जीव और अकेली सजीव शक्ति भी आश्चर्यजनक कार्य करती है तो दोनों का योग जहाँ मिल जाय, वहाँ क्या कमी रह जायगी ? शब्दों में अद्भुत शक्ति है और भावना मे भी अपूर्व बल है।

शब्द की शक्ति के विषय में मन्त्रो का प्रमाण उपस्थित किया जा सकता है। मंत्र के शब्द सैकड़ो और हजारों योजन की दूरी

पर भी अपना असर दिखलाते है। साँप-बिच्छू आदि के जहर का निवारण करते है, आकर्षण, मारण, उच्चाटन आदि करते है। नाना प्रकार के रोगो को दूर कर देते है। इस संबंध मे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। आपको अपने जीवन मे ही अनेक बार मंत्रों के प्रभाव को देखने का प्रसंग मिला होगा। भारतीय साहित्य मे मंत्रो के विषय मे गंभीर और विस्तृत विचार किया गया है और सिर्फ इसी विषय को लेकर विशाल ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। हमारे शास्त्रो मे भी मंत्रो का समावेश था। इस विषय मे एक पूर्व ही अलग था। परन्तु कालदोष से आज वह उपलब्ध नही है। फिर भी उसका थोड़ा-बहुत जैसा-तैसा ज्ञान आज भी भारत मे फैला हुआ है।

थोड़ी देर के लिए मंत्रो की बात भी जाने दीजिए। कोई आपको गाली देता है और आपका चेहरा तमतमा उठता है। क्रोध से नेत्र रक्तवर्ण हो जाते हैं और ओठ फड़कने लगते हैं! कभी आपने यह भी सोचा कि ऐसा क्यो होता है? गाली देने वाले ने आपको क्या दिया है? गाली देने का अर्थ क्या है? गाली देने का अर्थ है कुछ अप्रिय शब्दो का उच्चारण करना। शब्द लाठी या तलवार की तरह शरीर के किसी हिस्से को चोट नहीं पहुंचाते। किसी अंग को भंग नहीं करते। फिर भी आप क्रोध से पागल क्यो हो उठते हैं? किस शक्ति ने आपको पागल बना दिया है?

भाइयो! गाली शब्द है और उसमे अपना स्वाभाविक असर है। उसी असर की प्रेरणा से आप प्रेरित होते हैं और नाना प्रकार की चेष्टाएँ करते है। फिर किस प्रकार कह सकते हैं कि शब्द मे कोई शक्ति ही नहीं है?

इसी प्रकार भावना भी अत्यन्त प्रभावोपेत है। मन की

भावना वह चीज़ है कि इस स्थूल सृष्टि का निर्माण कर सकती है। उसे भावना कहो, सकल्पशक्ति विल-पावर कहो या और कुछ कहो, है गज़ब की चीज़! भावना के प्रभाव से—

विध्याति कषायाग्निर्विगलति रागो विलीयते ध्वान्तम्।
उन्मिषति बोधदीपो, हृदि पुंसां भावनाभ्यासात् ॥

भावना का अभ्यास करने से अनादि काल से प्रज्वलित कषायों की आग बुझ जाती है। राग गल जाता है। अन्धकार विलीन हो जाता है। समीचीन बोध रूपी दीपक चमकने लगता है।

तात्पर्य यह है कि भावना के ऊपर ही जीवन का और धर्म-अधर्म तथा पुण्य-पाप का आधार है। इस प्रकार जब अकेला शब्द और अकेली भावना भी महान् शक्ति से परिपूर्ण है, तो दोनों मिल कर कितने शक्तिशाली नहीं हो जाएँगे? फिर क्यों यह शंका की जाती है कि भगवान् का नाम लेने से पापों का नाश कैसे हो सकता है? भगवान् के नाम में अपूर्व, अद्भुत, अचिन्त्य और अतर्क्य प्रभाव भरा है। उसका जाप करने से भव-भव के पापों का विनाश हो जाता है। ज्ञानी जनों ने अपने जीवन में यह प्रयोग करके देखा है। फिर हमको बतलाया है। अतएव इस विषय में सन्देह करने का कोई अवकाश नहीं है।

तीर्थङ्कर भगवान् प्रकृष्टतम पुण्य के धनी होते हैं। उनके पुण्य के प्रभाव से सचेतन और अचेतन-दोनों प्रकार की सृष्टि प्रभावित होती है। उसमें तरह-तरह की ऐसी विशेषताएँ आ जाती है कि जो साधारण रूप से समझ मे नहीं आती। इसी कारण अज्ञान और अविचारक लोग उन पर विश्वास नहीं कर पाते। किन्तु

पदार्थों के सूक्ष्म स्वरूप के ज्ञाता जनों के चित्त मे किसी प्रकार का विस्मय उत्पन्न नहीं होता।

भाइयो! इस विवेचना से आपको समझ मे आ गया होगा कि भगवान् के गुणगान के शब्द और गुणगानकर्त्ता की भावना के योग से आत्मा मे अद्भुत प्रभाव उत्पन्न होता है, एक ऐसा आलोक उत्पन्न होता है कि पापों का सघन से सघन अधकार भी ठहर नहीं सकता।

मनुष्य जड़ पदार्थों के प्रलोभन में पड़ गया है। भोगोपभोग के साधन जुटाने मे ही उसकी सब शक्ति लगी रहती है। रुपया-पैसा की चिन्ता मे दिन-रात व्यस्त रहता है। अतएव वह सूक्ष्म जगत् की ओर ध्यान नही देता। और फिर अपनी बुद्धि पर आवश्यकता से अधिक भरोसा भी करता है। समझता है कि जो बात हमारी समझ मे नहीं आती, वह किसी की भी समझ में नहीं आ सकती और ऐसी बात हो ही नहीं सकती।

पुण्य मे असीम सामर्थ्य है। विशिष्ट पुण्यवान् पुरुष जिस गाँव मे कदम रखता है, सौ-सौ कोस की बीमारी भाग जाती है। यह बात असत्य न समझो। यदि सच्चा ब्रह्मचारी गुरु हो तो उसके कदम शान्ति के ही कदम होते हैं। सच्चा गुरु वह है कि चेला भले सैकड़ों कोस की दूरी पर हो, संकट पड़ने पर याद करेगा तो गुरु अवश्य दर्शन देंगे। प्रथम तो गुरु असली होना चाहिए, दूसरे गुरु के प्रति अविचल विश्वास होना चाहिए। विश्वास नहीं होगा तो कार्य की सिद्धि नहीं होगी। गुरु की महिमा मे कहा है —

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु महाराज सम्यग्ज्ञान रूपी अंजन की सलाई आँज कर, अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे जनो की आँखे खोल देते हैं। ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार हो !

'गु' शब्दोह्यन्धकारस्य;
'रु' शब्दस्तद्विनाशनः ॥

'गुरु' शब्द मे दो अक्षर हैं। 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है–नाश करना। जिनके प्रसाद से अज्ञान-अंधकार का नाश हो वही सच्चे गुरु हैं। ऐसे सद्गुरु की कृपा से जब अन्तस्तल का अंधकार दूर हो जाता है, तब सत्य तत्त्व का प्रतिभास होता है।

सद्गुरु का समागम मिलना भी परम पुण्य का फल है। पुण्य के बिना इष्ट और कल्याणकर सयोग नहीं मिलता।

भाइयो! पुण्य और पाप की शक्तियाँ ससार मे बड़ी जबर्दस्त शक्तियाँ हैं। मकान बदल सकते हो, वस्त्र बदल सकते हो, आभूषण भी चाहो तो बदल सकते हो, किन्तु पुण्य और पाप को नहीं बदल सकते। उनके फल अनिवार्य और अमिट हैं।

एक सेठ के चार लड़के थे। सब से छोटे का नाम धन्ना था। धन्ना ऐसा प्रबल पुण्य लेकर आया था कि जहाँ पाँव रखता, वहाँ लक्ष्मी आकर चरण चूमने लगती थी। शेष तीन भाई ऐसा पाप बाँध कर जन्मे थे कि जहाँ कहीं उनके पैर पड़ते वहाँ दिवाला आउट हुए बिना नहीं रहता था।

तो पुण्य और पाप छाया की तरह प्रत्येक प्राणी के साथ रहते हैं। कोई मनुष्य लालटेन हाथ मे लेकर चलता है तो उजेला

साथ-साथ चलता है इसी प्रकार पुण्यवान् के साथ-साथ लक्ष्मी चलती है। कई जगह आप देखते है कि बाप लाखों की सम्पत्ति कमा कर रख गया, परन्तु उसके मरने के पश्चात बेटा सारी पूंजी गँवा कर कगाल हो गए। इसके विपरीत ऐसा भी देखा जाता है कि पिता पैसे-पैसे को मुँहताज होकर मरा, किन्तु आज उसके बेटे लखपति-करोड़पति बने मौज उड़ा रहे हैं। यह पुण्य-पाप का ही खेल है।

भाइयो! पाप बाँधना तो सरल है किन्तु भोगना कठिन होता है, और पुण्य बाँधना कठिन किन्तु भोगना सरल होता है। चोरी करने में देर नही लगती, पर कारागार मे जाकर दो वर्ष की सजा काटना भारी पड़ता है। किसी प्राणी की गर्दन पर तलवार चला देने में क्या देर लगती है और कौन-सी मिहनत होती है? परन्तु उसके बदले पापकर्म का बन्ध होता है, और वह पाप नरक में ले जाता है। वहाँ हजारो वर्ष नही, लाखो भी नहो, सागरोपमों तक दुस्सह यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। उस समय छठी का दूध याद आ जाता है! घड़ी भर के सुख के लिए जो जीव लम्बे काल के लिए दुःख की सामग्री सचित कर लेते है, उन्हें कैसे विवेकवान् कहा जाय? जो दीर्घदर्शी होगा, वर्त्तमान को ही न देख कर आगे का भी विचार करेगा, वह पाप से बच कर अवश्य ही पुण्य और धर्म का आचरण करेगा।

अत्यन्त आश्चर्य है कि मनुष्य पुण्य का फल प्रत्यक्ष देखता है और पुण्य को चाहता भी है, परन्तु पुण्य का आचरण नहीं करना चाहता! यह भी आश्चर्य की बात है कि मनुष्य पाप के फल की इच्छा न करता हुआ भी पाप का ही आचरण करता है!

पुण्यवान् पुरुष आता है तो सब उठ कर खड़े हो जाते है।

क्यों भाई, क्यों होता है ऐसा ? क्या उसके चार आँखें हैं ? कई कहते हैं कि ओहो ! हम जाते हैं तो बोलते भी नही और ये जाते है तो खड़े हो जाते हैं। मगर उन्हे यह नही मालूम कि इनके जाने पर दूसरों को खड़ा कौन करता है ? यही सब तो पुण्य का खेल है ! पुण्य ही तीर्थङ्कर बनाता है, पुण्य ही चक्रवर्त्ती का पद प्रदान करता है और पुण्य ही देवेन्द्र की पदवी पर प्रतिष्ठित करता है। संसार के समस्त सुख पुण्य-पादप के ही मधुर फल हैं।

शास्त्रों में पुण्य नौ प्रकार के बतलाए गए हैं—(१) अन्न-पुण्य (२) पानपुण्य (३) लयनपुण्य (४) शयनपुण्य (५) वस्त्रपुण्य (६) मनःपुण्य (७) वचनपुण्य (८) कायपुण्य और (९) नमस्कारपुण्य

इन भेदो के अनुसार भूखे को भोजन देना और प्यासे को पानी पिला कर साता उपजाना पुण्य है। रहने को स्थान देना लयनपुण्य कहलाता है। लोग लाखों रुपये लगा कर जो धर्म-शालाएँ बनवाते है, वह लयनपुण्य मे ही अन्तर्गत है।

एक गाँव मे मार्गानुसारियों के पाँच-दस घर थे। उनकी आर्थिक स्थिति कमज़ोर थी। उसी गांव मे एक मालदार गृहस्थ था, पर वह दूसरे मज़हब का था। जब उन भाइयों ने कहा कि ईश्वर का भजन करने को हमारे पास कोई स्थान नहीं है तो उसने लगभग दस-पन्द्रह हजार का मकान दे दिया।

इसी प्रकार गरीबों को वस्त्र-बिछौना देना शयनपुण्य में सम्मिलित है। मन से दूसरों का हित चाहना, वचन से परहित-परोपकार करना और शरीर से आराम पहुँचाना क्रमशः मनपुण्य, वचनपुण्य और कायपुण्य हैं। बड़े एवं आदरणीय जनों को यथोचित नमस्कार करना नमस्कार पुण्य है।

यह नौ प्रकार का पुण्य बयालीस प्रकार से भोगा जाता है। कहा भी है:—

पुण्य प्रबल संसार में, पुण्य की यह सब माया है ॥
सुख सम्पति पावे वही, जिसने पुण्य कमाया है ॥टेर॥
मानव जन्म आर्य भूमि और, उत्तम कुल को पाता है।
दीर्घायु और पूर्ण इन्द्री, तन निरोग मिल जाता है ॥
सभी खेल है पुण्य के, ज्ञानी जन फर्माया है ॥ १ ॥

प्रथम तो मनुष्यजन्म मिलना ही बडा कठिन है। बहुत पुण्य का संचय हो तो मनुष्यजन्म मिलता है। भागवत मे भी शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा है कि यह दुर्लभ नरदेह तुझे सुलभ हो गई है, अतएव इसे व्यर्थ मत गँवा। जैनशास्त्रो मे भी मनुष्यभव को दुर्लभ बताया है।

फिर उस पुण्य मे भी और अधिक पुण्य का उदय हो तो आर्य देश मे जन्म लेने का अवसर मिलता है। विलायत में जन्म ले ले तो एटम बम या दूसरे हथियार बनाने मे ही सारी जिंदगी समाप्त हो जाती।

आर्य भूमि मिल जाने पर भी यदि किसी कसाई के घर जन्म हो गया अथवा सांसी जैसी किसी जाति मे उत्पन्न हो गया तो मनुष्यजन्म पाना भी किस काम का ? अतएव उत्तम संस्कार वाले कुल मे जन्म मिल जाना और भी कठिन है। उत्तम कुल वही है जहाँ अच्छा व्यवहार हो। जिस घर में शुद्ध श्रद्धा और पवित्र संस्कार हो वही कुल उत्तम गिना जाता है। इन तीन अनुकूल बातो के मिल जाने पर भी जब और अधिक पुण्य का उदय होता है, तब

लम्बी उम्र मिलती है; अन्यथा यो तो जन्मते ही मर जाता है या दो-चार मास अथवा दस पाँच वर्ष का होकर मर जाता है। ऐसा जन्म लेने से भी कोई लाभ नहीं होता!

लम्बी उम्र भी मिल जाय तो परिपूर्ण इन्द्रियों का मिलना कठिन है। कोई-कोई मनुष्य जन्मान्ध, जन्म के गूंगे, बहरे आदि देखे जाते हैं। वे भी मनुष्य--जन्म का पूरा लाभ नहीं उठा सकते। बहुत तीव्र पुण्योदय हो तब कहीं परिपूर्ण इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य बहुत मच्छियाँ मार कर आये हैं, मांसभक्षण करके आये हैं, वे जन्मतः लूले-लंगड़े और कोढ़ी होते हैं।

भाइयो! पूरा पुण्य का उदय हो तब पूरी इन्द्रियाँ मिलती हैं। इनके मिल जाने पर भी छठा जबर्दस्त पुण्य हो तो नीरोग शरीर मिलता है। नहीं तो आये दिन अस्पताल में पड़ा रहता है। ऐसा मनुष्यजीवन भी भला किस काम का?

मिले पुत्र पुण्यवान इसी से पतिव्रता घर नारी है।
करे रंक को राव पुण्य ही, बिना पुण्य के ख्वारी है॥
करे कद्र कोई नहीं, जो नहीं पुण्य कमाया है॥ २॥
तीर्थङ्कर चक्री पुरुषोत्तम आदि पद मिल जाता है।
वन में रण में शत्रु जल में, ये ही तुझे बचाता है॥
चरण पड़े पुण्यवान के जहाँ निधान प्रकटाया है॥ ३॥
यही सहायक मोक्षद्वार तक पहुँचा कर रह जाता है।
पाप-पुण्य के क्षय होने पर सिद्ध स्वरूप कहाता है॥
अजर अमर है आतमा आवागमन मिटाया है॥ ४॥

पुण्य छोड़ने योग्य बता कर औरों को भरमाते हैं।
चौथमल कहे वे अज्ञानी, एकान्तिक बन जाते हैं॥
दो हजार के साल में नीमच में पद गाया है॥ ५॥

पुण्य का उदय न हो तो स्त्री लंका की लाय और ताड़का की बहिन मिलती है। पुरुष बाजार से घबराया हुआ आवे और घर आकर देखे तो स्त्री मुँह चढ़ा कर बैठी है। ऐसा हो तो समझो कि यह पाप का उदय है। पुण्यवान् को ऐसी स्त्री मिलती है कि चिन्ताओं से व्याकुल पति उसे देख कर चिन्ता को भूल जाय। ऐसी लक्ष्मी सरीखी पत्नी परिपूर्ण पुण्योदय से ही प्राप्त होती है।

इसी प्रकार जो स्त्री पर्याप्त पुण्योपार्जन करके नहीं आई, उसे राक्षस के समान पति मिलता है। ऐसा दुष्ट कि चुपचाप बैठी हुई को भी लात मार दे!

पुण्यहीन जन प्रथम तो निपूते ही रहते हैं, कदाचित् पुत्र मिल गया तो ऐसा कि बाप की छाती पर मूँग दलता है! आये दिन उसके दुष्कर्मों की बधाइयाँ आती हैं! तब माता कहती है— इससे तो न जन्मता तो ही अच्छा था! यह लो भैरोजी को पूजने गई और अब ऐसा कहती है! तात्पर्य यह है कि पुण्य के अभाव में पुत्र भी ऐसा जन्मता है कि माता-पिता के हृदय को सदा आघात पहुंचाता रहता है।

पुण्य के बिना पड़ौसी भी अच्छा नहीं मिलता। इधर तो मेहमान आकर बैठे और उधर पड़ौसी मिर्चों की बोरी झाड़ना शुरु करे! ऐसा योग भी पाप के उदय से मिलता है।

भाइयो! पुण्य और पाप को समझने की सार्थकता यही है

कि जब यहाँ से जाओ तो खाली हाथ न जाना। पुण्य की पूंजी साथ लेकर जाओगे तो आगे सुख पाओगे। खाली हाथ चल दोगे तो दुर्गति होगी। यहाँ से गये और पैसे साथ न ले गये तो पहले तो रेलवे का बाबू रेल में बैठने ही न देगा। कदाचित् चोरी से जोधपुर चले भी गये तो वहाँ भूख लगने पर जब बाजार में जाओगे तो हलवाई कह देगा-हटो यहाँ से, मक्खियाँ उड़ाओ! अतएव मनुष्य जन्म पाया है तो खाली हाथ मत जाना।

संसार में सुखी कम है और दुखी ज्यादा हैं। इसका कोई कारण पूछे तो यही उत्तर है कि संसार में धर्म करने वाले थोड़े हैं और पाप करने वाले बहुत है! लोग प्रथम तो धर्म करते नहीं और धर्म की बात भी पसंद करते नहीं, कदाचित् लोकलाज या लिहाज़ से सुनने आ गये तो कहते हैं-ये तो झूठी बातें बनाते हैं! अरे, ऐसी-ऐसी बिगड़ी खोपड़ी के लोग भी हैं जो ईश्वर को धिक्कार देते हैं और कहते हैं कि आत्मा है ही नहीं!

इस प्रकार सब सामग्री पुण्य के उदय से अनुकूल मिल जाने पर भी सद्गुरु की प्राप्ति हो जाना कठिन है। हीरा किसी के हाथ आ गया, परन्तु हीरे की पहचान बताने वाला जौहरी न मिला तो वह हीरा किस काम का है? वह तो उसे पाषाण ही समझेगा।

एक कुम्हार मिट्टी खोदने गया। खोदते-खोदते उसे चम-चमाती हुई कोई चीज़ नज़र आई। उसने उसे ले लिया। लौटते समय रास्ते में उसने नदी मे स्नान किया और उस चीज़ को धोया। वह और अधिक चमकने लगी। उसमें एक छेद था। उसे देख कर कुम्हार ने सोचा-इसे मै अपनी गधी के बच्चे के गले में पहना दूं तो अच्छा लगेगा! उसने सवा लाख की कीमत का वह हीरा बच्चे के गले में डाल दिया। अब वह गधी के बच्चे को साथ में ले जाता

श्रौर उसका फुदकना देखकर बहुत प्रसन्न होता था। एक दिन कुम्हार उसी गाँव के महाजन की दुकान पर तमाखू लेने गया। महाजन की नजर उस हीरे पर पड़ गई। उसने उसे ध्यान से देखा श्रौर पूछा–यह पत्थर कहाँ मिला तुम्हे ? कुम्हार बोला–मिट्टी खोदते समय अचानक ही मिल गया !

महाजन बोला-क्या इसे बेच सकते हो ?

कुम्हार-हाँ, सवा सेर गुड़ में दे सकता हूँ।

महाजन ने वह हीरा खरीद लिया। कुम्हार सवा सेर गुड़ पाकर बहुत प्रसन्न हुश्रा। उसके बाल–बच्चो ने भी खूब खुशी मनाई।

महाजन ने उसे अपनी तराजू के पासंग की तरफ बाँध दिया। उसने सोचा–लोग इसकी तरफ देखते रह जाएँगे श्रौर मैं कम तोल दूंगा ! यही हुश्रा। बेईमानी से माल तोलते–तोलते कई दिन बीत गये। उसने १०–५ रुपये भी कमा लिये।

एक दिन दिल्ली का कोई जोहरी रास्ता भूल कर उसी गाँव में जा पहुँचा। वह भूखा था श्रौर घबराया हुश्रा था। पूछताछ करके सौदा खरीदने के लिए वह उसी महाजन की दुकान पर गया। महाजन सौदा तोलने लगा तो जौहरी की नजर उस हीरे पर पड़ी। जौहरी ने महाजन से पूछा–यह चीज कहाँ से श्राई सेठजी ?

महाजन–मैंने सवासेर गुड़ देकर खरीदी है।

जौहरी समझ गया कि यह महाजन इस वस्तु का मूल्य नहीं समझता। उसने कहा–क्या इसे तुम बेचना चाहते हो ?

महाजन—महाजन का क्या है ? पैसे मिलें तो अपनी मूछों के बाल भी बेच दे। पाँच रुपये मे इसे भी बेच सकता हूँ।

जौहरी—अच्छा पौने पाँच !

महाजन—नहीं, एक पाई भी कम न लूँगा।

जौहरी—दो आने कम पाँच लोगे ?

महाजन—नहीं, कह दिया सो कह दिया !

जौहरी ने सोचा-पहले दाल-बाटी खालें; जाते समय ले लेंगे। यहाँ कौन इसका ग्राहक है ?

जौहरी चला गया। गाँव के बाहर एक बगीचे में जाकर उसने दाल-बाटी बनाई-खाई और सो गया !

अकस्मात् एक दूसरा जौहरी उधर जा निकला। वह भी उसी महाजन की दुकान पर पहुँचा। उसने भी सौदा तुलवाया। उसे भी हीरा दिखाई दिया। उसने भी उसकी कीमत पूछी।

महाजन ने कहा-अभी तुम्हारे जैसा एक राहगीर और आया था। वह दो आने कम पाँच रुपया लगा गया है। पाँच में दूंगा।

इस जौहरी ने झट पाँच रूपये निकाल कर दे दिये। हीरा लेकर वह भूखा-प्यासा ही वहां से रवाना हो गया और सीधा अपने घर पहुँचा।

दूसरा जौहरी सोते-सोते उठा और शाम को फिर महाजन की दुकान पर गया। बोला—सेठ, आना कम पांच मे दे दे !

महाजन-वह चीज़ तो पूरे पांच में चली गई !

जौहरी-कौन ले गया ?

महाजन-आप ही जैसा एक और आया था। उसे बेच दी।

जौहरी-अरे, वह तो सवा लाख की कीमत का हीरा था!

महाजन-छाती कूटो तुम, मुझे तो सवा सेर गुड़ के बदले पूरे पांच कल्दार मिल गये!

आखिर जौहरी अपने भाग्य को कोसता-अपने घर लौटा!

आशय यह है कि जैसे कुम्हार को हीरा मिला था, उसी प्रकार मनुष्य को मनुष्यजन्म मिला है। हीरे की तो कीमत है, पर इस जीवन की कोई कीमत नहीं। सारे संसार की सम्पत्ति भी इसका मूल्य नहीं हो सकती। ऐसे अनमोल जीवन को पाकर के भी मूर्ख मनुष्य सवा सेर गुड़ के समान विषय-सेवन मे गंवा देते हैं। वे हीरे की कद्र नहीं समझते। जैसे हीरे को महाजन ने बेई-मानी एवं चोरी का साधन बनाया था, उसी प्रकार लोग इस अलौकिक हीरे को भी पापोपार्जन का साधन बना रहे हैं। जो लोग मनुष्य-जीवन को किसी भी प्रकार के पाप मे प्रयुक्त करते हैं, वे सब उस कुम्हार या महाजन के ही समान है।

जो लोग मानवभव का मूल्य समझते हैं, किन्तु प्रमादशील हैं, वे पहले जौहरी के समान हैं। सोचते हैं-अभी तो खा-पी लें, मौज करले, आनन्द भोग लें, बुढ़ापे में रामजी का नाम ले लेंगे! मानो उन्होंने बुढ़ापे तक जिंदा रहने का पट्टा लिखा लिया है! मौत के साथ समझौता कर लिया है! उन्हें क्या पता है कि रेल-दुर्घटना से, मोटर के उलट जाने से, आग में जल मरने से, पानी में डूब जाने से या किसी और तरह से कभी भी मौत आ सकती है। इसलिए—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
अवसर बीत्यो जाता है, फेरी करेगो कब?।

भाई! बड़ा ही अनमोल अवसर जा रहा है। तू प्रमाद मे क्यों पड़ा है? जरा अपनी स्थिति पर विचार कर। तेरा जीवन कितना अध्रुव और अशाश्वत है! किसी भी पल समाप्त हो सकता है। अगर तू यो ही चल दिया तो तेरी परलोक मे क्या दशा होगी? एकदम आँख मींच कर क्यों संकटों की तरफ भागा जा रहा है! चेत। हमारी थोड़ी तो मान जा!

मनुष्य जन्म को पाय ने, सुन चेतनजी,
कीजे खूब जतन चेतनजी।
मत पड़ो जग जाल में सुन चेतनजी,
सिद्धपुर तेरा वतन चेतनजी॥

हे चिदानन्द चेतन! मनुष्य जन्म को पाकर प्रमाद न कर–यतना कर; विवेक की ज्योति जगा! जगत् के जंजाल मे न पड़ कर आत्मा का कल्याण कर ले। दूसरों की भलाई कर। जरा विचार कर कि संसार मे आकर तूने क्या किया है? किसी का भला किया? नही किया तो जैसे गली–गली भटकने वाला कुत्ता पैदा हुआ या न हुआ, एक समान है; उसी प्रकार तेरा जन्म लेना न लेना भी समान है। यह बड़े वकील हैं और यह बड़े भारी सेठ है! है तो क्या हुआ, जाति और देश का इनसे क्या भला हुआ? अगर कुछ भी न हुआ तो इनका बड़प्पन किस काम का? बड़प्पन अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे नही, परोपकार करने में है।

जिसने श्रेष्ठ नर–तन पाकर आगामी भव के लिए कुछ भी

नहीं किया वह नीलम की खान पाकर भी मँगता बना रह गया ! गंगा के किनारे बैठ कर भी प्यासा मरा ! इस विषय में संसार के समस्त वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि शास्त्र सहमत हैं। कुरान के १५ वे पारे मे एक जगह लिखा है खुदा कहता है कि दो मोहताजो को और दो मुसाफिरो को ! अब नही मानोगे और मर कर वहाँ जाओगे तो टुकड़े-टुकड़े होकर दोज़ख (नरक) मे गिर पड़ोगे। जब दोज़ख का दारोगा पूछेगा कि तुमको खुदा का हुक्म सुनाने वाला नही मिला ? तो उस वक्त तुम कहोगे कि हमने विश्वास नहीं किया !

यह उत्तर सुन कर भी मनुष्य अपने पापो का फल भोगने से नही बच सकता। क्या यही बात तुम्हारे विषय में घटित नही होती ? यहां हम तुम्हे परमात्मा का आदेश सुनाते हैं तो कहते हो कि यह तो बकते हैं ! मगर कुरान के अनुसार वहां कहोगे कि सुनाने वाले तो मिले थे, किन्तु हमने उनकी बातों पर यकीन नही किया ! इस कारण हम दोज़ख मे गिरे है !

इस प्रकार सभी मज़हब वाले कहते हैं कि आगे के लिए कुछ न कुछ करो। कुत्ते का तरह मत मरो। संसार-समुद्र को तिरो। याद रक्खो, तुलसीदास के कथनानुसार भगवान् के भजन के बिना राजा को तो गधा और रानी को कुतिया बन कर रैंकते भौंकते फिरना पड़ेगा। हमारे यहाँ भी कहा गया है कि—

श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात् ॥

धर्म के प्रताप से कुत्ता भी देव बन जाता है और पाप के प्रभाव से देव भी कुत्ता हो जाता है।

भाइयो ! अपने अन्तःकरण को शान्त, स्वस्थ और स्थिर

करके विचार करो कि भगवान् के भजन बिना तुम क्या करोगे ? वहां तुम्हारा कौन है ? कौन मित्र या नातेदार है जो तुम्हारा स्वागत करेगा ?

यहाँ की यहाँ की ही तू बातें करे,
पर आगे की करता फिकर ही नहीं !

'हम को नहीं जानते ! हमारी बम्बई में फलां सेठ के यहाँ शादी हुई है !' हमे नहीं जानते ! कलकत्ता मे हमारी बड़ी भारी दुकान है ! तुम नही जानते, सारा बाजार मेरा है !,

अच्छा साहब ! अभी तक नहीं जानते थे। अब जान गए कि आप दुकान और बाजार अपनी छाती पर रख कर ले जाएँगे !

भाई, दुनिया की सम्पदा दुनिया मे रहेगी। सब जहाँ का तहाँ रह जाएगा। केवल तू ही चला जाएगा ! यह क्या तुम नहीं जानते ? तुम्हे नहीं मालूम है कि लाखो-करोड़ो की सम्पत्ति मे से एक फूटी कौड़ी भी तुम्हारे साथ जाने को नहीं है ? जानते हो तो फिर अभिमान क्यो करते हो ? क्यों नहीं परभव में जाने योग्य पूंजी इकट्ठी करते हो ? तुम्हे सुख चाहिए, पर सुख के लिए प्रयत्न कुछ न करना पड़े ! यह नहीं होने का।

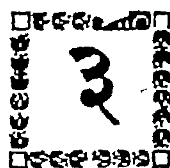
भाइयो ! अपनी श्रद्धा को, अपने विचारों को पवित्र बनाओ। वीतराग प्रभु ने आत्मकल्याण का जो मार्ग बतलाया है, उसके अनुसार प्रवृत्ति करो। पूरी तरह आरंभ-परिग्रह का परित्याग करने की क्षमता हो तो करो और साधु बन जाओ। इतना सामर्थ्य न हो तो श्रावक के बारह व्रतों को ही धारण करो। ऐसा न करोगे तो यह जन्म भी बिगाड़ लोगे। जैसे अनादि काल से अब तक अनत-

अनन्त भव ग्रहण कर चुके हो, अनन्तानन्त बार जन्म और मरण के पात्र बन चुके हो, किन्तु आत्मा को सुखी नहीं बना सके। वही का वही चक्कर आज भी चल रहा है। इसी प्रकार यह जन्म भी निरर्थक चला जाएगा।

आप सोचते हैं-'बात तो ठीक ही है। महाराज ठीक कहते हैं; परन्तु बुढ़ापा आने पर पुण्य-धर्म करेंगे। अभी बम्बई की दुकान सँभालनी है।' इस प्रकार दो आने कम पाँच में रह जाने से जौहरी की तरह पश्चात्ताप करना पड़ेगा और हीरा चला जायगा।

भाइयो! मैंने वीतराग प्रभु की वाणी के अनुसार आपको यह पथ प्रदर्शित किया है। इसी पथ पर चलने का मैं स्वयं प्रयास कर रहा हूँ। इसी पथ से आत्मकल्याण के मंगलमय लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है। आत्मकल्याण का दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है। इस प्रकार का विश्वास आपके चित्त में भी उत्पन्न होना चाहिए। इस विश्वास के साथ आप वीतरागवाणी का अनुसरण करेंगे तो आपका परम कल्याण होगा और आनन्द ही आनन्द होगा।

राणावास }
१६-१-४६ }



गुण-गुणी

स्तुतिः—

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप—
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम्॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? प्रभो! आपके कहाँ तक गुण गाए जाएँ।

प्रभो! आपके गुण पूर्ण चन्द्रमा की कलाओं के समूह के सदृश निर्मल और प्रकाशमान हैं। वे गुण तीनों लोकों का अतिक्रमण कर रहे हैं। ठीक ही है—जो तीन लोक के अद्वितीय नाथ

पर आश्रित है, जिन्होंने आप जैसे तीनों जगत् के स्वामी का सहारा पकड़ा है, उन्हे रोकने वाला इस संसार मे कोई नहीं है। वे अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी सचार कर सकते है।

ऐसे निर्मल एवं सर्वव्यापी गुणो से सुशोभित भगवान् ऋषभदेवजी को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

सज्जनो ! गुण गुणी मे रहते हैं। गुण और गुणी मे कथंचित् अभेद सम्बन्ध है। यहाँ अभेद न कहकर "कथंचित् अभेद" कहने का खास प्रयोजन है। उसे थोड़े मे समझा देना आवश्यक है।

गुणी का अर्थ है द्रव्य, वस्तु या पदार्थ। द्रव्य के अंश को या शक्ति को, गुण कहते हैं। इस प्रकार गुणी अंशी है और गुण अश है। अंशों का समूह अंशी कहलाता है। अब देखना चाहिए कि अंश, अंशी से भिन्न होता है अथवा अभिन्न होता है ?

अंशों को अशी-द्रव्य से यदि सर्वथा पृथक् मान लिया जाय तो अंशी की कोई सत्ता नहीं रह जाती। पृथक्-पृथक् अंश अगर अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं तो वे अंश क्यों कहलाते हैं ? गाय और घोड़ा दोनो अलग-अलग हैं, तो गाय को घोड़े का अंश नहीं कहा जा सकता और न घोड़े को गाय का अंश ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार यदि द्रव्य से अर्थात् अंशो से गुण अर्थात् अंश सर्वथा भिन्न हो तो गुणो को भी द्रव्य का अंश नहीं कहा जा सकेगा। बल्कि वे अंश गाय और घोड़े की भाँति पृथक् ही पदार्थ ठहरेंगे। ऐसी हालत में अंशी (द्रव्य) नामक कोई पदर्थ शेष ही नहीं रह जायगा।

जब अंशी की कोई सत्ता नहीं रह जायगी तो उन गुणो को किसीका अश कहेंगे ? अंशीके बिना अंश किसके? इस प्रकार अंशी

के अभाव में अंशों का भी अभाव हो जायगा। अतएव गुण और द्रव्य को सर्वथा पृथक् पृथक नहीं माना जा सकता।

इसी प्रकार गुण और गुणी को सर्वथा अभिन्न मानना भी योग्य नहीं है। जहाँ सर्वथा अभेद है, वहाँ भेद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। फिर 'यह गुण है और यह गुणी है' ऐसा भेदमय व्यवहार किस प्रकार हो सकेगा। अभिप्राय यह है कि दोनों को यदि बिलकुल अभिन्न मान लिया जाय तो दोनों की सत्ता नहीं रह सकती दोनों में से किसी एक का ही अस्तित्व रह सकेगा। या तो गुण ही माना जा सकेगा या गुणी ही। मगर गुणी न होगा तो गुण रहेगा किसमें? और यदि गुण न होगा तो किसी को गुणी कैसे कहा जा सकेगा?

मिस्री गुणी (द्रव्य) है तो मिठास उसका गुण है। दूध द्रव्य है तो मधुरता उसका गुण है। पाषाण द्रव्य और कठोरता उसका गुण है। इनमें अभेद है या भेद है? मिस्री की मिठास मिस्री से अलग नहीं है; फिर भी मिस्री और मिठास दोनों एक ही चीज़ नहीं हैं। मिस्री आँखों से देखी जा सकती है, पर मिठास आँखों से दिखाई नहीं देती। वह सिर्फ जीभ से ही जानी जाती है। तो जिस प्रकार मिस्री और मिठास में भेद भी है और अभेद भी है, उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य और गुण में अपेक्षा से भेद भी है और अभेद भी है।

आत्मा गुणी है और उसमें अनन्त गुण पाये जाते हैं। गुण गुणी का स्वभाव है। गुण से विपरीत अवगुण होता है, अर्थात् गुण जब विकृत हो जाता है अथवा भ्रष्ट बन जाता है, तब गुण ही अवगुण कहलाने लगता है!

गुणों को दो भागों में बांटा जा सकता है-सामान्य गुण और विशेष गुण। जो साधारणतया सभी द्रव्यों मे समान रूप से विद्यमान रहते हैं, वह सामान्य गुण कहलाते हैं, जैसे अस्तित्व, प्रमेयत्व आदि। जीव हो या पुद्गल, धर्मास्तिकाय हो या अधर्मास्तिकाय, आकाश हो अथवा काल, अस्तित्व सभी में है। कोई भी द्रव्य अस्तित्वहीन नहीं है। इसो प्रकार प्रमेयत्व गुण भी सब द्रव्यो में समान रूप से पाया जाता है। प्रमेयत्व गुण वह शक्ति है, जिसके कारण द्रव्य किसी ज्ञान का विषय बनता है। अगर द्रव्य में प्रमेयत्व गुण न हो तो हम उसे जान हो न पाते।

चुम्बक मे खींचने की शक्ति है और लोहे मे खिचने की शक्ति है। इस दुतरफा शक्ति के कारण ही चुम्बक खिचता है और लोहा खींचता है। जहां यह दुतरफा शक्ति नहीं है, वहां खिचाव भो नहीं हो सकता। चुम्बक के पास लोहे के बदले पाषाण रख दिया जाय तो चुम्बक के द्वारा वह नहीं खिंचेगा। यहां यद्यपि चुम्बक की शक्ति ज्यों की त्यों विद्यमान है, मगर वह पाषाण को नहीं खींचता है, क्योंकि पाषाण में खिंचने की शक्ति नहीं है।

इसो प्रकार लोहे मे खिचने की शक्ति विद्यमान होने पर भी यदि उसे पाषाण के पास रक्खा जाय तो पाषाण उसे नहीं खींच सकेगा, क्योंकि पाषाण में लोहे को अपनी तरफ चुम्बक की भांति खींचने की शक्ति नहीं है।

तात्पर्य यह है कि चुम्बक और लोहे की-दोनों की शक्ति के कारण ही चुम्बक के द्वारा लोहे का आकर्षण होता है। इसी प्रकार ज्ञान और ज्ञेय दोनों की शक्तियों के कारण ही ज्ञेय (पदार्थ) ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। इस प्रकार ज्ञान में जानने की और

पदार्थ मे ज्ञान का विषय होने की शक्ति है। पदार्थ की यह ज्ञेयत्व शक्ति ही प्रमेयत्व नामक गुण है। यह प्रमेयत्व गुण सभी द्रव्यों में मौजूद है, इस कारण वह भी सामान्य गुण कहलाता है।

विशेष गुण वह कहलाते हैं, जो सब द्रव्यों में नहीं रहते, वरन् किसी एक ही द्रव्य में रहते हैं। जैसे जीव में ज्ञान और दर्शन गुण; पुद्गल में रूप रस गंध और स्पर्श, धर्मास्तिकाय में गति सहायकता, अधर्मास्तिकाय में स्थिति सहायकता, आकाश मे अवगाहना और काल में परिवर्त्तना आदि इन विशेष गुणों के कारण ही एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य से भिन्न होता है और हमारी पहचान में आता है।

कुछ गुण ऐसे भी हैं जो सामान्य गुणों की भाँति समस्त द्रव्यों में नही रहते और विशेष गुणों की भाँति सिर्फ एक द्रव्य में भी नहीं रहते; अलवत्ता वे अनेक द्रव्यो में रहते हैं। अमूर्त्तत्व आदि गुणों को इस श्रेणी में गणना की जा सकती है अमूर्त्तत्व गुण पुद्गल को छोड़ कर शेष पांच द्रव्यों में रहता है। इसी प्रकार लोकव्यापित्व गुण आकाश और पुद्गल को छोड़ कर चार द्रव्यों में रहता है।

आत्मा में दर्शन, ज्ञान आदि जो गुण हैं, वे आवरणों से दबे हैं! अपने असली रूप में प्रकट नहीं हो पा रहे हैं। उन्हे असली स्वरूप मे प्रकट करने के लिए ही साधना और धर्म की आराधना की जाती है। जब वे पूर्ण रूप से शुद्ध रूप से प्रकट हो जाते हैं, तो यही आत्मा भगवान् ऋषभदेव के समान बन जाती है।

आत्मिक गुणों के शुद्ध रूप मे प्रकट होने में कर्म ही बाधक है। जिस प्रकार मक्खन तैयार है, परन्तु घी बनने में छाछ बाधा

पहुँचाती है । जब छाछ जल जाती है, तब घी बनता है । इसी प्रकार कर्म रूपी छाछ आत्मा मे विद्यमान होने से सम्पूर्ण ज्ञान दर्शन रूपी घी तैयार नही हो पाता और आत्मा, परमात्मा नही बन पाती । कर्म आत्मा को ऊँचे दर्जे पर नही पहुँचने देते । यह कर्म क्या है ?

कीरइ जिएण हेउहि, तेणंतो भरणए कम्मं ।

अर्थात-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जीव के द्वारा जो किये जाते है, उन्हे कर्म कहते है । अर्थात इन कर्मो का कर्त्ता यह आत्मा स्वयं ही है । दूसरा कुछ नही कर सकता ।

इसके विरुद्ध अपने संकट का उत्तरदायी दूसरा कोई समझा जायगा तो चित्त मे संक्लेश होगा, कषाय की जागृति होगी और इससे पुनः अशुभ कर्मो का बंध होगा ।

कई लोग अपने भले-बुरे की जिम्मेवरी किसी अदृश्य शक्ति पर डालते हैं । उनका खयाल है कि ईश्वर हमारा बुरा-भला करता हैं । किन्तु ऐसा समझना भी अज्ञानपूर्ण है । परमात्मा यदि आत्मा से उच्च कोटि का कोई व्यक्ति है तो वह निर्दय नहीं हो सकता कि आपको संकट मे डाल दे । संसार में अकसर बड़ी ही दारुण और करुण घटनाएँ घटती हैं । कभी किसी जराजीर्ण वृद्धा का एक मात्र सहारा जवान बेटा चल बसता है । कहीं नवविवाहिता वधू वैधव्य को दारुण व्यथा का पात्र बन जाती है । कही भोला-भाला फूल-सा सुकुमार शिशु दुस्सह व्यथा से कराहता-कराहता यम का ग्रास बन जाता है । इन सब घटनाओं का उत्तरदायित्व यदि परमात्मा पर ही हो तो वह कितना नृशंस, कितना अधम और

कितना निर्दय साबित होगा ? पापाण हृदय मनुष्य भो जो व्यथा किसी को नहीं उपजा सकता, वही व्यथा जब ईश्वर उपजाता है तो कौन मूर्ख ऐसा है जो उसे अनन्त करुणा का सागर कहेगा ! और यदि वह करुणा सागर है तो किसो को पीड़ा कैसे पहुंचा सकता है ?

जब एक तरफ ईश्वर को निर्दयता का लांछन लगता है और दूसरी तरफ दयालु भो कहा जाता है, तो अटपटी-सी स्थिति बन जाती है। इस विरोध को हटाने के लिए लोग कहने लगते हैं-ईश्वर इंसाफ करता है। जिसका जैसा कर्म है, उसको वैसा ही फल दे देता है।

हम कहते हैं-चलो, कुछ तो ठिकाने आये। प्रथम तो यही कहा जा सकता है कि ईश्वर दया का सागर है तो वह जोव को पाप कर्म करने से रोक क्यो नहीं देता ? पहले ही रोक दे तो पीछे कठोर दंड न देना पड़े। मगर छोड़ दीजिए यह बात । आखिर ईश्वर यदि कर्म के अनुसार हो फल देता है तो फिर ईश्वर सुख-दुःख का दाता न रहा, बल्कि कर्म हो वास्तव में सुख-दुःख देने वाले ठहरे। कर्म जीव के किए हुए हैं, अतः परिणाम यहो आया कि जोव स्वयं ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है। शास्त्र भी यही कहता है:-

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥

उ. २. गा ३७

अर्थात्-आत्मा ही शुभ-अशुभ कर्म उपार्जन करके अपने सुख और दुःख का कर्त्ता है और वही उनको हटाने वाला भी है।

सुख भी इसी आत्मा ने उत्पन्न किया है और दुःख भी इसी आत्मा ने उत्पन्न किया है। यह अपने ही हक मे सुख और अपने ही हक मे दुःख उत्पन्न करती है। आत्मा स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। जब आत्मा सन्मार्गगामी होता है तो अपना मित्र बनता है और कुमार्गगामी होता है तो अपना शत्रु हो जाता है। यश और अपयश दोनों ही आत्मा की मुट्ठी मे है। वह चाहे जिसे प्राप्त कर सकती है। वह आप ही हँसती है और आप ही रोती है। स्वयं सत्कर्म करके सुखी होती है, स्वयं असत्कर्म करके दुखी होती है। दुनिया की यह कहावत एकदम सही है कि-'हाथ कमाया कामडा कुण ने दीजे दोस।'

भगवद् गीता ने भी इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है। गीता के छठे अध्ययन मे कहा है-

आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपु रात्मनः।

याद रक्खो! आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का दुश्मन है।

भाइयो! स्वयं कर्म करने वाली और स्वयं ही कर्मों का फल भोगने वाली आत्मा ही है। वह आत्मा आठ प्रकार की है। द्रव्य रूप आत्मा को द्रव्यात्मा कहते हैं। दूसरे नंबर की कषायात्मा है। आत्मा जब कषायो में प्रवेश करती है तो वह कषायात्मा कहलाती है। कषाय चार हैं-क्रोध, मान, माया, लोभ,। क्रोध मे प्रवेश करने पर क्रोधी आत्मा कहलाती है। लोग भी कहने लगते है-ये साहब, क्रोधी आत्मा वाले हैं। देखो, पानी कैसा शीतल होता है! शीतलता उसका स्वभाव ही है। किन्तु जब किसी पात्र में भर कर चूल्हे पर चढ़ा दिया जाता है और उबाल लिया जाता है,

तब वही पानी उंगली मे फफोला पैदा कर देता है। आग के संसर्ग से उसके स्वभाव में विकृति आ जाती है। इसी प्रकार अपने स्वरूप से आत्मा प्रशान्त एवं शीतल है, किन्तु क्रोध कषाय के कारण उसमें विकृति आ जाती है। क्रोध के वशीभूत होने पर आत्मा में एक प्रकार का उन्माद उत्पन्न हो जाता है। तब वह अनेक प्रकार से असत्य भाषण करने लगती है। कदाचित् सत्य. कहे तो भी उसका कहना असत्य ही माना जाता है क्योंकि क्रोधी को भान नहीं रहता। जो मन में आता है, वही वह कह देता है। क्रोध हटने पर पछताता है। क्रोधी रोने लगता है और अपने हाथ से अपने मुंह पर थप्पड मारने लगता है, यहाँ तक को कुएं मे गिर जाता है और जहर खाकर मर जाता है। क्रोधी आत्मा की यह दुर्दशा होती है।

इसी प्रकार मनुष्य पर जब अभिमान का भूत सवार होता है, व उस पर घमंड का असर होता है, तो वह बकवास करने लगता है-मैं ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा। आत्मा बहुत अच्छी है लेकिन घमंड में आने पर बुरी बन जाती है।

इसी प्रकार कपट, लोभ, लालच आदि में प्रवेश करने पर भी उसकी सूझ-बूझ समाप्त हो जाती है। ऐसी आत्मा कषायोत्मा कहलाती है।

जैसे कोई व्यक्ति कपड़े की दुकान पर बैठने से बजाज कहलाता है और सोने-चांदी की दुकान करने से सर्राफ कहलाता है, इसी प्रकार यह आत्मा जब क्रोध मान माया और लोभ की दुकान पर बैठती है, तब कषायात्मा कहलाने लगती है। आंख लाल को लाल, हरे को हरा, काले को काला और पीले को पीला देखती है, लेकिन जब लाल रंग का चश्मा चढ़ जाता है, तब सभी

चीजें लाल ही लाल दिखलाई देने लगती हैं ठीक इसी प्रकार जब आत्मा पर कषाय का चश्मा चढ़ जाता है, तब उसको दृष्टि में भी विकार आ जाता है। अन्यथा स्वभाव से तो यह आत्मा बड़ी ही निर्मल और पवित्र है।

तीसरी है योगात्मा। जब आत्मा मन के द्वारा विचार करती है तो मनोयोग-आत्मा कहलाती है। वचन बोलने पर वचन योग रूप आत्मा और काय से हलन-चलन आदि क्रिया करने पर काय-योगात्मा कहलाती है। यह तीनों भी आत्मा की दुकानें हैं। योग का अर्थ है व्यापार। तो जैसे आपकी दुकानें है, उसी प्रकार आत्मा को यह दुकानें हैं। कहा भी है-

मन वचन कर्म की हट्टी है, आत्मा इसका अधिकारी है।
टोटा और नफा स्वयं भोगे, नहीं इसमें साझेदारी है॥

इस आत्मा का मन का व्यापार अगर अच्छा चल जाय तो यह लाखों कमा लेता है और निहाल हो जाता है। और मन का व्यापार यदि उल्टा चल पड़ा तो दुकान का दिवाला निकल जाता है। सम्पूर्ण मनुष्य जीवन निष्फल, बल्कि कुफलदायी हो जाता है। वचन के व्यापार का भी यही हाल है। एक ही उत्तम वचन बोल दे तो करोड़ों जीवों को अभयदान मिल जाय और एक वचन से हजारों जीवों को हानि हो जाय। दुकान का दिवाला निकल जाय। काय के द्वारा चोरी न करे, शील-व्रत पाले, ब्रह्मचर्य की आराधना करे, सेवा-वैयावृत्य करे, अन्य शुभ कर्म करे तो आत्मा को नफा होता है। इसके विपरीत चोरी करने से हिंसा करने से मांस भक्षण करने से, अंडे चूसने से, व्यभिचार करने से दुकान में टोटा पड़ जाता है, सब काम बिगड़ जाता है। किन्तु

मन वचन और काय की तीनों ही दुकानें न हो तो आत्मा को न घाटा पड़े और न नफा हो।

इन तीनों का अधिकारी आत्मा है। आत्मा को ही नफा टोटा होता है, उसी को इनका फल भोगना पड़ता है। इसमें पत्नी पुत्र, भाई आदि किसी की साझेदारी नहीं है। इन दुकानों से होने वाले नफे नुकसान को आत्मा अकेला ही भोगता है। यह योगात्मा का जिक्र हुआ।

चौथी उपयोगात्मा है। यह आत्मा जब उपयोग में प्रवृत्ति करती है तो लोग भी कहने लगते हैं-साहब ! ये बड़े उपयोगवान् है। कैसा उपयोग है इनमें ! मान लीजिए कि किसी ने पंचोला किया और उसका पैर लड़खड़ा गया। उस समय उपयोग वाली आत्मा उस तपस्वी की वैयावृत्य करने लगती है। ऐसा करने से उसे अपार नफा होता है। साधु गोचरी के लिए जाय और कोई श्रावक किवाड बद करके घर में घुस रहे तो उसे नुकसान होता है। उस समय किवाड़ न लगाना उपयोग कहलाता है। अच्छे श्रावकों में ऐसा विवेक पाया जाता है। वे न जाने किस समय किस निमित्त से कितना नफा कमा लेते हैं। किवाड़ खुले रहें तो संतों और सतियों का योग मिल जाता है। मालवा में यह रिवाज सा है कि चौमासे के आरंभ से अन्त तक प्रायः प्रत्येक घर मे धोवन सुरक्षित रख लिया जाता है। यह केवल जैनों में ही नहीं, सरदारों, सुनारों और दर्जियों आदि के घरों में भी ऐसा होता है। कितना विवेक है उन लोगों में ! भगवान् ने फर्माया है कि जहां उपयोग है, विवेक है, वही धर्म है। वस्तुतः उपयोग बड़ी चीज है। आत्मा में जब उपयोग की जागृति हो जाती है तो सहज ही उसका काम बन जाता है।

एक बार बादशाह अकबर ने बीरबल से पूछा-बीरबल! ओसान (उपयोग) बड़ा या हथियार?

बीरबल—हुजूर, ओसान बड़ा है।

अकबर अधिक न बोला। 'अच्छा, ठीक है। कह कर वह चुप हो गया।

एक दिन पागल हाथी छूट गया। किसी गली में बीरबल और उसके हाथी से उसका मुकाबिला हो गया। बीरबल ने सोचा-इस समय क्या किया जाय? कैसे अपना बचाव किया जाय? उसके पास ही एक कुत्ता पड़ा था? बीरबल ने तुरन्त ही उसे उठा कर हाथी के मुँह पर दे मारा। कुत्ते का फैंकना था कि वह 'बें-बें-बें' करके चिल्लाया। उसकी इस चिल्लाहट को सुन कर मदोन्मत्त हाथी घबराया और भाग गया। इस प्रकार ओसान से बीरबल ने अपनी जान बचा ली।

विचार कीजिए, उस समय वह तमंचा या पिस्तौल कहाँ से लाता? उस समय तो लकडी भी उसके पास नहीं थी। इस प्रकार ओसान हथियार से भी बड़ी चीज है। ओसान न हो तो हथियार भी बेकार हो जाता है और यदि ओसान है तो हथियार न होने पर भी काम चल जाता है।

एक आर्याजी विहार करती आ रही थीं। रास्ते में एक नदी पड़ी। वहाँ एक गुंडा खड़ा था। उसने उन्हें पकड़ना चाहा। आर्याजी को अपना बचाव करने का दूसरा कोई उपाय नहीं दिखाई दिया। जब गुंडा अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फाड़ कर नजदीक आया तो आर्याजी ने रेत ले कर उसकी आँखों में फैंक दी। इस प्रकार उन्होंने अपनी रक्षा कर ली। इसीलिए कहा गया

है कि ओसान बहुत बड़ी चीज है । समय पर ओसान आ जाय तो सहज ही काम सिद्ध हो जाता है।

ओसान या विवेक आध्यात्मिक जीवन के लिए ही नहीं, व्यावहारिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। इन बाइयों में यदि विवेक की ठीक मात्रा मौजूद है तो ये अपने परिवार को सुखी, स्वस्थ और नीरोग रख सकती हैं । किस मौसिम मे क्या भोजन पथ्य होता है और क्या अपथ्य होता है, इस बात को जानने वाली बाई स्वयं अनेक रोगो से बच सकती है और दूसरों को भी बचा सकती है। 'कुंवार करेला और कातिक दही' खिलाने वाली अपने परिवार को बीमारी का शिकार बना देती है । सर्दी का मौसिम हो तो गर्म वस्तु और गर्मी के मौसिम में ठंडी वस्तु के सेवन से शरीर मे साता रहती है। परन्तु इन सब बातों को समझने के लिए विवेक चाहिए । सर्दी की ऋतु थी और कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। राजा महल में आया रानी ने पान मे थोड़ी-सी कस्तूरी डाल दी। कहिए, ऐसा करने से राजा की सर्दी दूर हो जायगी या नहीं? राजा को वह सुखद होगी। इस प्रकार स्त्री यदि विवेकवती होती है तो अपने घर को दिपा देती है। दोनों कुलो की कीर्त्ति बढ़ा देती है। परिवार में सुख-शान्ति का वायुमंडल बनाये रखती है जिससे गृहस्थ जीवन भी स्वर्ग-सा बन जाता है।

जिस स्त्री में विवेक नहीं है,वह जरा-जरा सी बात में मूर्खता का प्रदर्शन करती है। घर में कलह, क्लेश और कुसंप का दौर दौरा चल पड़ता है। द्वेष और ईर्षा की आग में घर की सारी शान्ति स्वाहा हो जाती है। ऐसे वातावरण मे गृहस्थधर्म का यथावत् पालन होना भी असंभव हो जाता है।

घर की शोभा स्त्री से है। यह लोकोक्ति गलत नहीं है। वास्तव में चतुर स्त्री परिवार का भूषण है।

कहावत है—'सोई सयाना अवसर साधे।' अर्थात जो अवसर से लाभ उठाता है, वही कुशल पुरुष है। विभीषण को समय पर ओसान आ गया तो अपने भाई रावण का साथ छोड़ कर राम के साथ जा मिला। परिणाम क्या हुआ ? उसके प्राण भी बच गये और लंका का राज्य भी रह गया। यह सब विवेक का ही प्रभाव है।

शास्त्र में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को प्रत्येक कार्य मे विवेक रखना चाहिए। जो विवेक पूर्वक कार्य करता है, वह पाप बध से बच जाता है। कहा है—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई।

अर्थात्—विवेकपूर्वक चलने वाला ठहरने वाला, रहने वाला, सोने वाला, भोजन और भाषण करने वाला पाप कर्म के बन्ध से बच जाता है।

कितना बढ़िया नुस्खा है : शास्त्रकार यह नहीं कहते कि पाप से बचना है तो सब काम बंद करके पादपोपगमन संथारा ग्रहण कर निश्चेष्ट होकर पड़ जाओ। वह कहते है-तुझे जो करना है-सो कर सकता है, पर एक बात ध्यान मे रख ले। अपनी क्रिया में विवेक का पुट लगा दे। विवेक का पुट होने से क्रिया का जहर निकल जाता है और तब पाप का संसर्ग नहीं होता। इस प्रकार जब आत्मा का विवेक में प्रवेश होता है तो आत्मा विवेक-शील कहलाता है।

पाँचवाँ भेद ज्ञानात्मा है। जब आत्मा ज्ञान मे प्रवेश करती है तो ज्ञानात्मा कहलाती है। कहा भी है:—

ज्ञान से बाजे है ज्ञानी, ध्यान से सुधरे जिंदगानी।
ज्ञान से मिटे जो नादानी, ज्ञान से मिले जो शिवरानी॥

दोहा—ज्ञान बड़ी एक चोज है, ज्ञान दया का मेल।
ज्ञानी समझे ज्ञान से, कोई अज्ञानी रहे भूल॥

मिलत—मगन रहे विषय रस पीत॥ १॥

भाइयो! ज्ञान से मनुष्य ज्ञानी कहलाता है। लोग कहते है—अजी, ये बडे पंडित है, ज्ञानी हैं। मगर इस प्रकार का यश विद्या से होता है, कुश्ती से नहीं होता।

ध्यान से ध्यानी कहलाते है। ज्ञान और ध्यान दोनों महत्त्व-पूर्ण वस्तुएँ हैं। ज्ञान से जीवन अच्छी तरह व्यतीत होता है। जो पढ़ा-लिखा नहीं है, उसका जीवन कष्टमय बन जाता है और उसे जीवन भर पछताना पड़ता है।

एक बड़े घर का लड़का था। कोट, कमीज, पतलून आदि से सुसज्जित था। कलाई पर सुनहरी घड़ी और हाथ में छड़ी थी। आंखो पर चश्मा शोभायमान हो रहा था। माथे पर बढ़िया फेल्ट केप सजी हुई थी। आप छैला बने अकड़ते हुए जा रहे थे। एक स्त्री ने उन्हे जाते देख कर अचानक ही नीचे उतरी। उसने अपनी भाषा में कुछ कहा—आवाज दी। फौरन वे जाकर उसके पास खड़े हो गये। तब उस स्त्री ने अपने पति का आया हुआ पत्र कुंवर सा. के हाथ मे रख दिया और कहा—कृपा होगी, इसे जरा पढ़ दीजिए।

कुंवर साहब ने पत्र हाथ मे ले लियो और उसे देख-देख कर रोने लगे और सोचने लगे कि हाय ! मै इतना मूर्ख हूँ कि पत्र भी नहीं पढ़ सकता ! मैंने बहुत बड़ी भूल और लापरवाही की। अगर मैं साफ-साफ कह दूं कि मुझे पढ़ना नहीं आता तो इस कोट, चश्मे और घड़ी-छड़ी को कलंक लग जायगा। इस बाबू-वेष पर धूल पड़ जाएगी। लोग कहेंगे-साहब के बेटे बने हैं, पर काला अक्षर भैंस बराबर है ! एक कवि ने कहा है-"आओ म्हारा नोलख बना राण्डा रोवे अन्न बिना।" इत्यादि। जिसका आशय यह है कि तू सब तरह से सुन्दर है, सुसज्जित है, मगर मेरी सारी शोभा वृथा है क्योंकि तूने पढ़ाई नहा की है-ज्ञान प्राप्त नहीं किया।

हाँ, तो वे कुँवर साहब पत्र हाथ मे लेकर रोने लगे। स्त्री का हृदय अनेक कुशंकाओं से परिपूर्ण हो गया। उसने धैर्य धारण करके कहा-'अच्छा बुरा जो लिखा हो तो पढ़ कर सुना दो। जो मेरे भाग्य में बदा होगा सो होगा। आप सो पढ़ कर सुना दीजिए।'

यह सुन कर चुपचाप बिना कुछ कहे-सुने, वह भाग गया। वह स्त्री उसकी यह हरकत देख कर भौं चक्की-सी खड़ी रह गई। वह समझ न सकी कि उसके भागने का कारण क्या हो सकता है।

इसी समय एक नौजवान उधर से निकला। उसने उस महिला को उदास और चिन्तित अवस्था मे खड़ी देखकर पूछा-क्या बात है चाची, उदास क्यों खड़ी हो ?

तब उस स्त्री ने वह पत्र उसके सामने रख दिया। उसने पत्र लिया और पढ़ कर सुना दिया। उसमें पति ने अपनी आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में लिखा था- मैं लोटा-डोर लेकर घर से निकला था किन्तु अब दो लाख का मालिक बन गया हूँ। तुम किसी प्रकार

की चिन्ता मत करना। तुम्हारे खर्च के लिए तीन हजार रुपया भेज रहा हूँ। नये वस्त्र आदि खरीद लेना और सुख में रहना।

स्त्री ने यह समाचार सुन कर प्रसन्नता प्रकट की। इसने पहले कुँवर साहब का जिक्र करते हुए कहा-अभी-अभी एक नौजवान लड़का इधर से निकला था। उसे मैंने पत्र पढ़ने को दिया तो वह रोने लगा और बिना कुछ कहे भाग गया। इसका क्या कारण होगा?

लड़के ने कहा-वह अनपढ़ होगा और अपनी पोल खुल जाने के डर से भाग गया होगा।

कहो सज्जनो! ज्ञान की क्या महिमा है? और मूरख की क्या महिमा होती है? ओ कुंवर साहब! ज्ञान के बिना यहां क्या भागे हो, चौरासी में भागना पड़ेगा अतएव इस लोक और परलोक की भलाई के लिए ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जब ज्ञान की प्राप्ति होती है तो मनुष्य के लिए कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। वह जो कुछ भी प्राप्त करना चाहता है, अवश्य प्राप्त कर लेता है। कहा है-

'ज्ञानं न किं किं कुरुते नराणाम्।'

अर्थात्—मनुष्यों को ज्ञान से क्या-क्या प्राप्त नहीं हो जाता? स्वर्ग और अपवर्ग जैसी सर्वोत्तम सम्पत्ति भी जब ज्ञान से प्राप्त होती है तो साधारण वस्तुओं की प्राप्ति होने में शंका ही क्या हो सकती है?

इस प्रकार ज्ञान होने पर ज्ञानात्मा की प्राप्ति होती है और यह आत्मा उससे सुख प्राप्त करती है।

ज्ञानात्मा के पश्चात् दर्शनात्मा की बारी आती है। देव, शास्त्र, गुरु और धर्म संबधी सच्ची श्रद्धा को दर्शन कहते हैं। जब इस दर्शन की आत्मा को प्राप्ति हो जाती है, तब आत्मा दर्शनात्मा कहलाती है। जब तक मिथ्यादर्शन है तब तक मिथ्यादर्शन आत्मा और जब सम्यग्दर्शन हो जाता है, तब सम्यग्दर्शन आत्मा होती है।

सम्यग्दर्शन मोक्ष की साधना के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है जब तक यह नहीं प्राप्त होता, तब तक ज्ञान चाहे जितना विपुल क्यों न हो जाय, मिथ्या ज्ञान ही बना रहता है। सम्यग्दर्शनहीन मनुष्य आत्म कल्याण के लिए भले कठोर से कठोर तपश्चरण करे, कायक्लेश करे, सब मिथ्या चारित्र है। वह संसार परिभ्रमण का ही कारण होता है, मुक्ति का नहीं। अतएव मोक्ष की साधना के लिए सब से पहले श्रद्धा को शुद्ध बनाने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

सातवीं चारित्रात्मा है। आत्मा में जब चारित्र रूप परिणति का प्रादुर्भाव होता है तब वह चारित्रात्मा कहलाती है। लोग कहते हैं ये बड़े त्यागी हैं, वैरागी हैं, बड़े ही चारित्रवान् हैं। चारित्र दो प्रकार का है–श्रावक का देश विरति चारित्र और साधु का सर्व विरति चारित्र। बारह व्रतो का पालन करना देश विरति रूप चारित्र है और पांच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि साधु का चारित्र है।

आठवीं वीर्यात्मा है। जब आत्मा पराक्रम करती है, तब वह पराक्रमी, पुरुषार्थी और शक्तिमान् कहलाती है। जिसमें पुरुषार्थ एवं पराक्रम नहीं, वह आलसी और प्रमादी कहलाता है। कई आलसी तो ऐसे होते हैं कि उनसे मुँह की मक्खियां भी नहीं उड़तीं। मगर पुरुपार्थ भी दो प्रकार का है–पुण्य एवं धर्म कमाने का पुरुषार्थ तथा पाप एव अधर्म कमाने का पुरुषार्थ। पुरुपार्थ

हुआ, परन्तु उसकी दिशा अगर गलत हो गई और पाप में प्रवृत्ति हो गई तो आत्मा का अहित होता है । अतएव पुरुषार्थ हो तो सही दिशा मे ही होना चाहिए-आत्महित के अनुकूल होना चाहिए, प्रतिकूल नहीं।

दो चूहे बिल मे से निकले। एक सीधा पहुँचा सँपेरे के घर मे। वहाँ उसने साँप का पिटारा देखा और उसे काटना शुरू किया पिटारा कटा और उसमे विराजमान कालचन्दजी स्वतंत्र हो गये। उन्होंने अपने स्वाधीनकर्ता चूहेरामजी को गटक लिया।

दूसरा चूहा सीधा हलवाई की दुकान पर गया। उसके मिठाई की छाबड़ी काटी। वह कटी तो पेट भर जलेबियाँ खाई।

भाइयो ! पुरुषार्थ तो दोनों चूहों ने किया, परन्तु फल दोनों को परस्पर विरुद्ध मिला। इसी प्रकार किसी पुरुष का पुरुषार्थ उसे सातवें नरक में ले जाता है और किसी का पुरुषार्थ उसे मोक्ष मे पहुँचा देता है।

इस प्रकार यह आत्मा स्वयं ही अपने पुण्य-पाप का कर्त्ता है और स्वयं ही उसके फल का भोक्ता है । दूसरे मित्र आदि कोई काम नहीं आते। इसी से कहा है—

मीत मीत क्या करता चेतन !
तेरा तू ही मीत !

अरे चेतन ! तू अपने हित के लिए क्यों बाहर के मित्रों की खोज कर रहा है ! तेरे सिवाय तेरा मित्र कोई दूसरा नहीं है। तू अपनी आत्मा को पराक्रम मे प्रविष्ट कर ले तो स्वयं ही अपना उद्धार कर सकेगा।

और फिर—

तू किसको मीत बनाता है, इस जग का झूठा नाता है।
उद्धार तेरा तुझसे होगा, यह सुन लेना धर चित्त ॥

ऐ प्राणी! तू किसको अपना मित्र बना रहा है? संसार के सब नाते-रिश्ते झूठे हैं। यह हमारा बाप है, यह हमारा बेटा है, यह भाई है और यह मित्र है, यह सब खोटी कल्पना है। अन्त समय में इनमें से कोई काम आने वाला नहीं। सब अलग-अलग ही खड़े रह जाएँगे। अगर आत्मा अपने उद्धार कार्य में सलग्न हो जाय तो वही अपना मित्र बन जाता है। और भी कहा है:—

जिसने इस मन को जीता है, दुनिया में वही विजेता है।
फिर तू आत्मा अपना ही बन जाता है सुमीत ॥

हे आत्मन्! यदि तू अपने मन को जीत ले तो दुनिया में सच्चा विजेता-विश्वविजयी बन सकता है। वह आत्मा अपना समित्र है। वही सर्वोपरि है। अगर तू अपने मन को न जीत सका और मन का दास बन गया, मन की तरंगों मे बहने लगा तो कही का नहीं रहेगा! इधर-उधर भटकता ही रहेगा। अगर कहीं टेगड़ा (कुत्ता) की योनि में जा पहुँचा तो भुख्-भुख् ही करता फिरेगा। इस समय तू अकड़ता फिरता है। कहता है--कौन मेरा कुछ बिगाड़ सकता है! मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं! थोड़े-से पुद्गल इकट्ठे कर लिये कि बड़बड़ाने लगा और अपने में नहीं समाने लगा। पर आगे की भी कुछ सोचता है कि नहीं? यह पूंजी तेरा उद्धार कर देगी? ऊँची हवेली की छत तुझे स्वर्ग में पहुंचा देगी? नहीं, तेरा उद्धार तेरी आत्मा से होगा। मन को जीतने से ही तू पार लग सकेगा, अन्यथा नहीं।

और फिर क्या ?

जो विषय कषाय में रमता है, तेरा मेरा भी करता है।
उसका शत्रु बन प्रमाद यह, जग में करे फजीत ॥

याद रक्खो, जो विषय--वासना मे डूब जाता है, वह आप ही अपना वैरी बन जाता है। इस कथन में शका के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जो भोग--विलास में डूब जाते हैं और विवेक को तिलांजलि दे देते है, वे गर्मी, सुजाक, प्रमेह आदि भयानक बीमारियों के ग्रास बन जाते हैं। तहमत बाँध कर बाजार में फिरते हैं। अन्त में रोते--चिल्लाते और इसी जीवन में नारकीय वेदना भोगते हुए जिंदगी पूरी करते हैं। उनसे कोई पूछता है--क्या हो गया है ? तो वे कहते है बालतोड़।

अरे मूर्ख ! क्यो नहीं कहा--'कर्म फोड़ हो गया है !'

अपनी मूर्खता से रोग उत्पन्न किया और दुःख को न्यौता दिया। अपने मन को जरा वश मे कर लेता तो यह दिन न देखना पड़ता ! अतएव क्या करना चाहिए ?

जो आत्म गुणों में रमता है, संसार-समुद्र को तरता है।
चौथमल समकित से आतम, कर ले पूरण प्रीत ॥

भाइयो ! जो चित्त की चपलता का निरोध कर देता है, मन को इधर-उधर नही भटकने देता और जो आत्मा के गुणों मे ही रमण करता है, वह मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। आत्म स्वरूप में रमण करने से बढ़कर आनन्द इस संसार मे कहीं नहीं है। उस लोकोत्तर आनन्द का जिसे एक बार भी अनुभव हो, जाता है, उसे संसार के भोगोपभोग निस्सार जान पड़ने लगते हैं

आत्म स्वरूप की रमणता ही वास्तव मे सम्यक्त्व है। वह 'सुदर्शन' ही प्राणी का सच्चा मित्र है। मित्र का काम यही है कि वह अपने मित्र को कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग की ओर लगा दे। यह सामर्थ्य सम्यग्दर्शन में ही है। वही जीव को सन्मार्ग प्रदर्शित कर देता है। जो मनुष्य सम्यग्-दर्शन को अपना मित्र बना लेता है, उसे किसी प्रकार के दुःख का सामना नहीं करना पड़ता।

भाइयो ! भगवान् महावीर स्वामी ने इस सूत्र मे, थोड़े से शब्दों में ही, अपूर्व और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात बतलाई है। इसमे परावलम्बन को त्याग कर स्वावलम्बन की शिक्षा दी गई है। जो अपनी शक्ति को न पहचान कर परायी शक्ति पर विश्वास करता है, वह किसी महान् कार्य मे कभी सफलता प्राप्त नही कर सकता। वह पङ्गु है। वह अपनी आत्मा का अपमान करता है। अतएव मनुष्य को चाहिये की वह पराई आशा छोड़ कर अपने बल पर भरोसा करे, उसे उपयोग में लावे और सुखी बने। जो ऐसा करते हैं, वही इस जन्म मे और पर भव में भी आनन्द प्राप्त करते हैं।

ब्यावर
२६-६-१९५७

४

शील और सत्य

स्तुतिः—

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि—
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहां तक स्तुति की जाय? भगवन्! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ?

प्रभो! आपने सुरों, असुरों, नरों और प्राणी मात्र को जीतने वाले काम-योद्धा को भी सर्वथा जीत लिया है। आप कामजयी हैं। अतएव देवांगनाएँ स्वर्ग से आकर, अपने मनोमोहक

हाव-भाव प्रदर्शित करके और नाना प्रकार की विलासमयी चेष्टाएँ करके भी यदि आपके चित्त को विकारमार्ग की ओर नहीं ले जा सकतीं, रंच मात्र भी विचलित नहीं कर सकती तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जब आपके मन में काम-वासना ही नहीं रह गई है, तो अप्सराओं में क्या शक्ति है कि वे आपके चित्त को विकृत कर सके ?

कल्पान्त काल की आँधी अत्यन्त प्रबल होती है। उससे बड़े-बड़े पहाड़ नष्ट हो जाते हैं और ऐसे उड़ जाते हैं, जैसे रुई का ढेर हो। मगर उस प्रबल आँधी से भी सुमेरु पर्वत का शिखर नहीं चलायमान होता। इसी प्रकार प्रभो ! आपका मन मेरु के समान है और देवांगनाओं की विलासमयी चेष्टाएँ प्रलयकालीन अंधड़ के समान हैं। उनसे आपका मन-मेरु डिग नहीं सकता।

भगवान् ऋषभदेव इस प्रकार पूर्ण निष्काम हैं। उन प्रभु को हमारा बार-बार नमस्कार हो !

भाइयो ! धर्म के अनेक रूप है, परन्तु उन सब मे शीलधर्म, जिसे ब्रह्मचर्य भी कहते हैं, अत्यन्त उच्च कोटि का धर्म है। शील सत्य है, परमानन्द है। शील की इतना अधिक महिमा है कि उसका वर्णन कर सकना असंभव है। एक शील को साध लेने से धर्म के सभी अंग सध जाते हैं। लोक में उक्ति प्रसिद्ध है कि—

एकहिं साधे सब सधैं, सब साधे सब जाएँ।

सो अन्य विषयों मे चाहे लागू हो या न हो, परन्तु शील धर्म के विषय मे अवश्य लागू होती है। मन, वचन और तन से जिसने पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य की साधना कर ली, उसे अन्य सब धर्मों की साधना करना कठिन नहीं रह जाता।

'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है-ब्रह्म अर्थात् आत्मा में, चर्या अर्थात् विचरण करना, आत्माराम में विहार करना और परपदार्थों से अपने आपको पृथक् कर लेना। जिसने ब्रह्मचर्य के इस अर्थ के अनुसार ब्रह्मचर्य को अंगीकार कर लिया है, वह दया का पालन करेगा, असत्य भाषण नहीं करेगा, चोरी नहीं करेगा और पौद्-गलिक पदार्थों पर ममता भी नहीं रक्खेगा। इस प्रकार एक की साधना से सब सध जाते हैं।

इसके विपरीत, यदि एक ब्रह्मचर्य टूट जाता है तो सब व्रत टूट जाते हैं। जो ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हो जायगा वह असत्य भाषण भी करेगा, चोरी भी करेगा और धन-सम्पत्ति की भी कामना करेगा। उसका जीवन अधन्य हो जायगा। इसी कारण कहा है—

> वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं,
> न चापि भग्नं चिरसञ्चितं व्रतम्।
> वरं हि मृत्युः सुविशुद्धचेतसः,
> न चापि शीलस्खलितस्य जीवनम्॥

आचार्य कितने प्रभावशाली शब्दों में कह रहे हैं-धधकती हुई आग में कूद कर जीवन को समाप्त कर देना अच्छा है, परन्तु चिरकाल से संचित व्रत को भंग करना अच्छा नहीं। अपने चित्त को पूरी तरह शुद्ध रख कर मृत्यु का आलिंगन कर लेना भला, परन्तु शील से भ्रष्ट होकर जीवित रहना भला नहीं।

इस कथन से आप भलीभांति समझ सकते हैं कि वस्तुतः इस जीवन की अगर कोई सार्थकता है, तो वह शील के कारण ही है। शीलविहीन जीवन तो मृत्यु से भी गया-बीता है।

शील का विरोधी व्यभिचार है। व्यभिचार को जूठन की उपमा दी गई है। भोजन करने के पश्चात् थाली मे जो उच्छिष्ट-शेष भोजन बच जाता है, उसे जूठन कहते हैं। उस जूठन पर कौन ललचाता है? कोई कुलीन या सुसस्कृत पुरुष जूठन को इच्छा नहीं करता। कौआ और कुत्ता ही उस पर ललचाता है। परायी स्त्री को भी जूठन की उपमा दी गई है। अतएव उस पर ललचाने वाले कुलीन जन नहीं हो सकते। कौओं और कुत्तों के समान नीच जन ही उसकी अभिलाषा करते है। परस्त्री-गमन भयानक अपराध और घोर पाप है। अनेक दुःखों का कारण है। कहा भी है—

परदारा न गन्तव्या, पुरुषेण विपश्चिता।
यतो भवन्ति दुःखानि, नृणां नास्त्यत्र संशयः॥

अर्थात्-बुद्धिमान् पुरुष को परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे अनेक प्रकार के दुःखों की उत्पत्ति होती है। इसमें तनिक भी सशय नहीं है।

एक नीतिकार तो यहाँ तक कहते है—

आलिंग्यते वरं क्रुद्धा, व्याघ्री च सर्पिणी तथा।
न तु कुतूहलेनापि, पररामा कदाचन॥

अर्थात्-क्रुद्ध हुई बाघिन का आलिंगन करना अच्छा और कुपिता हुई नागिन से लिपट जाना भी बुरा नहीं, परन्तु परस्त्री का आलिंगन कुतूहल से भी करना योग्य नहीं। तात्पर्य यह है कि व्याघ्री और नागिन के आलिंगन से भी परस्त्री का आलिंगन अधिक अनर्थकारी है।

यह एक ऐसा विषय है जिसके समर्थन के लिए नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र के उद्धरण अगर न दिये जाएँ तो भी कोई हानि नहीं। क्योंकि परस्त्रीगमन की बुराइयों और हानियों का सभी प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। इस बुराई के कारण मनुष्य समाज में मुख दिखलाने योग्य नहीं रहता। बहुतों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। नाना प्रकार के दंड भोगने पड़ते हैं।

परस्त्रीगामी अनेक पापों का पात्र बन जाता है जहाँ व्यभिचार है, वहाँ चोरी स्पष्ट है, क्योंकि इसके लिए उसके पति की आज्ञा नहीं होती। कुल की मर्यादा का भी नाश होता है। अतएव परस्त्रीगमन अत्यन्त गर्हित पाप है।

शील में अचिन्त्य प्रभाव है। शील की महिमा को प्रकट करने वाले अनेक उदाहरण शास्त्रों और ग्रंथों में भरे पड़े हैं। शील से आत्मबल की प्राप्ति होती है और वह बढ़ा हुआ आत्मबल अनेक चमत्कारपूर्ण दृश्य उपस्थित कर देता है। सती सुभद्रा ने कच्चे धागे में बंधी हुई चालनी से कुए से पानी खींच लिया और वह पानी नगर के किवाड़ों पर छिड़का तो फट से किवाड़ खुल गये। प्रथम तो कच्चे धागे में चालनी का बंधना कठिन, क्योंकि कच्चा धागा इशारे से ही टूट जाता है। फिर चालनी में पानी आना और भी कठिन, क्योंकि चालनी के छेदों में से पानी निकल जाता है। फिर जो फाटक मदोन्मत्त हाथियों की सम्पूर्ण शक्ति लगने पर भी टस से मस नहीं हुए थे, उनका उस पानी के छींटे लगते ही खुल जाना और भी आश्चर्य जनक था! मगर शील के प्रभाव से यह सब हो गया।

सती सीता की कथा आप मे से प्रायः सभी ने सुनी होगी। आग को जल के रूप में परिणत हो जाना क्या कोई साधारण घटना है ? किन्तु शील के प्रभाव से वह भी संभव हो गई।

सुदर्शन सेठ शूली पर चढ़ाये गये। मगर शील की अद्-भुत महिमा देखिये कि शूली ने सिंहासन का रूप धारण कर लिया। सुदर्शन की विमल कीर्ति सर्वत्र प्रसरित हो गई। यह शील की ही महामहिमा थी।

शील के प्रभाव से ही मंत्र, तंत्र, जादू और टोना आदि चलते है। शील से अनेक प्रकार की अचिन्त्य शक्ति वाली ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं। शील की विद्यमानता मे ही अन्य तप और जप सार्थक होते है। इस महिमा के कारण ही शास्त्र में ब्रह्मचर्य को सर्वोत्तम तप कहा है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते॥

यह सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध का छठा अध्ययन है। इसमें भगवान महावीर की स्तुति की गई है। कहा है जैसे समस्त दानो म अभयदान प्रधान है, जैसे सब प्रकार के सत्यो में अनवद्य सत्य सर्वोत्तम है और जैसे सब तपस्याओं में ब्रह्मचर्य महान् और सर्वोत्कृष्ट तप है, उसी प्रकार श्रमण ज्ञातपुत्र भी समस्त लोक में उत्तम हैं।

यहां ब्रह्मचर्य को सब तपों में उत्तम तप कहा है। ब्रह्मचर्य में बड़ी शक्ति है, अपूर्व ताकत है। ब्रह्मचारी के मुख से जो वचन निकल जाता है, वह सिद्ध होकर ही रहता है। ब्रह्मचर्य को दुनिया में सत्य कहते हैं।

श्रीमदाचारांग सूत्र में भगवान् महावीर ने फरमाया है कि-

'पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि;
सच्चस्स आणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।
सहिते धम्ममादाय सेयं समणुपस्सति ।'

अर्थात्-हे पुरुष ! तू सत्य का ही सेवन कर। यह सब से बड़ी चीज है, क्योंकि जो पुरुष वचन का सच्चा और लंगोट का सच्चा होता है, वह कहीं भी चला जाय, दुःख नहीं पाएगा। सत्य को पकड़ कर उठने वाला बुद्धिमान् पुरुष मौत को जीत लेता है-अजर-अमर बन जाता है। वह मोक्षमार्ग की आराधना करके, धर्म को धारण करके निर्वाण प्राप्त करता है।

संसार किसे कहते हैं ? 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं' अर्थात् बार-बार जन्म लेना और बार-बार मरना ही संसार कहलाता है। यह जन्म-मरण महान् दुःख है। सत्य का आश्रय लेने से ही इस दुःख को जीता जा सकता है। जिसने पूर्ण रूप से सत्य का आराधन किया, उसके लिए कोई दुःख शेष नहीं रहा। जहाँ सत्य है, वहाँ धर्म है। जहां झूठ है, वहां फूट है, दुःख है, मुसीबत है।

दुनिया मे चार अच्छी बाते कम हो गई हैं और चार बुरी बाते अधिकता से फैल गई हैं। वे चार बातें कौन-सी हैं ? दया, दान, सत्य और शील। इन चार के कम होने से झूठ, फूट, लूट और माथाकूट की अधिकता हो गई है।

झूठ के कारण संसार में घोर अशान्ति फैली हुई है। पांच पंच इकट्ठे हुए। वे पचायत करने बैठे। उसमे किसी ने झूठ का

आश्रय लिया अथवा रिश्वत खा ली, तो क्या स्थिति होती है ? रिश्वत खाने वाले और उनके पिछलग्गू एक ओर हो जाते हैं और रिश्वत न खाने वाले सच्चे और न्यायशील दूसरी तरफ हो जाते हैं। तब जाति मे धड़े पड़ जाते हैं। दलबदी हो जाती है। इस प्रकार झूठ से पंचायत में फूट पड़ जाती है। फिर एक दल दूसरे दल की बुराई और निन्दा करता है। एक दूसरे का अनिष्ट सोचता है और अवसर मिलने पर वैसा ही काम करता है। एक दूसरे के प्रति ईर्षा, द्वेष और मात्सर्य का भाव रखता है। न्यायालयों के द्वार खटखटाते हैं। वह उसको और वह उसको फँसाने की कोशिश करता है। एक दूसरे के विरुद्ध झूठी-सच्ची गवाही देते है। मुकद्दमेबाजी मे हजारों- लाखों वर्बाद कर देते है। इस प्रकार झूठ ने लूट मचाई है। उस समय किसी को विचार नहीं आता कि हम क्यो ऐसा कर रहे हैं ? कोई नहीं सोचता कि इसका गया तो मेरा गया और मेरा गया तो इसका गया। आखिर है तो तेरा ही भाई ! उसकी हानि तेरी हानि है। वह कमजोर हुआ तो तू भी कमजोर हुआ। उन्हे कोई समझाने का प्रयत्न करता है तो माथाकूट तैयार है ! आवेश की स्थिति में मनुष्य सत्य को हृदयगम नहीं कर सकता अतएव माथाकूट होती है। झूठ माथा कूट करवाता है।

जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नहीं रह सकता और सूरज के साथ रात नहीं रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारे कैसे समा सकती हैं ? इसी प्रकार जहाँ सत्य का तिरस्कार होगा वहाँ झूठ का प्रसार होगा।

झूठे लोग मिल कर सच्चे को भी झूठा बनाने का प्रयत्न करते हैं। पाँच दस दिवालिया इकट्ठे हुए और वे यही सोचते हैं कि

कैसे दूसरो को भी दिवालिया बनाया जाय ! जो स्वयं गिरे हुए हैं, वे दूसरों को भी गिराने की चेष्टा करते हैं। उनमें कलंक न हो तो भी कलंक लगाने का प्रयत्न करते है। झूठी दुनियां सच्चे को नीचा दिखलाने की कोशिश करती है ।

एक गाँव मे एक भाई था। वह व्याख्यान सुनने आया। व्याख्यान सुन कर उसकी आत्मा में वैराग्य उत्पन्न हो गया। मेरे पास आया। उसने अपने पूर्वकृत्यों के लिए पश्चात्ताप किया। जब मनुष्य के चित्त मे शुभ सकल्प उत्पन्न होता है और पाप के प्रति घृणा की भावना जागृत हो जाती है तो वह स्वभावतः अपने पापमय कृत्यों के प्रति पश्चात्तापशील हो जाता है। उसने मेरे सामने अपना हृदय खोल कर रख दिया। कहा गुरुदेव, मेरा मन एक अच्छे कुल की महिला की ओर, जो भाग्यवती सती थी, आकृष्ट हो गया और चाहने लगा कि उसके साथ ससार प्रवृत्ति की जाय। मैंने कई जाल रचे, किन्तु सच्चे माँ--बाप की वह पुत्री मेरे वशीभूत न हुई। जब वह हाथ न आई और मैं निराश हो गया तो, महाराज ! मैंने उस सती को झूठा कलंक लगा दिया। वह वास्तव में सच्ची थी और मैं वासना का गुलाम झूठा था। अब मुझे अपने इस कुकृत्य पर घोर पश्चात्ताप हो रहा है ! एक सती को कलकित करने से बढ़ कर और क्या पाप हो सकता है !

कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ झूठ होता है, वहाँ सत्य के लिए जगह नहीं रहती। वहाँ अनेक पाप फूट निकलते हैं। जहाँ पापी ही पापी इकट्ठे हो जाते हैं, वहाँ धर्म का निभाव नहीं हो सकता।

लंका में विभीषण धर्मात्मा था। एक बार हनुमानजी ने उससे पूछा–विभीषणजी ! इस लंका में, जहाँ राक्षस रहते है, आप

जैसे ईश्वरभक्त महापुरुष किस प्रकार रह रहे हैं ? तब विभीषण ने उत्तर दिया—

सुनु हनुमन ! इह रहनि हमारी,
जिमि दशनन बिचजीह विचारी ।

हे हनुमान ! सुनो । मै इस लंका मे, राक्षसो के मध्य मे इस प्रकार रहता हूँ, जैसे दांतों के बीच मे जीभ रहती है । बेचारी जीभ को दाँतो के बीच में सदैव सावधान रहना पड़ता है। जरा--सी असावधानी हुई और दांतो ने उसे काटा ! यही हाल मेरा है । मै बड़ी सतर्कता से यहाँ रहता हूँ ।

दुनिया मे सच्चे को अनेक कसौटियो पर चढ़ना पड़ता है, लेकिन अन्त में उसी की विजय होती है और वही सुखी होता है, क्योंकि सत्य ही सर्वोपरि है और बड़ी चीज़ है । जिसका सत्य गया, फिर उसके पास क्या रहा ? कहा है—

सत मत छोड़ो हे नरां ! सत छोड्यां पत जाय ।
सत की बाँधी लच्छमी, फेरि मिलेगी आय ॥

संसार के लोगो ! सत्य का परित्याग मत करो । सत्य का त्याग करने से तुम्हारी प्रतीति उठ जायगी, अविश्वास भाजन बन जाओगे । तुम्हारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी । कदाचित् सत्य पर आरूढ़ रहने से लक्ष्मी के चले जाने का भय हो तो भी सत्य पर ही डटे रहो । सत्य का बंधन ऐसा है कि उससे बँधी हुई लक्ष्मी फिर तुम्हारे पास खिची चली आएगी ।

श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र में सत्य को भगवान् कहा हैं । सचाई के सामने किसी का जोर नही चलता । कहो भाई, क्या जोर चल

सकता है ? नहीं। आप नीरोग हैं तो भले अठारह वैद्य आपको देखें। वे आपको रोगी करार नहीं दे सकते और कदाचित् कोई रोगी कह दे तो भी आप रोगी नहीं हो सकते। अतएव सत्य को कहीं किसी का भय नहीं। कहा है—

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप॥

कितनी सुन्दर बात कही है! जिसके हृदय में सत्य विराजमान है, उसके हृदय में ईश्वर विराजमान है। यह सत्य की महिमा है। जो सच्चा कर्म करके आया है, वही ऋद्धि, साहबी, परिवार, महल, मकान, नौकर-चाकर आदि सुखसामग्री पाता है।

सत्य पर पृथ्वी टिकी है। सत्य सर्वत्र सब का आधार है। कहा है—

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

देखो, सत्य ने ही इस पृथ्वी को धारण कर रक्खा है, नहीं तो इसके नीचे और क्या है ? इसी प्रकार आकाश भी सत्य से ही टिका हुआ है। सूरज और चांद, जो दिखाई देते हैं और संसार को रोशन करते हैं, वे किस पर टिके हैं ? क्या इनके नीचे कोई थंभा लगा हुआ है ? नहीं, यह सब सत्य पर ही प्रतिष्ठित हैं। सत्य से ही वायु चलती है। अन्न के बिना यह जीव छह महीने निकाल सकता है, पानी के बिना भी पन्द्रह-बीस दिन निकाल सकता है, परन्तु हवा के बिना एक मिनिट निकाला भी कठिन है। मनुष्य को ऐसे किसी कमरे में बंद कर दिया जाय जिसमें हवा

बिलकुल न आती हो तो उसका क्या हाल होगा ? वह अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकेगा। सांस बंद हो जाने पर तो जीना असंभव ही हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि जितनी भी वस्तुएँ संसार में है, सब सत्य पर ही प्रतिष्ठित हैं। जिसने सत्य को धारण कर लिया, वह मानों संसार-समुद्र से तिर गया। अतएव, जहाँ सत्य है, वहाँ सब कुछ है।

थोड़े समय के लिए भी जिसने असत्य या अब्रह्मचर्य का सेवन किया, उसने अपना जीवन मिट्टी में मिला लिया। क्या एक बार जहर खाने वाला मरता नहीं है ? अवश्य मरता है। इसी प्रकार एक बार सत्य का परित्याग करने वाला भी अपना धर्म गँवा देता है। जो मनुष्य सत्य पर डटा रहता है, बेचारी लक्ष्मी भटकती भटकती उसकी खोज करती आ जाती है। सत्य संसार मे बड़ी जबर्दस्त चीज है।

सुनो सुजान सत्य की यह कैसी बहार है।
सत्य के बिना मनुष्य का जीना धिक्कार है॥

देखो, जब सत्य की बहार आती है तो झूठ भाग जाता है। 'जहाँ सत्य होगा वहाँ मिथ्या बात नहीं चलेगी। सत्य की महिमा का बखान कहां तक किया जाय ? सत्य के प्रभाव से ही द्रौपदी का चीर बढ़ा था। सत्य का ही प्रभाव था कि सती सोमा के लिए सर्प की माला बन गई थी। सत्य में इतना बल होता है कि सत्यनिष्ठ पुरुष हाथ में अग्नि ले ले तो भी उसका हाथ नहीं जल सकता।

पत्थर फोड़ने का काम करने वाले पत्थर-फोड़ों के कुटुम्ब में एक स्त्री थी। वह गर्भवती हुई। लोग उसे कलंक लगाने लगे— यह गर्भ पर पुरुष का है। यह स्त्री दुराचारिणी है। इस प्रकार उसकी निन्दा होने लगी। उस स्त्री ने बहुत प्रतिवाद किया कि गर्भ किसी दूसरे पुरुष का नहीं है, और मैं दुराचारिणी नही हूँ, मगर नगाड़ों में तूती की आवाज कौन सुनता है ? किसी ने उसकी बात न सुनी, न मानी।

आखिर अपनी निन्दा जब वह सहन न कर सकी तो उसने पंचों से कहा-आखिर किस प्रकार मैं अपनी सचाई का सबूत दूँ ? किस प्रकार लोग मुझ पर विश्वास कर सकते है ?

पचों ने कहा-कोई प्रत्यक्ष सबूत दे सको तो लोग मान सकते है ?

स्त्री-कहिए, क्या किया जाय ?

पच-हथौड़े को आग में तपा कर लाल कर दिया जाय और तुम्हारी हथेली पर रख दिया जाय। अगर तुम सच्ची हुई और हाथ न जला तो समझ लिया जायगा कि लोग झूठ कहते हैं। फिर कोई निन्दा नहीं करेगा।

स्त्री ने प्रसन्नता पूर्वक यह परीक्षा अंगीकार की। आग जलाई गई और हथौड़ा उसमें रख दिया गया।

इस दिव्य परीक्षा को देखने के लिए बड़ी भीड इकट्ठी हो गई थी। कई लोग कुशंकाओं से ग्रस्त थे, किसी के मन में कुतूहल था और किसी के दिमाग मे अविश्वास चक्कर काट रहा था।

इतने में वह स्त्री नहा-धो कर स्वच्छ वस्त्र धारण करके आ पहुंची उसने निर्भय और निश्शंक भाव से कहा-'मैं तैयार हूँ।'

उसने विचार किया-सत्य में भगवान् का वास है। अतएव मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी रक्षा होगी। मेरा बाल भी बांका नहीं हो सकेगा।

स्त्री ने परमात्मा का ध्यान करके कहा-लाओ, हथौड़ा गर्म हो गया हो तो रख दो मेरी हथेली पर।

हथौड़ा आग में से निकाला गया। एक आदमी ने उससे कहा-इसे हथेली पर रख कर सात-आठ कदम आगे जाना और फिर नीचे डाल देना।

उस साध्वीशीला ने ऐसा ही किया। शील के प्रभाव से उसकी हथेली जरा भी न जली। अलबत्ता, जिस भूमि पर वह डाला गया था, वह करीब दो-अढ़ाई इंच नीचे तक जल गई।

यह कोई काल्पनिक कहानी नहीं, सत्य घटना है। सन् १६१६ की यह घटना। 'कल्याण' पत्र में मैंने यह घटना पढ़ी थी। 'कल्याण' के कर्मचारी ने स्वयं जाकर इसकी सचाई की जाच की थी। और भी कहा है—

सत्य से सर्प पुष्प की माला,
अगनी मिट हो जल तत्काला।
विषय अमृत हो जाय,

सत्य को धारना रे, सत्य को धारना रे, सत्य मत हारना रे!

देखो भाइयो! कितनी अद्भुत बात है! सत्य के प्रभाव से सर्प भी पुष्पमाला के रूप में परिणत हो जाता है। दुनियाँ मीरां के लिए क्या कह रही है? राणाजी ने साँप भेजा, परन्तु मीरां के लिए वह फूलों की माला बन गया। यह क्या था? सत्य का ही प्रकृष्ट प्रभाव था। कहा है—

साँप टिपारो राणा भेजियो, दीजो मीरां के हाथ ।
फूलों की माला जाण बाई मीरां पेरी ॥
हो गयो नवसर हार, मीरां थारे कँई लागे गोपाल ।
थाने राणाजी पूछे हाल ॥

भाइयो ! मीरांजी की यह कथा तो आप जानते ही होंगे । मैं एक और सत्यवती सती का आपको जिक्र सुनाना चाहता हूं । यद्यपि वह चरित्र बड़ा लम्बा है परन्तु मैं संक्षेप में ही उसे सुनाऊँगा ।

सोमा नामक एक ब्राह्मण की कन्या थी । बाल्यावस्था मे ही उसके माता-पिता का देहान्त हो गया था । एक जैन श्रावक ने उसका पालन-पोषण किया और उसे बड़ा किया । श्रावक उसे अपनी लड़की के समान ही प्यार करता था ।

लड़की सोमा बड़ी हुई तो सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाओं में प्रवीण हो गई । उसका विवाह एक ब्राह्मण युवक से कर दिया गया । वह युवक भी सामायिक-प्रतिक्रमण आदि क्रिया किया करता था, अतएव जैन धर्मी सा मालूम होता था । सोमा के पालक पिता ने सोचा-लड़का धर्मात्मा है और ब्राह्मण भी है, अतएव योग्य है । यह समझ कर सोमा उसे ब्याह दी थी । परन्तु वह लड़का कपटी निकला । विवाह के बाद उसकी धूर्तता प्रकट हुई । उसने सारी धर्मक्रिया छोड़ दी । सोमा के पिता ने उसे तीस हजार की सम्पत्ति और रहने के लिए मकान दहेज मे दिया था ।

लड़के मे और-और दुर्गुण तो थे ही, एक बड़ा दुर्गुण था-वेश्या-लम्पटता ! रात्रि होते ही वह वेश्या के घर चला जाता

था। वह सारा धन वेश्या गमन में लुटाने लगा। ऊपर की पूंजी समाप्त होने पर सोमा के गहनों की बारी आने लगी।

इसी बीच सोमा के पालक माता-पिता का भी देहान्त हो गया। अब सोमा पूरी तरह असहाय थी। करे तो क्या करे? अपना दुःख-दर्द कहे तो किससे कहे? उसका मस्तिष्क काम नहीं करता था। वह चिन्ता में डूबी रहने लगी।

जिस वेश्या के यहाँ वह नौजवान जाता था, उसकी माता मौजूद थी। वह बड़ी धूर्त्ता थी, माया की मूर्ति थी। एक बार उसने सोचा-यह नवयुवक हमेशा मेरी लड़की के पास आता है तो पता लगाना चाहिए कि इसके पास कितना धन है? यह सोच कर उसने युवक से पूछा-तुम्हारे परिवार मे और कौन है? युवक ने कहा-मेरी पत्नी है। फिर पूछा-मकान कहाँ? इस प्रश्न के उत्तर में युवक ने अपने घर का पता बता दिया।

वेश्या की माता ने विचार किया-किसी उपाय से इस की स्त्री को मार डाला जाय तो अच्छा रहेगा!

एक दिन वह सोमा के घर जा पहुँची। उसने सोमा से कहा-'बेटी, मैं तेरे पीहर से आई हूं। तू छोटी थी, तभी से मैंने तुझे नहीं देखा। तू मेरी लाड़ली बिटिया है।'

इस प्रकार उस कपटमूर्ति ने सोमा के प्रति गहरा अनुराग प्रदर्शित किया दूसरे दिन उसे एक सँपेरा नजर आया। उसने पूछा 'तेरे पास क्या है?'

सँपेरे ने कहा—'भयंकर काला नाग!'

वेश्या की माँ ने कह नाग सँपेरे से ले लिया और कहा-इसे इस मटके मे डाल दे। सँपेरे ने वैसा ही किया। मटके के ऊपर ढक्कन लगा दिया गया और मुँह बाँध दिया गया।

तत्पश्चात् वह पापिनी सोमा के घर आई और ऊपर जाकर बैठ गई। सोमा का चेहरा बड़ा ही सौम्य था। भद्रता उसमे से टपक रही थी। दिव्य तेजस्विता उस पर दमक रही थी। उस सती के चेहरे की चमक आजकल को उन स्त्रिया के समान बनावटी नही थी, जो तेल पाउडर क्रीम आदि चुपड़-चुपड़ कर दिखलाने की कोशिश करती है। वह सौन्दर्य उसकी आन्तरिक पवित्रता से उद्भूत हुआ था। उसमे सात्विकता थी, वासना का पुट नहीं था। वह पावनता और शुचिता का पुंज थी।

वेश्या की माता काले साँप का मटका लेकर उसके घर मे जा धमकी। सोमा से उसने कहा—तेरे पति ने इस मटके मे फूलो की माला तेरे लिए भेजी है। बड़ी हिफाजत से मै ले कर आई हूं। अब तू इसे सँभाल ले और पहन ले।

सोमा ने माला लेने का विचार किया। सोमा की यह आदत थी कि कोई भी वस्तु ले तो णमोकारमंत्र का ध्यान कर ले और फिर ही उसे ले। अतएव माला लेने से पहले भी उसने पंचपरमेष्ठी मंत्र का स्मरण किया—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

इसके पश्चात् उसने मटके का मुँह खोला और भीतर हाथ डाला। सत्य के प्रभाव से वह काला नाग फूलो की माला के रूप

मे परिणत हो गया ! उसे रहस्य का कुछ पता न चला। उसने माला ली और गले में डाल ली।

भाइयो ! यह है शील का चमत्कार ! वह पापिनी लाई थी नाग और मट के मे हो गया पुष्पो का हार। समझे इसका सार ? धर्म का महत्व कैसा ही अपार !

सती का नमस्कार मंत्र का ध्यान करना था कि भयानक विषधर पुष्पहार बन गया ! कहिए, उस सती के अन्तःकरण मे कितनी शुचिता न रही होगी ! धर्म के प्रति उसके चित्त में कितनी गाढ़ी आस्था होगी ?

बूढ़ी वेश्या इस चमत्कार के रहस्य को क्या समझ सकती थी ? जिसने सत्य, शील और धर्म की छांह भी कभी न देखी थी, वह उसकी महिमा को कैसे समझ सकती थी ? यह आकस्मिक परिवर्तन देख कर उसके चित्त मे विस्मय हुआ। वह भौंचक्की रह गई। मन ही मन कहने लगी--अरे बाप रे ! यह तो जादूगरनी है ! गजब हो गया ! कहीं इसे भेद मालूम न हो गया हो !'

बुढ़िया वह सुन्दर हार देख कर फिर ललचा गई। सोमा के मुख पर कोई विशेष भाव न देख कर वह समझ गई कि इसे असलियत का पता नहीं चला है। तब उसने सोचा–यदि यह हार मेरी बेटी पहने तो अप्सरा–सी दिखाई देने लगे !

यह सोच कर उसने सती सोमा से कहा–तूने तो इसे पहन ही लिया है। अब इसे मटकी में रख दे। मेरे भी एक लड़की है। मैं यह हार उसे पहिनाऊँगी। उसका शौक भी पूरा हो जाएगा।

सती सोमा ने वह हार उतार कर फिर मटकी मे रख दिया। बुढ़िया वह मटकी लेकर अपनी लड़की के पास आई। लड़की को

आवाज देकर बुलाया और कहा--बेटी, मै तेरे लिए एक सुन्दर पुष्प-हार लाई हूँ। इस मटके में से निकाल कर पहन ले।

वेश्या ने ज्यों ही मटकी मे हाथ डाला कि काले विषधर ने उसे डॅस लिया। कराह कर वह भूमि पर गिर पड़ी। बुढ़िया के पैरों तले की जमीन खिसक गई। उसके दुःख का पार न रहा। मगर जो दूसरे का बुरा चाहता है, उसका खुद का बुरा हो जाता है।

बुरा पहले सुख पायगा, आखिर तो वह पछताएगा।
बुरा करता जो काम, आखिर होता बदनाम ॥
जेल की ठंडी हवा खावेगा ॥

बुरा काम करने वाला पहले-पहले अवश्य खुशी मना लेता है, परन्तु बाद में उसे लेने के देने पड़ जाते हैं। चोर पराया धन चुरा कर फूला नहीं समाता। सोचता है-जितना धन जिंदगी भर मिहनत करके भी न कमा पाता, उतना एक ही रात में कमा लिया! लेकिन पकड़े जाने पर जेलखाने की हवा भी उसी को खानी पड़ती है। बुरा करने वाले का कभी भला नहीं होता।

हाँ, तो वह वेश्या विष से मूर्छित होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। बुढ़िया अपनी उस बेटी को चारपाई पर डालकर राज दरबार मे भागी और कहने लगी—हुजूर, शहर में एक बद-माश औरत रहती है। उसने मटकी मे एक साँप रखकर भेज दिया और कहा कि इसमें फूलों का हार है। मेरी बेटी ने उसमे हाथ डाला तो साँप ने काट खाया। मेरी बेटी के प्राण चले गये हैं।

राजा ने सोमा को बुलवाया और उसके पति को भी। सोमा से पूछा--कहो क्या मामला है? तुम्हारे विरुद्ध बुढ़िया ने उसकी लड़की को मार डालने का अभियोग लगाया है।

सोमा ने पूर्वोक्त वृत्तान्त जैसा का तैसा कह सुनाया। उसने यह भी कहा—यह बुढ़िया स्वेच्छा से ही वह हार अपनी लड़की को पहनाने के लिए ले गई थी। उसके पश्चात कब, कैसे, क्या हुआ, मैं नहीं जानती।

सती सोमा ने जिस सरल ढंग से सारा वृत्तान्त निवेदन किया, उससे राजा को विश्वास हो गया कि सोमा सत्य कह रही है। अतः राजा ने बुढ़िया को करारी फटकार सुनाई। सच न कहने पर कठोर से कठोर दंड देने की धमकी दी। बुढ़िया भयभीत हो गई। तब उसने समस्त सच्चा वृत्तान्त खोल कर सुनाया। कहा-'महाराज, मैं अपने अपराध का आप ही दंड पा चुकी हूँ। मेरे ही कर्म खोटे हैं। मैं ही पापिनी हूँ। दूसरे का बुरा करने चली थी, परन्तु अपने ही पैर पर कुल्हाणी मार ली।' यह कह कर उसने सब हाल सुनाया। सती सोमा का अद्भुत प्रभाव देख कर राजा ने सोमा से पूछा-बेटी, बतला सकती हो कि वह साँप तुम्हारे हाथ में माला कैसे बन गया? और वेश्या के हाथ मे माला से साँप कैसे हो गया?

सोमा ने कहा-महाराज! मेरे पास नमस्कारमंत्र की शक्ति के सिवाय और कोई शक्ति नहीं है। मेरा पालक माता-पिता ने बचपन से ही मुझे इस महामंत्र की महिमा समझाई है और उस पर मेरा अखण्ड विश्वास है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात है भी तो वह यह कि मैं परपुरुष को पिता या भाई की दृष्टि से देखती हूँ।

राजा सोमा के प्रति श्रद्धाशील हो गया। वह समझ गया कि यह सोमा के धर्म और सतीत्व का ही प्रताप है कि काला साँप भी पुष्पहार बन गया। तब राजा ने सोमा से कहा—'बेटी, जिस

नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से सर्प पुष्पहार बन गया, उसके प्रभाव से वेश्या भी जीवित हो सकती है। मगर उसके लिए तुम्हारो जैसी सती की सहायता अपेक्षित है। क्या तुम उस वेश्या पर अपना हाथ फेर सकती हो, जिससे उसका विप दूर हो जाय और वह पुनर्जीवित हो सके ?

सोमा ने कहा—धर्म पिता ! यदि मेरे निमित्त से किसी का कुछ उपकार हो सकता हो तो मैं अपने जीवन को धन्य समझूँगी। मुझे कोई ऐतराज नहीं है।

सती सोमा ने वही णमोकार मंत्र पढ़ कर और पचपरमेष्ठी का स्मरण करके मृत वेश्या के शरीर पर जो हाथ फेरा कि वेश्या उठ खड़ी हुई, जैसे मूर्छा से उठी हो। यह आश्चर्य जनक, अलौकिक, अद्भुत दृश्य देख कर राजा भी चकित था तथा अन्य दर्शक भी चकित थे। वहाँ उपस्थित जितने भी जैनेतर जन थे, उनके चित्त पर इतना गहरा असर पड़ा कि वे सब सोमा को प्रत्यक्ष देवता समझने लगे। सबका हृदय परिवर्तित हो गया।

राजा ने सोमा से पूछा-बेटा, इस वृद्धा वेश्या ने तुझे लांछित करने का प्रयत्न किया, परन्तु चन्द्रमा पर धूल फैंकने के समान वह प्रयत्न निरर्थक हुआ। इसके अपराध के लिए तुम्हा दंड की व्यवस्था करो। बताओ, इसे क्या दण्ड दिया जाय ?

सोमा के हृदय में प्रतिहिंसा का भाव नहीं था। अतएव उसने कहा-'इसे क्षमा कर दीजिए। इसने मेरा नहीं, अपना ही अहित किया है। मगर आगे के लिए यह सावधान हो जाय तो इसका भी कल्याण हो जाय।'

राजा उसी दिन से पक्का जैनधर्मानुयायी हो गया। हजारों मनुष्य सुधर गये। वेश्या ने अपनी पापवृत्ति त्याग कर ब्रह्मचर्य

अंगीकार किया। सोमा के पति का जीवन भी परिवर्तित हो गया और वह उसका आदर करने लगा।

भाइयो ! चमत्कार अब भी हो सकता है, मगर उसके लिए होनी चाहिए मन की मजबूती ! मन मे प्रगाढ़ एवं निश्चल श्रद्धा हो और मन वचन काय से सत्य का ही पालन किया जाय तो आज भी विस्मयजनक घटनाएँ घटित हो सकती हैं। कहा है—

साँच को आँच है नाहीं, साँच हो आकबत में हो सहाई।
चौथमल साँच नौका ने कहो पापी को तारा है॥

जो सत्य के दिव्य यान पर आरोहण करेगा, वही भवसागर के परले पार पहुँचेगा। सत्य मनुष्य के लिए परम कल्याणकारी सहायक मित्र है। सत्य के अभाव मे किया जाने वाला कोई भी धर्माचरण प्रभावशाली नहीं हो सकता। यथा—

अग्निना सिच्यमानोऽपि, वृक्षो वृद्धिं न चाप्नुयात्।
तथा सत्यं बिना धर्मः, पुष्टिं नायाति कर्हिचित्॥

वृक्ष का सिंचन तो किया जाय, किन्तु पानी के बदले आग से सिंचन किया जाय, तो क्या वह वृक्ष वृद्धि को प्राप्त हो सकेगा ? कदापि नहीं। इसी प्रकार सत्य के बिना धर्म कदापि पुष्ट नहीं हो सकता। धर्म को प्राण देने वाला सत्य ही है। अतएव सत्य के अभाव मे धर्म निष्प्राण होता है।

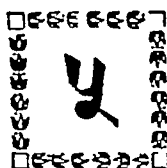
समस्त ऋषियों और मुनियो ने मुक्त कंठ से सत्य की प्रशंसा की है। फिर भी सत्य की महिमा इतनी विराट् है कि उसका वर्णन करना अशक्य है। ठीक ही कहा है—

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं देवैः कृताराधनम् ।
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशयनं व्याघ्रोरगस्तंभनम् ॥
श्रेयः संवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनम् ।
कीर्त्तेः केलिवनं प्रभावयवनं सत्यं वचः पावनम् ।

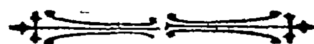
अर्थात्—सत्य बचन बड़े ही पवित्र होते हैं। वह विश्वास के आयतन हैं, अर्थात् सत्यवादी पुरुष विश्वास पात्र होता है, क्योकि उसके बचन कभी अन्यथा नही हो सकते। सत्य में कुछ ऐसी शक्ति है कि कैसो भी आपत्ति क्यों न आ पड़े, सत्य के प्रभाव से वह नष्ट हो जाती है। सत्य सब विपत्तियों का अन्त कर देने वाला है। मनुष्य की बात छोड़िये देवता भी सत्य की ही आराधना करते हैं। लम्बी यात्रा मे पाथेय (रास्ते में खाने के लिए भोजन) की आवश्यकता होती है, तो यह सत्य धर्म ही मुक्ति का पाथेय है। सत्य के प्रभाव से जल और अग्नि संबधी समस्त उपद्रव शान्त हो जाते है। व्याघ्र और सर्प की शक्ति भी सत्य के सामने काम नहीं आती। सत्य ही सब प्रकार से मंगल का साधन है, समृद्धि का जनक है, सौजन्य को जीवन देने वाला है, कीर्ति की क्रीड़ा भूमि है, सब प्रकार के प्रभाव को बढ़ाने वाला है और पवित्र बनाने वाला है। यह सत्य की महिमा है।

इस महिमा को हृदयंगम करके जो भाई-बहिन सत्य की आराधना करेंगे, उनका जीवन स्पृहणीय बन जायगा। उनके लिए सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होगा

ब्यावर
२७-२-१६४६ }



जीवन के अभिशाप



स्तुति:—

निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोति ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! आप इस संसार मे अनोखे दीपक हैं । दुनिया के दूसरे दीपकों में से धुआं निकलता है, और किन्तु आप निर्धूम हैं । धूम की कालिमा का आपको स्पर्श भी नहीं हुआ है । साधा-

रण दीपकों के लिए बत्ती भी चाहिए और तेल भी चाहिए। इनके विना दीपक प्रकाश नहीं दे सकते। किन्तु आप ऐसे दिव्य दीप हैं कि न बत्ती की आवश्यकता है और न तेल की ही। फिर भी अद्भुत बात तो यह है कि आप तीनों लोकों में प्रकाश फैलाते हैं-समस्त संसार को अपने प्रकाश से देदीप्यमान बनाते हैं। यह टिमटिमाने वाले साधारण दीपक तो हवा के एक हल्के-से झोंके से ही बुझ जाते हैं, परन्तु आप ऐसे दीपक हैं जो भयानक से भयानक और पर्वतों को भी डिगा देने वाले पवन से भी नहीं बुझ सकता। आंधी चले या कुछ भी हो, उस दीपक पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ सकता।

इस प्रकार तीनों जगत् के प्रकाशक, अद्भुत प्रदीप स्वरूप भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्हें हमारा बार-बार नमस्कार हो!

सज्जनो! ज्ञान के उजाले के विना अज्ञान रूपी अंधकार दूर नहीं होता। ज्ञान आत्मा का स्वभाविक गुण है। उसकी अनन्त और असीम मात्रा आत्मा में विद्यमान है। जब वह अपने असली रूप में प्रकाशित होता है तो लोक और अलोक को भी व्याप्त कर लेता है। कोई देश या काल नहीं कि जहां उसका प्रसार न हो सके। इस प्रकार ज्ञान की अनन्त ज्योति आत्मा में विद्यमान है। बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि आत्मा ज्ञान-स्वरूप ही है।

जैसे दीपक से प्रकाश भिन्न नहीं है, मधु से मिठास पृथक् नहीं है और मक्खन से चिकनापन अलग नहीं है, उसी प्रकार आत्मा से ज्ञान भिन्न नहीं है। आत्मा में ज्ञान के अतिरिक्त अन्यान्य गुण भी विद्यमान हैं, तथापि ज्ञान उनमें मुख्य है। उसी से आत्मा का अन्य द्रव्यों से पार्थक्य प्रतीत होता है। ज्ञान ही आत्मा की पहचान करवाता है।

फिर भी हम देखते हैं कि किसी--किसी आत्मा में ज्ञान का उजेला ज्यादा है और किसी--किसी मे कम है। जब प्रत्येक आत्मा ज्ञानमय ही है तो फिर इस तरतमता का क्या कारण है? यह शंका उत्पन्न हो सकती है। इसका समाधान यह है कि प्रत्येक आत्मा मे ज्ञान की मात्रा समान रुप से विद्यमान है। चाहे वह देव रूप में, चाहे मनुष्य के रूप में, चाहे कीट-पतग को योनि मे हो, चाहे स्थावर काय के रूप मे हो, यहाँ तक की सिद्ध भगवतो में ज्ञान की जितनी ज्योति जागृत है, उतनी ही प्रत्येक आत्मा मे भी विद्यमान है। किन्तु उसका विकास सब में समान नहीं होता। किसी में ज्ञान की अभिव्यक्ति कम होती है और किसी मे अधिक। इसी कारण किसी--किसी जीव के ज्ञान का उजाला ज्यादा होता है और किसी-किसी के कम होता है। अभिप्राय यह है कि स्वभावतः समान ज्ञान होने पर भी असका आविर्भाव समान न होने के कारण ज्ञान की मात्रा में अन्तर पड़ता है।

जैसे सूर्य के सामने मेघपटल आ जाने से उसके प्रकाश मे मन्दता आ जाती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के उदय के कारण ज्ञान में मन्दता हो जाती है। और जैसे मेंघपटल ज्यों-ज्यों क्षीण होता जाता है, त्यों--त्यों सूर्य के प्रकाश की वृद्धि होती जाती है, उसी प्रकार जैसे--जैसे ज्ञानवरण कर्म पतला पड़ता जाता है, वैसे--वैसे ज्ञान भी बढ़ता जाता है। जिस जीव ने ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम अधिक किया है, उसे ज्ञान की अधिक मात्रा प्राप्त होती है और जिसका क्षयोपशम कम होता है उसका ज्ञान भी कम होता है। जो पूर्ण रूप से ज्ञानावरण का क्षय कर डालता है, उसे पूर्ण मात्रा में ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार विभिन्न आत्माओ में ज्ञान का जो तारतम्य प्रतीत

होता है,उसका कारण ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की तरतम्यता अर्थात् न्यूनाधिकता ही है।

यह जीव किस प्रकार ज्ञानावरण कर्म का बंध करता है, शास्त्रों में विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। जो इस विषय में विशेष जिज्ञासा रखते हैं, उन्हें वहाँ से ही जान लेना चाहिए। यहाँ तो संक्षेप में इतना ही कहना है कि ज्ञान में बाधा पहुँचाने वाली क्रियाओं से ज्ञान का अविनय करने से, ज्ञानवान् जनों का अपमान करने से, ज्ञान के साधन शास्त्र शाला आदि को हानि पहुँचाने से तथा जिनसे ज्ञान सीखा हो उनका नाम छिपाने से तथा इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं से ज्ञानावरण कर्म का बंध होता है। बँधे हुए ज्ञानावरण कर्म का क्षय करने के लिए इनसे विपरीत क्रियाएँ करना आवश्यक है; अर्थात् ज्ञान का और ज्ञानवानों का विनय एवं आदर किया जाय, ज्ञानवानों की सेवा-सहायता की जाय, शास्त्रों का प्रचार और प्रसार किया जाय, ज्ञानाभ्यास कराने वाली शालाओं को दान दिया जाय तो ज्ञानावरण कर्म क्षय होता है।

संसार के जीव तरह--तरह से पाप करता है। जो जीव उत्कृष्ट पाप करता है, वह अगले जन्म में निरा मूर्ख, ठोठ या अज्ञानी रह जाता है। जो ज्ञानावरणी पाप नहीं करता है,उसे ज्ञान की अच्छी मात्रा प्राप्त होती है। उसके हृदय में ज्ञान की रोशनी हो जाती है। किन्तु उस रोशनी पर जब मिथ्यात्व की छाया पड़ जाती है तो वह विपरीत रूप में परिणत हो जाती है।

बात असल मे यह है कि ज्ञान की प्राप्ति ज्ञानवरण कर्म क्षयोपशम या क्षय से होती है। किन्तु जिस आत्मा में मिथ्यात्व-मोह का उदय है, उसका ज्ञान मिथ्यात्व रूपी कलक से कलंकित

होकर मिथ्याज्ञान के रूप मे परिणत हो जाता है। इसके विपरीत जिसमें मिथ्यात्व का उदय नहीं है और सम्यग्दर्शन विद्यमान है, उस आत्मा का ज्ञान सम्यज्ञान कहलाता है। मिथ्यात्व के संसर्ग से ज्ञानी भी अज्ञानी बन जाता है। उसकी मति भ्रष्ट हो जाती है। मिथ्यात्व की यह हवा बड़ी जबर्दस्त चीज है। यह धर्म करने वाले प्राणी को भी अपने वश मे करके अधर्म की ओर प्रवृत्ति करा देती है। साधारण गृहस्थो की बात जाने दीजिए, साधु को भी साधुपन से भ्रष्ट कर देती है और उसके पतन का कारण बन जाती है मिथ्यात्व की तूफानी हवा सम्यग्दर्शन, देशविरति और सर्वविरति रूपी दीपक को बुझा देती है।

भाइयों ! आत्मा के उत्थान और कल्याण के मार्ग में अनेक अन्तराय विद्यमान है। दुर्व्यसनों की हवा लगती है तो मनुष्य की सद्बुद्धि पलायमान हो जाती है। ज्ञान का देदीप्यमान दीपक बुझ जाता है। और उस स्थिति में सही राह मिलना भी मुश्किल हो जाता है।

कोई भी बुरी आदत पड जाना दुर्व्यसन कहलाता है। मनुष्य अपने शैशवकाल में प्रायः विकार हीन होता है किन्तु ज्यों-ज्यों उसकी बुद्धि का विकास होता जाता है और उसमें अपने आसपास के वातावरण को समझने और ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों वह दूसरो से प्रभावित होता है। अगर

आसपास का वायुमंडल निर्मल और पवित्र हुआ तो उस बालक में भी वैसे ही संस्कार जमा होते हैं। इसके विपरीत यदि उसके समीप का वातावरण गँदला हुआ तो वह गँदले ही संस्कार ग्रहण करता है। उन संस्कारो से प्रेरित होकर बालक पहले-पहल शौक या कुतूहल से अनुचित कृत्य करता है। धीरे-धीरे उन्हे करते-करते

वह इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उन कृत्यों को किये बिना उसे चैन नहीं पड़ती। वह उन बुराइयों में तल्लीन हो जाता है। मनुष्य की जब यह दशा होती है तब उसका काम दुर्व्यसनकहलाता है।

वास्तव में दुर्व्यसन जीवन का दारुण अभिशाप है। वह जीवन की पवित्रता को नष्ट कर देता है। दुर्व्यसन से जीवन नष्ट हो जाता है, व्यर्थ बन जाता है। दुर्व्यसनी पुरुष अपने जीवन का वास्तविक लाभ नहीं उठा सकता।

गांजा पीना, चरस पीना, भंग पीना, चंडू पीना, बीड़ी-तमाखू सिगरेट पीना-इन सब की गणना दुर्व्यसन मे है। जिस आदत या कुटेव से मनुष्य का जीवन बर्बाद होता है, जिससे उसके मस्तिष्क को हानि पहुंचती है, स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है, आत्मा मलीन होती है, प्राण संकट में पड़ जाते हैं और मानवीय शक्तियो का ह्रास होता है, वह सब कुटेवें दुर्व्यसन में गिनी जाती है।

पूर्वाचार्यों ने उन सब दुर्व्यसनों का वर्गीकरण करके सात भेद बतलाये हैं। वे इस प्रकार हैं —

जुआ खेलना मांस मद, वेश्या व्यसन शिकार।
चोरी पररमणीरमण, सातों व्यसन निवार॥

अर्थात्—(१) जुआ खेलना (२) मांस खाना (३) मदिरा-पान करना (४) वेश्यागमन करना (५) शिकार खेलना (६) चोरी करना और (७) परस्त्रीगमन करना, यह सात कुव्यसन हैं। सत्पुरुषों को इनसे सदा बचते रहना चाहिए।

मनुष्य इन सात में से किसी भी दुर्व्यसन का जब शिकार हो जाता है तो उसे किसी प्रकार का भान नहीं रहता। इन दुर्व्य-

सनों का आपस में इतना घनिष्ठ संबध है कि एक दुर्व्यसन अनेक दूसरे दुर्व्यसनो को उत्पन्न कर देता है।

कोई आदमी मंदिर मे बैठा-बैठा माला फेर रहा है। उसे बाहर से कोई तमाखू पीने के लिए आवाज दे तो वह झट दौड़ा चला जाता है। इसी प्रकार गांजा पीने वाला ईश्वर भक्ति को छोड़ कर गांजा पीने के लिए चल पड़ता है और गंजेड़ी के पास जाकर गांजे की फूक मारने लगता है। यह दुर्व्यसन धर्मस्थान से क्या वैकुण्ठ से भी बाहर निकाल लाता है। मैंने एक पुस्तक में एक जिक्र पढ़ा था। वह इस प्रकार है—

एक आदमी बडा पापी और बड़ा कुकर्मी था। वह मर गया। जम के दूत गफलत में रह गये। वे आये थे उसे लेने, परन्तु किसी गफलत मे पड़ कर उसे नरक तक न पहुँचा पाये। इस बीच मे उसने चालाकी की। जब वह जा रहा था तो बीच मे आ गया वैकुण्ठ का रास्ता। वह नरककुण्ड में जाने के बदले बहिश्त (स्वर्ग) के दरवाजे में घुस गया। जम के दूत उसको खोज करने लगे कि वह पापी चकमा देकर किधर चल दिया! वह हमारा पाहुना, हमारा मेहमान, जो झूठ बोलने वाला, चोरी करने वाला, परायी स्त्री को ताकने वाला, हिंसा करने वाला, शिकार खेलने वाला, शराब पीने वाला, मांस खाने वाला, व्यभिचार करने वाला, निरपराधों के प्राण लेने वाला, छाती में छुरा भौंकने वाला, घरों में आग लगा कर निर्दोष मनुष्यो और पशुओं को जलाने वाला, वह पापी क्रूरकर्मा कहाँ चला गया? यमदूत उसे इधर-उधर ढूढने लगे। उन्होंने फिर विचार किया—वह कहीं वैकुण्ठ मे तो नहीं घुस गया है?

यमदूत घबराने लगे। बैकुंठ में धर्मराज रहते हैं। वहाँ हमारी दाल नहीं गल सकती। बड़ी गलती हुई! लेकिन कोई न कोई युक्ति करके उसे वहाँ से निकालना ही होगा!

इस प्रकार विचार कर जमदूतो ने उसे वैकुंठ से बाहर निकालने की युक्ति भी सोच ली। उन्होंने एक हुक्का बनाया। हुक्के में एक लम्बी नली लगाई और बैकुंठ के द्वार के बाहर बैठ कर हुक्का पीने लगे। सुन कर वह पापी सोचने लगा अहो! "बड़ी अच्छी बात है यहाँ भी हमारा प्यारा हुक्का मौजूद है" यह सोच कर वह जिधर से हुक्के की गुड़गुड़ाहट आ रही थी, चटपट उसी ओर दौड़ा आया। ज्यों ही उसने वैकुंठ के दरवाजे पर पाँव रक्खा कि यमदूतों ने उसे पकड़ लिया और फिर मित्रो! उसे सीधे नरक मे ले गये।

यह सब कैसे हुआ? बैकुंठ में पहुंचा हुआ पापी भी हुक्के के लोभ मे पड़कर वैकुंठ से बाहर आ गया और नरक का मेहमान बना। इसी प्रकार आप बीड़ी, सिगरेट, चिलम, हुक्का, भांग, गांजा आदि पीओगे और कदाचित् भूल से भी वैकुंठ मे चले गये तो भी यमदूत आपको बाहर निकाल लाएँगे!

यह तो एक उदाहरण मात्र है और इससे जो आशय लेना है वह यही दुर्व्यसन अच्छी से अच्छी स्थिति पर पहुंचे हुए मनुष्य को भी गिरा देता है और नरक के दुःखो का भागी बनाता है। अतएव दुर्व्यसनों के पास भी न फटकना ही समझदार मनुष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।

स्मरण रक्खो, यह दुर्व्यसन तुम्हे अच्छे स्थान से बाहर निकाल देंगे। प्रत्यक्ष ही देख लो। पंचायत की जाजम बिछती है और पंच लोग आकर बैठते हैं तो तमाखू पीने या खाने वाला

व्यक्ति उनके बीच मे नहीं बैठ सकता। क्योंकि तमाखू पीने वाला धुँए के गुब्बार उड़ाता है और खाने वाला आसपास में थूक-थूक कर स्थान गदा कर देता है। अतएव वह पचो के बीच मे नहीं बैठ कर एक किनारे बैठता है! समझदारो के लिए तो यही तौहीन कुछ कम नहीं है!

दुर्व्यसनों मे कितनी बुराई है, यह जानने के लिए दूर जाने और गंभीर चिन्तन की आवश्यकता नहीं। थोड़ा-सा विचार करते ही उनकी भयंकरता और अहित करता समझ मे आ सकती है। उनके कारण जीवन किस प्रकार बर्बाद हो जाता है, यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। आपके आसपास ही ऐसे बहुत लोग मिल जाएँगे, जो किसी दुर्व्यसन के कारण भयानक मुसीबत मे पड़े है और जिन्होंने अपने उगते हुए और उठते हुए जीवन को मिट्टी मे मिला लिया है और अब पश्चाताप करना ही उनके भाग्य में शेष रह गया है।

अंतगडसूत्र मे एक उदाहरण आया है। राजग्रह नगर मे छह सेठ रहते थे। राजा ने किसी अवसर पर प्रसन्न होकर उन्हे मनमाना वर्त्ताव करने की छूट दे दी थी। उनके सब गुनाह माफ थे। इन छहों के छह लड़के थे। छहों धनवानो के बेटे थे। धनवानों के बेटे, अगर ठीक तरह न रक्खे गये और सुसंस्कारों से सम्पन्न न हुए तो ऐयाशी हो जाते है, कुमार्ग पर चलने लगते है और अपनी कुलपरम्परागत मान-मर्यादा को मिट्टी मे मिला देते है। गरीबों को तो उदर चिन्ता से ही अवकाश नही मिलता। वे कमाने और अपना तथा अपने परिवार का पेट भरने मे ही संलग्न रहते हैं, परन्तु मालदार बेकार पड़े-पड़े दुर्व्यसनी हो जाते है। इधर-उधर भटकते फिरते हैं। आज वन विहार करने जाते है तो

कल कहीं अन्यत्र तशरीफ ले जाते है। आशय यह है कि धन की चिन्ता न होने से और काम-काज सामने न होने से वे खोटे रास्ते चलने लगते हैं!

पूर्वोक्त छहो लड़के अव्वल दर्जे के दुर्व्यसनी थे। उन्होने एक दिन निश्चय किया कि कल नगर के बाहर के उद्यान में क्रीडा करने के लिए चलना। एक ने प्रस्ताव रक्खा और सबने एक-स्वर से उसका समर्थन कर दिया। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और कार्य-क्रम निश्चित हो गया।

दूसरे दिन प्रभात होते ही वे उस बगीचे में जा पहुँचे। वह बगीचा बड़ा रमणीय स्थान था। उसमें भांति-भाति के सुन्दर और सुगधित फूल खिले हुए थे। छहो मित्र आकर उस उद्यान मे यथेष्ट क्रीड़ा करने लगे।

उस बगीचे का मालिक अर्जुन नामक माली था। अर्जुन माली अपनी पत्नी को साथ लेकर प्रातःकाल उद्यान में आया था। वह फूलो को बेच कर अपनी आजीविका चलाता था। उस दिन कोई महोत्सव था, अतएव फूलों की अधिक बिक्री होने वाली थी। अतएव दोनो पति-पत्नी फूल चुन रहे थे।

अर्जुन की पत्नी नवयुवती और सुन्दरी थी। दोनो फूल चुन-कर जब नगर मे लौटने के लिए तैयार हुए तो पहले उस बगीचे में बने मुद्गरपाणि नामक यक्ष के मंदिर में फूल चढ़ाने गये। माली को यक्ष का इष्ट था और वह उस पर बड़ी श्रद्धा रखता था।

छहों नवयुवकों ने देखा-माली अपनी पत्नी के साथ यक्ष के मन्दिर में फूल चढ़ाने आ रही है। उन्होंने मालिन के सौन्दर्य को भी देखा। उनके मन में पाप की भावना उत्पन्न हुई। सोचा-माली

अकेला है और हम छह हैं ! वह हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मालिन के सौन्दर्य का आज उपभोग करना चाहिए। इस दुर्विचार एवं पाप-संकल्प से प्रेरित होकर वे पहले ही मन्दिर में घुस गये और दरवाजे के पीछे छिप कर खड़े हो गये।

इधर अर्जुन माली और उसकी पत्नी ने यक्षालय में प्रवेश किया। उनका प्रवेश करना था कि ताक में खड़े वे नवयुवक दोनों ओर से झपटे। उन्होंने अर्जुन माली को पकड़कर बाँध दिया। उसके हाथ पैर जकड़ दिये। वह लाचार और विवश हो गया। तब उन गर्वोन्मत्त, धनोन्मत्त, और अनीतिपरायण युवकों ने उसी मन्दिर में, अर्जुन के सामने ही, उसकी पत्नी की इज्जत ली।

अर्जुन माली इस कुकृत्य को सहन न कर सका। उसका हृदय तिलमिला उठा। सम्पूर्ण शरीर क्रोध और प्रतिशोध की भावना से सिहर उठा। उसने यक्ष की मूर्त्ति के समने विचार-मेरे बाप-दादा के समय से इस यक्ष की पूजा होती चली आ रही है और हम भी इसी की पूजा के लिए यहाँ आये थे। आज मेरे ऊपर यह उग्रतम संकटआया है, फिर भी यक्ष मेरी सहायता नहीं करता। मालूम होती है कि इस मूर्त्ति मे से यक्ष चला गया है, केवल लकड़ी का खोखा ही रह गया है ! अत्यन्त निराश भाव से माली जब ऐसा विचार कर रहा था, उसी समय संयोगवशात् यक्ष का उपयोग लग गया। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे भक्त पर संकट आ पड़ा है और वह न्यायापथ पर है। उसकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। बस, यह विचार करते ही यक्ष ने आकर अर्जुन माली के शरीर मे प्रवेश किया।

शरीर में यक्ष के प्रवेश करते ही अर्जुन अपने शरीर में दिव्य शक्ति का अनुभव करने लगा। उसका शरीर वज्र के समान

हो गया। उसके हाथों-पैरों के बन्धन कच्चे सूत की तरह तड़ा-तड़ टूट गये। अब अर्जुन माली स्वतन्त्र हो गया। पास में ही एक भारी मुद्गर पड़ा हुआ था। वह लपक कर उठा और मुद्गर हाथों मे लेकर उन गुन्डों की ओर बढ़ा। उसने छहों गुन्डों को मार डाला और अन्त मे अपनी औरत के भी प्राण ले लिये, क्योंकि उसकी भी नियत बिगड़ गई थी।

भाइयों! विचार कीजिए इन छह पुरुषों को क्यों असमय मे मौत का ग्रास बनना पड़ा? वास्तव मे उनके दुर्व्यसन ने ही उनके प्राण लिये। दुर्व्यसन की आग बड़ी जबर्दस्त है। इसमें पड़ कर कोई सकुशल नहीं बच पाता। अतएव दुर्व्यसन के रास्ते पर कभी न जाओ। कहा भी है:-

उपट मत जाओ रे प्राणी।
थां ने समझावे गुरू ज्ञानी॥

तुम्हें बार-बार सद्गुरु समझाते है कि भाइयो! कुमार्ग पर पैर न बढ़ाओ, उलटे रास्ते पर जाओ। यह संकटों और यातनाओं से भरा हुआ मार्ग है। दुःखों का मार्ग है। इस दुर्व्यसन के मार्ग पर चलने वाला मनुष्य नाना प्रकार के दुःख भोगता है। मत समझो कि मेरे पास धन का बल है या यौवन का बल है। दुर्व्यसन तुम्हारा सत्यानाश कर डालेगा। देख लो, इन धनवानों के लड़कों की क्या गति हुई! उनके साथ, अर्जुन माली के शरीर मे यक्ष के रहने से, हजारों जाने चली गई। आखिर भगवान् महावीर के पधारने पर ही शांति हुई। दुर्व्यसन कोई भी क्यों न हो, मनुष्य के लिए अत्यन्त हानिकर है। कोई ऐसा नहीं और ऐसा हो भी नहीं सकता कि दुर्व्यसन का सेवन करके सकुशल बच जाय!

दुर्व्यसन का शिकार बना था राजा श्रेणिक। कितना प्रतापी सम्राट् था वह! किन्तु उसे भी दुर्व्यसन लग गया। भगवान् महावीर और अनाथी मुनि के सम्पर्क में आने से पहले वह शिकार खेलता था। वह शिकार खेल कर जीवों के प्राण हरण करता था और उसमें बड़ा आनंद मानता था, किन्तु यह नहीं जानता था कि वह स्वयं दुर्व्यसन का, हिंसा के पाप का शिकार बन रहा है।

एक दिन की बात है! श्रेणिक शिकार खेल रहा था। उसने तीर खींच कर एक हिरणी को मारा। तीर निशाने पर लगा और हिरणी धड़ाम से धरती पर जा गिरी। हिरणी गर्भवती थी, अतएव उसके पेट का बच्चा बाहर निकल पड़ा और हिरणी मर गई। इस पर राजा ने बड़ी खुशी मनाई। राजा का हृदय अत्यन्त ही कठोर बन गया था। दया-करुणा का अंश भी न रह गया था। वह सोचने लगा—अहा, मैंने का बढ़िया शिकार किया है।

इधर राजा घोरातिघोर पाप करके प्रसन्न हो रहा था और उधर संयोग वशात उसकी आयु को बध हो गया। आयु जीवन मे एक ही बार बँधती है, किन्तु इस जीव को मालूम नहीं कि किस समय उसका बंध होने वाला है। श्रेणिक ने पापमय क्रूर अध्यवसाय के चरण चौरासी हजार वर्ष की नरक की आयु का बध कर लिया।

एक बार घोड़े पर सवार होकर घूमता-घूमता वह मंडिकुक्ष नामक उद्यान मे जा पहुँचा। प्रातःकाल का समय था। उद्यान के भीतर एक वृक्ष के नोचे, एक महात्मा विराजमान थे। वह नवयुवक थे। उनके शरीर का सौन्दर्य असाधारण रुप से उत्तम था।

दिव्य आभा चेहरे पर चमक रही थी । समस्त काया कुन्दन की सी कान्ति से कलित थी । लोच किये कुछ समय हो चुका था, अतएव उसके मस्तक पर घुंघराले बाल शोभायमान हो रहे थे । ब्रह्मचर्य का दिव्य एवं प्रखर तेज उनके ललाट पर अठखेलियाँ कर रहा था । चेहरे पर अद्भुत प्रशमभाव लक्षित हो रहा था । अभिप्राय यह है कि मुनि की शारीरिक सम्पत्ति अत्यन्त आकर्षक थी । राजा श्रेणिक की दृष्टि उन पर पड़ी । उनके अनूठे सौन्दर्य को देखकर श्रेणिक के चित्त मे भी आश्चर्य हुआ । उसने विचार किया-सौन्दर्य का असीम कोष लिये यह महात्मा यहाँ क्यों बैठे हैं ? यह रूप सौभाग्य के बिना नहीं मिल सकता और यदि यह सौभाग्यशाली है तो फिर भिक्षुक क्यों बने हैं ? इनका व्यक्तित्व निराला है ।

अहो वण्णो अहो रूवो, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥

—उ. अ. २० गा. ६

अहा ! धन्य है इनका वर्ण, धन्य है इनका रूप और धन्य है इस आर्य पुरुष की सोमता ! इनकी क्षमा, इनकी निर्लोभता और भोगो के प्रति अनासक्ति भी धन्य है !

हाथ, पैर, आँख, नाक, कान, मुँह आदि अंगोपांगो की सुन्दरता रूप कहलाती है । रग को वर्ण कहते हैं । मुनि के शरीर के समस्त अगोपाग बनावट के लिहाज से अत्यन्त सुन्दर थे और उनका वर्ण भी बडा ही प्रशस्त था । कई लोग रूप और वर्ण से सुन्दर होने पर भी चेहरे से भयानक या विद्रुप होते है उनका चेहरा डरावना होता है । ऐसा लगता है कि उसके पास

गये तो कहीं मार न बैठे! मगर उन मुनि का चेहरा अत्यन्त सौम्य था। मुनि के चेहरे पर क्षमा की भी स्पष्ट झलक थी।

साधु को कोई अविवेकी कुछ भी कह दे, गालियाँ दे, अपशब्द कह दे या चुभने वाले वचन कहे, फिर भी साधु के मन में यदि तनिक भी क्रोध उत्पन्न न हो, उसका मन मैला न हो और चित्त में विकार न आये तो समझना चाहिए कि इनमे क्षमा है। कहा भी है:-

तू तू कारे बोलतां खबर क्षमा की थाय।
जी जी कारे बोलतां कौने रोष भराय ॥

कहा जा सकता है कि अनाथी मुनि उस समय ध्यान मे मग्न थे। राजा श्रेणिक ने अपशब्द कह कर उनकी परीक्षा भी नहीं की थी। फिर कैसे उसे पता चल गया कि यह मुनि क्षमावान् हैं? इसका उत्तर यह है कि उस अवस्था में भी उनके क्षमा भाव का पता लग रह था। ध्यान में होने पर भी, डांस मच्छर आदि उनके शरीर पर प्रहार करते थे और उस प्रहार-कष्ट को वे समभाव से सहन कर रहे थे, उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार का विकार दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, इसी से अनुमान किया जा सकता था कि वे अतीव क्षमाशील हैं।

राजा सोचता है-अहा! यह मुनि निर्लोभ भी मालूम होते हैं, क्योंकि इनके पास कोई वैभव नहीं है। हाथी, घोड़ा आदि सब कुछ त्याग कर अपरिग्रही हैं। शास्त्र अथवा पोथी-पाना भी कुछ नहीं है। इस जवानी में गृह-संसार त्याग कर साधु बने हैं, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि संसार के विषयभोग इन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सके। वास्तव मे यह मुनि महात्यागी हैं।

राजा ने फिर विचार किया–यह उमड़ता हुआ यौवन और यह अनुपम सौन्दर्य ! और फिर यह साधु-अवस्था ! वास्तव मे यह जंगल मे शोभायमान नहीं होते, यह तो महल की शोभा बढ़ाने योग्य हैं। ऐसे रूपवान् तपस्या करने योग्य नहीं, भोग भोगने योग्य हैं। पता नहीं, क्यों इन्हें साधु बनना पड़ा !

राजा श्रेणिक पहले धार्मिक संस्कारो से वंचित था। साधु-संतों को देखकर वह मुँह फेर लेता था। मगर अनाथी मुनि का असाधारण लावण्य, अनुपम तेत और प्रभाव देख कर वह मुँह न फेर सका। उनकी उपेक्षा न कर सका। हठात् उसका चित्त मुनि की ओर आकर्षित हुआ। उस महमोहिमी मूर्ति ने राजा का मन अपनी ओर खींचा ही लिया। वह उनके समीप जाने और वार्त्तालाप करने के लिए प्रेरित हुआ।

राजा श्रेणिक घोड़े से नीचे उतरकर मुनि के पास आया। उसने प्रश्न किया—'भगवन् ! आप इस अवस्था मे साधु क्यों बन गये है ?'

यद्यपि राजा जैन साधुओं को उपासक नहो था, फिर भी उसने मुनि को 'भगवन्' कह कर क्यो संबोधित किया ? इसका कारण यह है कि कुलीन एवं सभ्य पुरुष तुच्छ शब्दों का प्रयोग नहीं करते। बड़ो के मुख से बड़े बोल ही निकलते हैं। किसी भी पंथ अथवा मत का त्यागी पुरुष क्यों न हो, उसका अपमान करना या उसे टुच्चे शब्द से बुलना असभ्यता है। हलके शब्द बोलने से बोलने वाले की ही तुच्छता प्रकट होती है। इसी कारण राजा ने आदरपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है। राजा श्रेणिक उस समय तक जैनधर्मावलम्बी नहीं बना था। जानता था कि यह मेरे

गुरु नहीं है। फिर भी वह शिष्ट पुरुष था। अतएव शिष्टता की रक्षा करने के लिए ही उसने 'भगवन्' शब्द का प्रयोग किया।

मुनिराज जब अपना ध्यान समाप्त कर चुके तो उसके प्रश्न का उत्तर देने लगे—

अणाहो मि महाराय ! नाहो मज्झ न विज्जइ ।
अणुकंपगं सुहिं वावि, कंचि नाभितुमे महं ॥

हे महाराज ! मैं अनाथ हूं। मेरा कोई नाथ नहीं है मददगार नहीं है। इस कारण मैं साधु बन गया।

राजा मुनि के कथन के वास्तविक मर्म को न समझ कर और उनके शब्दों का ऊपरी अर्थ ही समझ कर सोचने लगा–हो सकता है ! सुन्दर शरीर वाले भी गरीब होते हैं। कोई रक्षा करने वाला नहीं था तो बेचारे साधु बन गये ! लेकिन जब मैं ने पूछ लिया है और इन्होंने अपना दुःख मुझे बता दिया है तो मेरा कर्त्तव्य है कि इनका दुःख दूर करूँ। मैं ने ऐसा न किया तो क्या किया ! पूछने का फल ही क्या हुआ ? फिर राजा के नाते भी मुझे इनका कष्ट निवारण करना चाहिए।

भाइयो ! बड़े और छोटे मे यही अन्तर है कि बड़ा आदमी किसी दुखियारे से जब उसके दुःख के विषय में पूछ लेता है और दुखिया उसे अपना दुःख निवेदन कर देता है, तो बड़ा आदमी उस दुःख का निवारण करने के लिए जी जान से प्रयत्न करता है। इसी में उसका बड़प्पन है। जो ऐसा नही करता वह बड़ा नहीं कहला सकता। दुःख तो बड़ा ही मिटा सकता। भिखारी का दुःख भिखारी नहीं मिटा सकता।

हाँ, तो राजा श्रेणिक ने मुनि का दुःख दूर करने का विचार करके कहा-मुनिराज ! अगर आपका नाथ नहीं है तो मैं नाथ बनता हूँ। आप मेरे साथ चलिए। कहाँ ?

चालो म्हारा राज ! मैं सेर, रतनां का दूं महल।
तरुण तरुण तिरिया परणा दूँ, मानो अध की सेल।
आओ चढ़ो घोड़ा के ऊपर, जोगारम दो मेल।

हे महाराज ! आओ और मेरे घोड़े पर चढ़ जाओ। मै आपको अपने महल में ले चलता हूँ। मैं तरुणी स्त्रियों के साथ विवाह करा दूंगा। इन साधु के उपकरण को छुट्टी दो-ओघा, पात्र और मुखपत्ती को हटा दो और राजमहल मे सुख से रहो।

मनुष्य कई पहलुओं से बात सोचता है। राजा ने प्रथम तो करुणा की प्रेरणा से मुनि को महल में चलने का आमंत्रण दिया दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि मुनि को ले जाकर वह चेलना को नीचा दिखलाना चाहता हो ! वह रानी से कह सकता था कि देखो, तुम्हारे गुरु को मैं गृहस्थ बना लाया हूँ ! मगर राजा का आन्तरिक अभिप्राय कुछ भी रहा हो, मुनि ने उसे सफल नहीं होने दिया वे राजा से कहने लगेः—

राय ! क्यों रे भूलानो।
तू नहीं जाणे रे नाथ अनाथ में ॥ टेर ॥
पोते राय ! अनाथ है सो तू, बने कौन का नाथ।
अति घबराणो भूपति सरे, सुनमुनिवर की बात॥
अनेक और समृद्धि सहित है गांव मेरे साक्षात।

मुनि कहते हैं-राजन् ! क्यों भूल रहे हो ? अभी तक तुम्हें यही नहीं मालूम है कि नाथ कौन होता है और अनाथ कौन होता है ? राजन् ! तुम स्वयं अनाथ हो तो मेरे नाथ कैसे बन सकोगे ?

मुनि की वाणी में अनाथोचित दैन्य नहीं था। उस वाणी मे एक विचित्र प्रकार की तेजस्विता थी। उसे सुनकर कोई नहीं कह सकता था कि यह किसी अनाथ के मुख से निकली वाणी है। फिर वास्तव में जो अनाथ हो, उसमें इतना साहस कहां जो राजा को इतनी खरी बात कह सके !

मगधाधिपति श्रेणिक मुनि की तेज पूर्ण वाणी सुन कर घबरा उठा। उसे पसीना आगया। इससे पहले इस प्रकार के बचन कहने वाला उसे कोई नहीं मिला था।

आखिर श्रेणिक ने कहा-मुनिराज ! आप मुझे पहचान नहीं सके हैं क्या ? मै विशाल मगध के साम्राज्य का स्वामी श्रेणिक हूं। अनेकों गांवों पर मेरा अखंड शासन चलता है। मेरे पास अनेको हाथी, अनेकों घोड़े और हजारों रथ हैं। करोड़ों मनुष्यो की फौज है। महारानी चेलना जैसी महारानियां अन्तःपुर मे निवास करती हैं। बड़ा परिवार है। यह सब आपको ज्ञात नहीं है, सभवतः इसी कारण आपका कथन मिथ्या है। जानते तो ऐसा न कहते।

मुनि—राजन् ! आपने अभी सनाथ-अनाथ का अर्थ ही नहीं समझा है।

राजा—स्वामिन् ! कृपा कर मुझे समझाइए।

मुनि—राजन् ! सुनिये। मैं आपको आप बीती सुनाता हूँ। मैं एक सम्पत्तिशाली सेठ का लड़का हूं। एक बार मेरी आँखो मे

इतनी तीव्र वेदना हुई कि मैं कह नहीं सकता। उस वेदना के कारण मुझे पल भर भी चैन नहीं पड़ती थी।

राजा—इलाज नहीं करवाया आपने? पिता न होंगे!

मुनि—महाराज! मेरे पिताजी ने अनेक वैद्यराजो को बुलया और कहा—अगर मेरे लड़के को आराम पहुँचा दोगे तो मेरे घर मे जो सार से सार वस्तु होगी, वह तुम्हें दे दूंगा।

वैद्यों ने चिकित्सा करने में कसर न रक्खी। आयुर्वेद के पन्ने पलटे। परस्पर विचार विमर्श किया। दवाइयाँ दीं। मगर कुछ भी फल न निकला।

राजा—अच्छा, आपके माता न होगी। बेटे पर माँ का गहरा और सच्चा प्रेम होता है।

मुनि—राजन्! माँ भी थी। उसे मेरी वेदना से इतना दुःख होता था कि वह बेचैन थी। क्षण भर भी चैन नहीं पा रही थी। माँ के अतिरिक्त मेरे बड़े भाई भी थे और छोटे भी थे। वे दिन-रात मेरी सेवा में लगे रहते थे।

राजा—तो पत्नी न होगी! पत्नी को पति के प्रति जो सहानुभूति होती है, वह अन्य किसी को नहीं।

चंपकवर्णी कामिनी सरे, अप्सरा के अनुसार।
खाना पानी पैरणा सरे, छोड्या सब सिणगार॥
अहोनिश रहती मुझ गोडे, झुगती आंसूधार॥

चम्पा की कली के समान गौर वर्ण वाली पत्नी थी, जो देवाङ्गना के समान सुन्दरी थी। मुझे कष्ट में देखकर उसने खाना-

पीना, स्नान करना, सिंगार करना वगैरा सब छोड़ दिया । वह दिन-रात मेरे समीप बैठी रहती और इतने आँसू बहाती कि मेरा शरीर भी भींग जाता था। परन्तु चलती उसकी भी कुछ नहीं थी। वह भी विवश थी।

राजन् ! सब परिवार के जन परेशान थे। मुझे दुखी देख कर दुखी हो रहे थे, परन्तु मेरा दुःख कम नहीं हो रहा था। सभी कुछ उपाय कर लिये मगर तकलीफ कम होने का नाम नहीं था। तब कोई खोपरा न खाने की, कोई नगे पैरों चलने की, कोई घी न खाने की और कोई दूसरी तरह की मनौती करने लगे। मैंने भी पड़े-पड़े एक मनौती कर ली। वह यह कि अगर मैं इस नेत्रवेदना से छुटकारा पा सका और स्वस्थ हो गया तो संयम ग्रहण कर लूँगा। वह इस प्रकार—

एयं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओऽणगारिअं ॥

अर्थात्—यदि मै इस विपुल वेदना से मुक्त हो गया तो मैं प्रव्रज्या अंगीकार कर लूँगा। उस प्रव्रज्या मे सब से पहले क्षमा को पकडूँगा। पाँचों इन्द्रिया को अपने अधीन करूँगा। अर्थात् नाटक-थिएटर आदि देखने की, सुमधुर शब्द सुनने की, सुगंध सूंघने की, मनोज्ञ रसों का आस्वादन करने की और सुखद स्पर्शो मे आनन्द मानने की इन्द्रिया की जो वृत्ति है, उसका परित्याग कर दूंगा। इन्द्रियो को ऐसा शिक्षित करूँगा कि वे सब विषयो को समान भाव से ग्रहण करें। किसी में अनुरक्ति और किसी मे विरक्ति प्रदर्शित न करे। मै सब प्रकार के आरंभो का परित्याग कर दूंगा। सर्वथा निरारभ जीवन व्यतीत करूँगा।

राजन् ! यह संकल्प करके मैं सोया तो आराम की नींद आ गई। प्रातःकाल सोकर उठा तो बिलकुल स्वस्थ की तरह उठा। सारी वेदना दूर हो गई। पता ही नहीं चलता था कि कोई वेदना थी।

मेरे स्वास्थ्यलाभ के समाचार कुटुम्बी जनों को ज्ञात हुए सब हर्षित और प्रसन्न हो उठे। सब कहने लगे-मैं ने अमुक मनौती की थी और मैं ने अमुक मनौती की थी, जिससे लाला को आराम हो गया।

मैं ने उनसे कहा-आप लोगों के साथ मैं ने भी एक मनौती (बोलमा) की थी। उसे पूरा करना पड़ेगा।

सब एक साथ बोले-उसे पहले पूरा करना चाहिए। कहो क्या मनौती की थी तुमने ?

मैं ने उनसे कहा-स्वस्थ हो जाने पर दीक्षा ग्रहण कर लेने का मैं ने सकल्प किया था। मैं समझता हूँ, एक मात्र धर्म ने ही मेरी रक्षा की है। धर्म के प्रताप से ही मेरा दुख दूर हुआ है। यह कह कर मैं आप सब की हार्दिक सहानुभूति और प्रीति का महत्त्व कम नहा आंक रहा हूं। उसके लिए मैं कृतज्ञ हूं। मानव-शक्ति से जो कुछ हो सकता था, वह सब आपने किया है, किन्तु धर्म की शक्ति ही सर्वोपरि है। हम सब इस तथ्य को समझ लेंगे तो हमारा कल्याण ही होगा। इस प्रकार मैं अपनी मनौती की पूर्त्ति के लिए संयम धारण करूँगा।

मुनिराज ने आगे कहा मगधराज ! मेरे पिता के पास प्रचुर सम्पत्ति थी। हीरा, माणिक, मोती, पन्ना, सोना, चादी आदि का बड़ा ढेर किया जाय और एक हाथी अम्बाड़ी सहित उसके पास खड़ा कर दिया जाय और वह हाथी नज़र न आए तो एक इभ्य का धन कहलाता है। ऐसे सत्तावन इभ्यों का धन था।

उसमें से तेरह इभ्यों का धन उन्होंने कौशाम्बी-नरेश की सहायता के लिए दे दिया था इतना सभी कुछ होते हुए भी मैं ने अपनी प्रतिज्ञा के निर्वाह के लिए सब कुटुम्बी जनों को रोता विलखता छोड़ कर प्रव्रज्या स्वीकार कर ली–मैं साधु बन गया। घूमता २ यहाँ आया हूँ। प्रसंगवश मैं ने अपना वृत्तान्त तुम्हें सुनाया है, इस विचार से कि तुम सनाथ-अनाथ की वास्तविकता को समझ सको।

राजन्! उस बीमारी ने मेरे नेत्र खोल दिये। मैं समझ गया कि धन-सम्पदा और कुटुम्ब-परिवार कष्ट पाते जीव की रक्षा करने में असमर्थ हैं। रोग और मरण को निवारण करने की शक्ति किसी में नहा है। अतएव सांसारिक सुख साधन होने पर भी वस्तुतः प्राणी अनाथ है। उसकी अनाथता दूर करने वाला एक मात्र धर्म है। जिसे धर्म का सरक्षण प्राप्त है, वही सनाथ है और जो धर्म के शरण से वञ्चित है, वह अनाथ है। इस कसौटी पर आप अपने को कस देखिए और फिर कहिए कि मेरा कथन मिथ्या है या सही है। राजन्! आपकी विशाल सेना और असीम राज-कोष अन्त समस मे आपकी रक्षा नहीं कर सकेंगे। रक्षा होगी तो धर्म से ही होगी। मैं धर्म का शरण ग्रहण करके अनाथ से सनाथ हो गया हूँ। राजन्! विचार करो और धर्म को पहचानो।

राजा श्रेणिक की भवस्थिति पक गई थी। उसके मिथ्यात्व का अन्त आ गया और वह सम्यग्दृष्टि हो गया। उसने उन्हीं अनाथी मुनिराज को अपना गुरु बना लिया। जब श्रेणिक लौट कर राजमहल में आये तो उनकी प्रफुल्लता का पोर नहीं था। वह सीधे महारानी चेलना के पास पास पहुंचे और मुस्कराते हुए बोले-'महारानी! जो गुरु तेरे हैं वही गुरु मेरे भी हो गये हैं।

रानी ने कहा–'जब तक मैं स्वयं न देख लूँ, तब तक मानने वाली नहीं हूँ।'

इसके पश्चात् राजा-रानी दल-बल के साथ मुनिराज को वंदना करने गये। रानी आज अत्यन्त प्रसन्न थी। अपने पति को धर्म के पथ पर आरूढ़ हुआ देख कर वह अपने को धन्य मानने लगी। चिरकाल की उसकी अभिलाषा पूरी हुई। उसने मुनिराज से कहा-भगवन् आपकी असीम अनुकम्पा के लिए मैं अतीव आभारी हूँ। आज मेरे घर से मिथ्यात्व गया और मेरे पति धर्मानुरागी बने। आपको कोटिशः धन्यवाद!

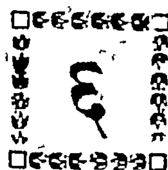
इस घटना के पश्चात् श्रेणिक राजा भगवान् महावीर का बहुत बड़ा भक्त बन गया, यहां तक कि उसने तीर्थंकर गोत्र का भी उपार्जन कर लिया। वह आगामी उत्सर्पिणी काल मे प्रथम तीर्थंकर होगा। इस समय वह नरक में है और इसका कारण उसका दुर्व्यसन है। शिकार के दुर्व्यसन ने श्रेणिक जैसे महान् भक्त को भी नरक गति का पात्र बना दिया तो साधारण जीवों का क्या गिनती है?

यह तो सिर्फ एक शिकार रूप दुर्व्यसन के प्रतिफल का उदाहरण है। पर यह न समझ लीजिए कि अन्य दुर्व्यसन हानिकारक नहीं है। वस्तुतः सभी दुर्व्यसन एक दूसरे से बढ़कर हानिकारक और जीवन को बर्बाद कर देने वाले हैं। जुआ को ही लीजिए जुए की बदौलत पाण्डवों की कैसी दशा हुई? उन्हें राज्य से हाथ धोना पड़ा, जंगलों में भटकना पड़ा, गुप्तवास करके दासवृत्ति अंगीकार करनी पड़ी और द्रौपदी जैसी देवी का भरी सभा मे घोर अपमान होना देखना पड़ा। अन्त में महाभारत की लड़ाई लड़नी-पड़ी जिसमें भारत की समग्र वीरता की आहुति दी गई और जिसके कारण देश इतना दुर्बल हो गया कि सदियों तक क्या सहस्राब्दियों तक भी न सँभल सका।

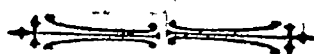
राज नल की कथा भी आपमें से बहुत-से जानते होंगे। उन्हें भी राज्य से वंचित होना पड़ा और अपनी प्राणप्यारी पत्नी को भयानक हिंस्र जंतुओं से परिपूर्ण बन मे एकाकिनी छोड़कर भागना पड़ा। मगर यह तो पुराने दृष्टांत हैं। आज सट्टे के रूप में जो जुआ चल रहा है, उसका नतीजा आये दिन नगरों में सुनने को मिलता है, जिसे आप व्यापारी भली भांति जानते हैं। तेजी-मंदी की एक ही लहर में बड़े-बड़े लखपति और करोड़पति ऐसे बहते हैं कि पता ही नहीं चलता। जो कल तक बड़े ही प्रतिष्ठित साहूकार कहलाते थे, आज दिवालिया कहलाने लगते हैं। यह सब देखते हुए भी बिना परिश्रम किये झटपट धनवान बन जाने की मृग तृष्णा लोगों में घर किये हैं और लोग परेशान हो रहे हैं!

मांस भक्षण, मदिरापान आदि के विषय मे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इनकी बुराइयाँ भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रही हैं। इसी प्रकार चोरी एक बड़ा अवगुण हैं, यह कौन नहीं जानता? लेकिन खेद है कि यह दुर्व्यसन भी आज के सभ्य कहलाने वाले लोगों मे रिश्वत आदि के नाना रूपों में फैला हुआ है। अभिप्राय यह है कि जिसके जीवन में किसी भी प्रकार का दुर्व्यसन पनप जायगा, उसकी बुद्धि नष्ट हो जायगी। उसके ज्ञान का दीपक बुझ जायगा। अतएव अगर आप अपने ज्ञान-दीप को आलोकित रखना चाहते हैं और चाहते हैं कि उसका प्रकाश सर्व व्यापी बन जाय तो प्रभु ऋषभदेव के पथ पर चलो। उनकी शिक्षाओं पर ध्यान दो। उन पर ध्यान देने से ही आप इस और परलोक में आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

ब्यावर
२८-६-१६४७



जीवन--संध्या



स्तुति:—

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निश्शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फ़रमाते है—हे सवज्ञ, सवदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! आपका मुखारविन्द अद्वितीय है। आपके मुख को सुन्दरता बड़े-बड़े देवों, मनुष्यों और राजकुमारों के भी चित्त को हैरान एवं विस्मित कर देती है। आपके मुख को देखकर वे भी मोहित हो जाते है, भौचक्के से रह जाते हैं और चाहते हैं कि

अपलक दृष्टि से इन्हे देखते ही रहे। यह कभी हम से अलग न हों, वे जितना-जितना आपके मुख को देखते हैं, उनका अह्लाद बढ़ता ही जाता है। उस मुख में कुछ ऐसी आकर्षण शक्ति है कि उससे कभी कोई ऊबता नहीं। उसे देखकर किसी को तृप्ति होती नहीं, किन्तु अधिकाधिक देखने की प्यास बढ़ती ही जाती है। ऐसी अद्भुत सुन्दरता से आपका मुख मंडल मण्डित है!

भगवन्! आपके मुखारविन्द के अनोखे सौन्दर्य का वर्णन कहाँ तक किया जाय और किस प्रकार किया जाय? उसके सामने संसार की कोई उपमा पर्याप्त और उचित नही प्रतीत नहीं होती। कविगण किसी के मुख-सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए चन्द्रमा की उपमा दिया करते हैं। हम भी ज़्यादा से ज्यादा यही कह सकते है कि आपका मुख चन्द्रमा के समान है। किन्तु यह उपमा भी ठीक नहीं बैठती। चन्द्रमा के बीच में कलंक है और आपका मुख सर्वथा निष्कलंक है। इसके अतिरिक्त, प्रभात काल में सूर्य का जब उदय हो जाता है तो चन्द्रमा एकदम कान्ति हीन और ढाक के सूखे पत्ते के समान फीका दृष्टिगोचर होने लगता है। किन्तु आपका मुख-मंडल सदैव अलौकिक और असाधारण कान्ति से सम्पन्न बना रहता है। विश्व की कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिसके सामने आपका मुख निष्प्रभ प्रतीत हो। ऐसी स्थिति में आपके मुख का वास्तविक वर्णन करने के लिए उपमा भी नहीं दी जा सकती। वस्तुतः आपका मुख अनुपम है।

इस प्रकार भगवन्! आपके मुख मण्डल की सुषमा असाधारण है। उसका शब्दो द्वारा वर्णन करना अशक्य है। ऐसे अद्भुत मुख सौन्दर्य से सुशोभित भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! मुख की आकृति भी पूर्वार्जित कर्म के उदय से प्राप्त होती है। आकृति, भव्य दीप्ति और सौम्यता के लिए पुण्य की आवश्यकता है। किसी-किसी के मुख का लावण्य कुछ ऐसा अनूठा-सा होता है कि जो एक बार देख ले, वही मुग्ध हो जाय, प्रसन्न हो जाय और आनन्द का अनुभव करने लगे। इसके विपरीत किसी-किसी के मुख-मण्डल पर एक तरह की मनहूसी-सी छाई रहती है। अव्यक्त शोक की छाया पड़ी प्रतीत होती है। उसे देख कर ऐसा आभास होता है, जैसे इसके हृदय में शोक का सागर उमड़ रहा है और उसकी छाया चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रही है। उस पर कभी प्रसन्नता किलोल करती दृष्टिगोचर नहीं होती। चिन्ता ही चिन्ता का अखण्ड साम्राज्य दिखाई पड़ता है।

किन्तु यह पुण्यशालिता का चिह्न नहीं है। पुण्यवानी तो वह है कि देख कर सब प्रसन्न हो जाएँ। लोग ऐसी इच्छा करें कि इसकी सूरत देखते ही रहें। पुण्य की दशा कुछ निराली ही होती है। मुखारविन्द देखा हमने पूज्य उदयसागरजी महाराज का। उनके मुख पर अपूर्व छटा विराजमान रहती थी और वे ऐसे दीख पड़ते थे जैसे सुधर्मा स्वामी हो। वास्तव में उनकी मुखाकृति अत्यन्त भव्य और दिव्य थी।

श्रीमद् दशाश्रुत स्कंध सूत्र में शरीर की भी अतिशय के रूप में गणना की गई है। आचार्य का चेहरा भव्य, दीप्तिमान्, सौम्य, और सुन्दर होना चाहिए। उनकी आंख, नाक, कान, मुँह, हाथ, पैर आदि अवयवों मे कोई कसर या न्यूनता नहीं होनी चाहिए। यह भी आचार्य का एक अतिशय है। आचार्य के शरीर की आकृति यदि सुन्दर होगी तो, उनके ज्ञान आदि गुणों की बात तो पीछे रहेगी, सर्व प्रथम उनके शरीर की रचना को देख कर ही परिषद्

प्रभावित हो जायगी। श्रोताओं के चित्त में उनके प्रति एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हो जायगा। इस प्रकार पुण्यवान् पुरुष को ही सुन्दर सौम्य, प्रशस्त और पवित्र आकृति की प्राप्ति होती है।

भगवान् महावीर के मुख की आकृति की तो बात ही निराली है। कोटि-कोटि चन्द्रमा भी उस सौमता का और कोटि-कोटि दिवाकर भी उस दिव्य दीप्ति का मुकाबिला नहीं कर सकते थे। इसीलिए शास्त्रकारों को कहना पड़ा—

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।

प्रभु चन्द्रमा से नहीं वरन चन्द्रमाओं से भी अधिक निर्मल हैं और सूर्यों से भी अधिक प्रकाशकारी हैं।

यह वर्णन यद्यपि सिद्ध भगवंतों का है, तथापि भगवान् महावीर सशरीर दशा में भी ज्ञानसिद्ध तो थे ही और यह वर्णन उन पर पूरी तरह लागू होता है। पण्डित इन्द्रभूति अपने ज्ञान के अभिमान मे मतवाले होकर भगवान के समवसरण में आये किन्तु ज्यों ही भगवान् की मुखछवि देखी कि गर्व गल गया, हृदय गद्-गद्-सा हो गया और चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न हो गई। वह सोचने लगे—"अहा! क्या ही दिव्य रूप है! कैसी अनूठी आभा दमक रही है भगवान् के आनन पर!" उसी समय वह प्रभावित हो गये।

तो यह सत्य है कि शरीर-सौन्दर्य पुण्य के उदय से प्राप्त होता है। किन्तु वह शाश्वत नहीं—शरीराश्रित है। शरीर क्षण-क्षण में पलटता रहता है। वृद्धावस्था में पहुंचता है तो श्रीहीन हो जाता है। उसकी कान्ति लुप्त और विलुप्त हो जाती है। शरीर कितना भी रूप वाला क्यों न हो, बुढ़ापे में इसकी सुन्दरता काफूर हो जाती है।

श्रीमदाचारांगसूत्र मे कहा है—

'जरामच्चुवसोवणीए णरे सततं मूढे धम्मं नाभिजाणइ ।'

अर्थात्—वृद्धावस्था और मृत्यु के वश में पड़ा हुआ मनुष्य निरन्तर मूढ़ होकर धर्म को नहीं पहचान पाता ।

जब बुढ़ापा आकर शरीर की सुन्दरता के सुसज्जित उद्यान को उजाड देता है तभी मनुष्य की अक्ल ठिकाने आती है । शरीर का दूसरा शत्रु है- मृत्यु ।

जरा कहो, बुढ़ापा कहो, वृद्धत्व कहो, दानापन कहो, सब एक ही बात है । यह पहले आता है और मृत्यु के आने की सूचना देता है । शरीर के प्रत्येक अंग उपांग पर यह अपना कब्जा जमा लेता है । सब में से स्फूर्ति का हरण कर लेता है, शक्ति को निचोड़ कर दूर कर देता है और शिथिलता उत्पन्न कर देता है । विद्वान् लोग इसे अर्धमृत्यु सम बुढ़ापे को कहकर पुकारते हैं । वास्तव में ऐसा कहना उचित ही है, क्योंकि मृत्यु आने पर शरीर सब प्रकार की शक्तियों से हीन हो जाता है तो वृद्धावस्था आने पर भी वह शक्तियां क्षीणप्राय हो जाती है । दूसरी बाते जाने दीजिए, वृद्धावस्था मे शरीर अपने आपको भी सँभालने में असमर्थ हो जाता है ।

कदाचित् पुण्य की पूँजी पल्ले में हो और उसके प्रभाव से परिवार अच्छा मिल जाय, पुत्र, पौत्र, पुत्रवधू आदि सज्जन, कृतज्ञ, विनीत और सेवा भावी मिल जाएँ, तब तो गनीमत रहती है, अन्यथा बुढ़ापा बडा ही कष्टकर बन जाता है । प्राकृतिक उपद्रवो को, जो वृद्धावस्था में उमड-उमड कर आते है और मनुष्य को सताते है, रोकने का सामर्थ्य तो पारिवारिक जनो में क्या, किसी में भी नही होता, किन्तु ऊपर की सेवा-शुश्रूषा करके वे

अवश्य बूढ़े को साता पहुंचाते है। फिर भी बुढ़ापे में वड़े कष्ट भोगने पड़ते है। सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। कानों से सुनाई नही देता और आँखों से दिखाई नहीं देता। हाथ पैर कांपने लगते हैं। मुँह पोपला हो जाता है और लार टपकाता है। विद्रुप दिखाई देता है। नाक से मैल बहने लगता है। उस समय मनुष्य विवश और पराधीन हो जाता है। सेवा करते-करते कुटुम्बी जन भी ऊब जाते है और बहुत-से तो यही कामना करते हैं कि कब इनके सौ वर्ष पूरे हो जाएँ अर्थात् कब इनसे हमे छुटकारा मिल जाय !

मगर यह जीव इतना तृष्णाकुल होता है कि मृत्यु सन्निकट आ जाने पर भी सावधान नहीं होता। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, त्यो त्यों तृष्णा भी बढ़ती जाती है। उसकी ममता आशा और तृष्णा मे तनिक भी कमी नहीं होती। कहा भी है—

अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥

अर्थात्—सारा अंग गल गया है। सिर के सारे बाल सफेद पड़ गये हैं। सब दांत झड़ जाने से मुँह पोपला हो गया है। पैरों में शक्ति न रह जाने के कारण बूढ़ा लाठी के सहारे चल रहा है। फिर भी आशा का पिण्ड नहीं छूटता ! आशा फिर भी हृदय मे बनी हुई है। यही नहीं बल्कि—

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः, दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीर्यते चक्षुषी श्रोत्रे, तृष्णैका तरुणायते ॥

वृद्ध पुरुष के केश काले से सफेद पड़ गये—जीर्ण हो गये। दांत भी जीर्ण हो गये-हिल-हिल कर गिर गये। दोनों नेत्र और दोनो कान भो जीर्ण हो गये। सब कुछ पुराना हो गया। सभी कुछ बदल गया। जवानी समाप्त हो गई। लेकिन इस जीर्ण अवस्था मे भी एक चीज ही ऐसी है जो जीर्ण नहीं हुई है—बल्कि तरुणावस्था को प्राप्त हो रही है। वह क्या है? तृष्णा!

लोग बूढ़े से कहते हैं—बाबाजी, जीवन जाने की तैयारी में है। कुछ परोपकार करो।

बूढ़ा कहता है—पहले बहुत कर लिया।

कहा जाता है—कुछ और करलो। यह सुअवसर फिर कब मिलने वाला है?

बूढ़ा कहता है—अभी क्या हो गया है! तुम क्या मेरा अनिष्ट सोचते हो? मैं अभी जाने वाला नहीं!

तात्पर्य यह है कि बूढ़े को ममता और तृष्णा इतनी बढ़ जाती है कि उसे सत्परामर्श पसंद नहीं आता। धर्म की बात पर वह ध्यान नहीं देता। तृष्णा की तरंगों और लोभ की लहरों में निरन्तर डूबा रहता है।

वास्तव में वृद्धावस्था अतिशय दयनीय है। वह अनेक दुःखों का घर है और मनुष्य उस अवस्था मे बच्चों का खिलौना बन जाता है। कहा है—

(तर्ज-आखिर नार पराई है।)

जब गया बुढ़ापा छाई है, सब निकल गई अकड़ाई है।
यौवन का उतरा है पूर, दांत गिर गया मुख का नूर॥
कोमल काया कुम्हलाई है॥ सब०॥

मुख से देखो लार पड़े है. नैन नासिका दोनों झरे है।
बालों पे सफेदी आई है ॥ सब० ॥
डगमग डगमग चलता चाल, बैठ गये दोनों ही गाल।
कानों से सुनता नाहीं है ॥ सब० ॥
बेटो ने लिया सब धन बांट, दमड़ी नहीं रहने दी गांठ।
फिर दिया उसे छिटकाई है ॥ सब० ॥
नवयुवक मिल हँसी उड़ावे, नही चले जोर बुड्ढा चिल्लावे।
साठी बुद्धि नाठी ठहराई है ॥ सब० ॥
बेटे पोते भी गुर्रावे, क्यो बूढा दुकान पै आवे।
मक्खी भिनक मचाई है ॥ सब० ॥
खाट पड़ा मारे है टसका, कुछ हिमाब रहा नहीं वश का।
अब दरवाजा परवत नाई है ॥ सब० ॥
यौवन के अब इश्क सतावे, मन का मन माहीं पछतावे।
मित्रों ने निगाह चुराई है ॥ सब० ॥
बुड्ढे बैल को कौन खिलावे, सूखा समुद्र हँस उड़ जावे।
स्वारथ की सभी सगाई है ॥ सब० ॥
जोरू वचन साफ सुनावे, राम आपने मौत न आवे।
घर के गये घबराई है ॥ सब० ॥
उन्नीसे साल सनत्तर आवे, पूज्य प्रसादे चौथमल गावे।
कार्तिक में जोड़ बनाई है ॥ सब० ॥

जवानी मे पंक्तियाँ उतरते तो तीन-तीन पंक्तियाँ एक साथ लांघते थे और इसी प्रकार चढ़ते थे। मगर आज यह हालत है कि देहली लांघना भी कठिन हो रहा है। जवानी की वह अकड़ सब निकल गई है। जवानी की पहाड़ी नदी का पूर उतर गया है। जैसे पहाड़ी नदी का पूर थोड़ी देर रहता है और फिर गायब हो जाता है, उसी प्रकार जवानी का जोश भी अल्प काल मे ही समाप्त हो जाता है।

जवानी मे दांतों के न रहने से मुँह की सुन्दरता चली जाती है। शरीर निष्प्रभ, कान्ति हीन और कृश हो जाता है। चमड़ी रूखी और सलदार हो जाता है। यह हालत देख कर बेटे कहते हैं—पिताजी! आपको अब दीखता नहीं है, अतएव तिजोरी की चाबी हमे दे दीजिये। चाबी पाकर लड़के धन का हिस्सा-बाँट कर लेते हैं और बूढ़े बाप को छिटका देते हैं। जब तक तिजोरी की चाबी हाथ नहीं आई थी, तब तक तो मीठे-मीठे बोलते रहे, बूढ़े की आवभगत और खुशामद करते रहे, किन्तु ज्यों ही धन हाथ लगा कि बूढ़े की मिट्टी पलीद करने लगे! कभी दिलबहलावे के लिए बुढ़ा दुकान पर चला जाता है और गादी-तकिये के सहारे टिक कर बैठ जाता है और मुँह से लार टपकने लगती है और मक्खियाँ भिनभिनाने लगती है, तब तो शामत हो आ जाती है। पुत्र और पौत्र उससे अधिक घृणा करने लगते हैं। वे सोचते हैं कि ग्राहक और आड़तिया आएँगे और गदगी देखेंगे तो बुरा समझें! अतएव वे बूढ़े से कहते है—पिताजी, आप बूढ़े हैं। हिम्मत नही है आपकी। आँख से पूरा दिखाई नहीं देता। रास्ते में तांगे या मोटर से टकरा जाएँगे। गाय-भैंस सींग मार देगी। गधा लात मार देगा।

कहीं आप स्वयं ठोकर खा जाएँगे । अच्छा है आप दुकान पर आने का कष्ट न किया करे और घर पर ही रहा करे ।

बूढ़ा सोचता है-बेटे सपूत हैं और मेरे हित की ही बात कहते हैं । वह प्रसन्नता पूर्वक बेटों की बात मान लेता है । घर मे दूसरे मंजिल पर रहने लगता है । मगर उसके घर रहने से पुत्रवधुओं की स्वाधीनता में बाधा पड़ती है । पहले वे आपस में हँस-बोल लेती थीं । घूंघट नहीं निकालना पड़ता था । बूढ़े के घर पर जमे रहने से उनकी आजादी पर पानी फिर गया । जब संध्या हुई और उनके पति आये तो वे उनसे कहने लगीं-बूढ़े को यहां कहां सुला दिया है ! हमें रात-दिन घबराहट होती है । बोलना-चालना भी बंद हो गया है । एक-दो दिन की बात होती तो कोई हानि नहीं थी । परन्तु उनका क्या पता ? पुराने आदमी बड़ी मुश्किल से जाते हैं । इन्हे बाहर के बरामदे में सुला दिया जाय तो अच्छा रहे !

लड़के बूढ़े के पास आते हैं और कहते हैं- पिताजी ! आपसे बड़े-बड़े आदमी मिलना चाहते हैं । वे ऊपर आते है तो औरतें शर्माती हैं । अगर आपकी आज्ञा हो तो आपके बिस्तर बाहर बरामदे में लगा दिया जाय । वहां आपको भी कुछ अधिक-सुविधा रहेगी ।

बूढ़े ने कहा-बेटा, कोई हर्ज नहीं ।

वृद्ध महाशय दुकान और मकान से वंचित होकर बरामदे में विराजमान हुए । घर की बहुओं को सान्त्वना मिली । उनकी जान बची । अब बूढ़े को प्यास लगती है तो वह पोपले मुँह से आवाज देता है, मगर दूसरे मंजिल तक आवाज पहुँच नहीं पाती । उसे कई बार प्यासा ही रह जाना पड़ता है । उसने लड़को से यह बात कही तो उन्होंने एक मटकी और ग्लास की व्यवस्था करदी ।

मगर दिनोंदिन वृद्धावस्था का प्रभाव बढ़ता जाता है और शरीर अशक्त से अशक्ततर होता जाता है। नये-नये उपद्रव उठ खड़े होते हैं। वह लाचार हो जाता है। तब उसकी अधिक उपेक्षा होने लगती है। जो अब काम न आता हो, उस बूढ़े बैल को कौन हरी घास खिलाता है? यही दशा उस वृद्ध की होती है।

संसार मे स्वार्थ की आत्मीयता है। सरोवर जब तक जल से परिपूर्ण रहता है, तब तक पक्षीगण उसके किनारे खड़े वृक्षों पर चहचहाते है जैसे सरोवर की स्तुति कर रहे हो! मगर जब जल सूख जाता है तो उड़ जाते हैं।

बुढ़ा चिल्लाता रहता है, पर उसकी कोई सुनता नहीं। लड़के पास में आते है, बूढ़ा अपनी परेशानी की कथा सुनाता है। वे उसे आश्वासन देते है-अच्छा, यहाँ एक टोकरी लगाये देते है। जब आवश्यकता हो, आप हिला दिया करें। आवाज ऊपर पहुंच जाएगी। बुढ़ा विवश है। वह और कह ही क्या सकता है? कहता है-ठीक है।

डोकरिया नें दिया टोकरिया, काम पड्यां हिलावेरे।
अन्न पानी भीतर से आवे, पड्यो पड्यो पछतावेरे।
जरा आई रे, तू चेत चतुर नर तज घुमराई रे!॥

अब लड़का ने वृद्ध को टोकरी पकड़ा दी। लेकिन उसके पोतों ने वह टोकरी देखी तो समझा-बड़ा अच्छा खिलौना है! वे उसे उठा ले गये। बूढ़े के पास अपनी आवश्यकता की सूचना देने का माध्यम न रहा! क्षीण कठध्वनि से चिल्लाया किन्तु किसी ने उस पर कान न दिया! वह दिन भर भूखा-प्यासा पड़ा रहा। सध्या को लड़के घर आये तो उनकी पत्नियों ने कहा-आज बुढ़ा बोला नहीं, जरा सँभाल तो लो!

लड़कों ने लापरवाही दिखलाते हुए कहा--थके--मांदे आये हैं। सुबह सँभाल लेंगे।

सुबह होने पर वे उसके पास गये और देखते हैं कि बूढ़ा शान्त पड़ा हुआ है! उन्होंने आवाज़ दी, परन्तु उत्तर नहीं मिला। पाँच-पच्चीस आदमी इकट्ठे हो गये। किसी ने आगे बढ़ कर नाड़ी हाथ में ली और देखा कि नब्ज़ ठीक चल रही है। अब बूढ़ा उठा और झल्ला कर बोला मैं तो भूखा-प्यासा पड़ा हूँ। जबर्दस्ती मुझे मौत के मुँह में भेजा जा रहा है। कोई टोकरिया भी उठा कर ले गया!

लड़कों ने अपने लड़कों को बुला कर पूछा तो पता चला कि वे सचमुच ही टोकरिया उठा ले गये हैं। तब एक ने अपने लड़के को डाट-फटकार कर कहा-क्यों ले गया रे टोकरिया!

बच्चे ने कहा क्यों नहीं ले जाएँगे?

पिता—तुम बुरी तरह मार खाओगे।

बच्चा—तो हम टोकरिया नहीं देंगे!

पिता—नहीं दोगे?

बच्चा—हाँ, नहीं देंगे!

पिता—आखिर क्या करोगे!

बच्चा—हम उसे सँभाल कर, हिफाज़त से रक्खेंगे। कभी आप भी बूढ़े होंगे और बाबा की तरह आपको भी टोकरी की आवश्यकता होगी। हम उस समय आपको यह टोकरी दे देंगे कि आपको कोई कष्ट न होने पावे!

पिता—बेईमान, हमारे लिए टोकरी सँभाल रक्खी है ?

दूसरे लोग ठहाका मार कर हँसने लगे और कहने लगे—बच्चा सच है। तुम्हारी भी यही दशा होगी। जैसे तुम अपने पिता के साथ व्यवहार करते हो, उसी प्रकार तुम्हारे लड़के तुम्हारे साथ व्यवहार करेंगे। आखिर तुम्हीं तो इन्हें सबक सिखा रहे हो। तुम चाहो तो चोरी-चारी से अपने पिता की सेवा कर सकते हो और बच्चों के सामने सुन्दर आदर्श उपस्थित कर सकते हो। बच्चों ने तुम्हें समय रहते सावधान कर दिया है। अगर स्वयं टोकरिया नहीं पकड़नी हैं तो बच्चों से शिक्षा ग्रहण करो।

भाइयो! जब सगे बेटे होने पर यह हाल होता है तो गोद का बेटा क्या निहाल कर सकता है। गोद लेते समय लड़के से मुचलका लिखा जाता है कि वह वृद्धावस्था में सेवा करेगा और आज्ञा का पालन करेगा तो सम्पत्ति का अधिकारी होगा, अन्यथा निकाल दिया जायगा। मगर एक सच्ची घटना सुनो—

मुन्नालालजी नामक एक श्रावक थे। अग्रवाल जाति के थे। उनके पिता ने संयम ग्रहण किया था। वह बत्तीसों शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने अपने लडके को और दूसरे कई श्रावकों को बत्तीसों शास्त्रों का ज्ञान कराया था। आज भी उनसे शास्त्र सीखे हुए श्रावक मौजूद हैं।

उनके पास एक लाख की सम्पत्ति थी, परन्तु लडका नहीं था। उनके यहां गोद का एक लड़का आया। उन्होंने अपने उत्तराधिकारपत्र में उल्लेख किया कि—यदि यह लड़का बराबर धर्म पर चलता रहेगा और शास्त्राभ्यास तथा मुखपत्ती बाँधना आदि क्रियाएं करता रहेगा तो यह मेरे धन का अधिकारी होगा। अन्यथा इस सम्पत्ति का स्वामी सारा स्थानकवासी समाज है।

आज देखा जाता है कि कई गोद के लड़के मिथ्यात्वी हो जाते हैं। वृद्धावस्था मे गोद लेने वाले उनका दुखड़ा रोते हैं, लेकिन कर कुछ नहीं सकते।

भाइयो ! मेरे कहने का आशय यह न समझ लें कि गोद के सभी लड़के ऐसे ही होते है। कई तो औरस पुत्र से भी अधिक सेवापरायण होते हैं। वास्तव मे सेवाभाव का आधार विवेकशीलता और कर्तव्यपरायणता है। जिसमें सौजन्य है, सुसंस्कार हैं और जो कर्त्तव्य को पहचाने है तथा जिनमें कृतज्ञता का भाव विद्यमान है, वे चाहे दत्तक पुत्र हो या औरस, अवश्य अपने पिता की सेवा करेंगे। जिसमें यह गुण न होंगे, जो कृतघ्न, कर्त्तव्यविमुख कुसंस्कारी और अधर्मी होगा, वह माता पिता की सेवा को भार समझ कर उससे बचने का प्रयत्न करेगा।

माता-पिता का पुत्र पर अमित उपकार है। पुत्र को जो कुछ भी इस जीवन का आधारभूत तत्त्व मिला है, माता-पिता से ही मिला है। उसका शरीर ही माता-पिता की कृपा का फल है। कुछ अंग माता के और कुछ अंग पिता के प्राप्त करने पर ही पुत्र के शरीर का निर्माण होता है। माता गर्भ में उसका पोषण करती है जन्म होने के पश्चात् अनेकानेक कष्ट सहन करके माता-पिता अपने पुत्र का पालन और संरक्षण करते हैं। उसे खिला-पिला कर और पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाते हैं। तत्पश्चात् उसका विवाह करके उसे सुखी करते हैं। यह सब बातें ध्यान में रख कर कवि कहता है—

यं माता-पितरौ क्लेशं, सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या, कर्त्तुं वर्षशतैरपि॥

अर्थात्—माता-पिता पुत्र के लिए जितने कष्ट सहन करते हैं, उसका बदला सौ वर्ष मे भी चुकाया नहीं जा सकता।

स्थानांगसूत्र मे भी यह बतलाया गया है कि माता और पिता के उपकार पुत्र पर इतने अधिक है कि उनकी जीवन पर्यन्त शारीरिक सेवा की जाय तो भी पुत्र उऋण नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में पुत्र का यह परम कर्त्तव्य है कि विनय और आदर के साथ उनकी सेवा करे और सब प्रकार से उन्हे सुखी बनाने का तन मन और धन से प्रयत्न करे।

सुपुत्रो यः पितुर्मातुर्भूरिभक्तिसुधारसैः।
निर्वापयति संतापं, शेषास्तु कृमि कीटकाः॥

अर्थात्—अपनी सदैव की जाने वाली भक्ति रूपी अमृतरस से जो पुत्र माता-पिता को सुखी बनाता है—उनके संताप को शांत करता है, वास्तव में वही पुत्र कहलाने का अधिकारी है। जो माता-पिता की सेवा नहीं करता, उन्हें संतोष नहीं पहुंचाता, वह मनुष्य की आकृति में कीड़ा-मकोड़ा है। उसमें इंसानियत नहीं है!

वास्तव में माता-पिता की सेवा करना गृहस्थ के कर्त्तव्य का प्रधान भाग है। गृहस्थावस्था मे माता-पिता की देवता के समान भक्ति करनी चाहिए। प्राचीन भारत की संस्कृति यही शिक्षा देती है। वैदिक साहित्य में भी कहा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।

माता देवता है और पिता देवता है। जो इन प्रत्यक्ष और साक्षात् उपकारी देवताओ के प्रति कृतज्ञ न होगा और अपने कर्त्तव्य का पालन न करेगा, उससे उच्चतर लोकोत्तर धर्म के पालन की क्या आशा रखी जा सकती है? अतएव ठीक ही कहा है-

मातरं पितरं चैव, साक्षात् प्रत्यक्ष देवताम् ।
मत्वा गृही निषेवेत, सदा सर्व प्रयत्नतः ॥

अर्थात्-माता और पिता साक्षात् और प्रत्यक्ष देवता है । ऐसा समझ कर गृहस्थ को उनकी सेवा करनी चाहिए। सेवा करने मे किसी प्रकार की कसर नहीं रखना चाहिए। अपनी समस्त शक्तियाँ उनकी सेवा के लिए समर्पित करनी चाहिए।

भाइयो ! भारत की यही सात्विक सस्कृति है । भारतवर्ष ने इस प्रकार का उदात्त उपदेश मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत किया है । अगर आपको अपने देश की सस्कृति से प्रीति है और अपने जीवन को उत्तम बनाने की अभिलाषा है, तो आपको इन विचारो का चिन्तन, मनन और सेवन करना पड़ेगा । परन्तु खेद है कि आज कल पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से लोगो के दिमाग दूषित हो गये हैं और वे माता-पिता के प्रति भी उदासीन भाव रखते है । किन्तु ऐसा करने वालो के जीवन मे कभी सच्ची शान्ति नहीं हो सकती । जो आज जवानी के जोश मे अपने वृद्ध माता-पिता की अवहेलना करता है, उपेक्षा करता है और उन्हे अपने सुख मे बाधक समझता है, उसे स्मरण करना चाहिए कि वह दिन दूर नहीं जब वह स्वय वृद्धावस्था मे प्रवेश करेगा । उस समय वह क्या इच्छा करेगा ? यह सोचकर माता-पिता की प्रेम पूर्वक सेवा करना ही सुपुत्र का कर्त्तव्य है ।

माता-पिता बुढ़ापे की देनस्वरुप अनेक दुःख यों ही भोगते हैं, फिर ऊपर से भी अगर उन्हे कष्ट हो तो उनकी आत्मा को कितना संताप न पहुंचेगा ! शारीरिक वेदना के साथ उन्हे मनोवेदना भी होगी और जीवन उनके लिए दुस्सह भार बन जाएगा ।

वे व्याकुल हो उठेंगे। अतएव मानवीय सामर्थ्य के अनुसार इनका जितना दुःख सन्तान कम कर सकती है, उत ा उसे करना हा चाहिए।

बुढ़ापा चाहे इष्ट हो या अनिष्ट, अनिवार्य है। जो भर जवानी या बाल्यावस्था में ही परलोक नहीं सिधार जाता, उसे बुढ़ापा आये विना रह नहीं सकता। किसी का यौवन सदा स्थिर रहने वाला नहा है और बुढ़ापे में मनुष्य इतना अशक्त हो जाता है कि कोई महत्त्वपूर्ण कार्य बनने वाला नहा है, अतएव परलोक का सुधार करने के लिए जितना कर सकते हो, वह करलो। बुढ़ापे में करने की आशा न रक्खो।

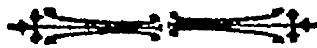
भाइयो! बुढ़ापे में तन को सँभालना भी कठिन हो जाता है तो धर्म की विशिष्ट आराधना कैसे हो सकती है? इसी कारण भगवान् महावीर स्वामी ने फर्माया है कि जरा जब घेर लेगी जीवन की संध्या आजाएगी तो धर्माचरण नहीं बनेगा। अतएव हे जीव! तू प्रमाद में न पड़ कर अपनी अपनी शक्ति भर धर्म का आचरण कर। बाद मे तो पछतावा ही पछतावा शेष रह जाएगा।

ऐसा समझ कर जो मनुष्य आत्महित मे उद्यत होंगे, वे अनन्त आनन्द के भागी होंगे।

ब्यावर }
२५-६-१६४७



यह उदारता !



स्तुतिः—

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे भगवान् ऋषभदेव ! आपकी महिमा अनुपम है । उस महिमा की उपमा दी जाय तो किससे दी जाय ? इस संसार में अधिक से अधिक तेजोमय यदि कोई वस्तु है तो वह सूर्य है । तो कहे कि प्रभो ! आप सूर्य के समान हैं ?

मगर कहाँ आप और कहाँ सूर्य ! दोनों मे बहुत अन्तर है। सूर्य उदित होता है और फिर अस्त भी हो जाता है। किन्तु आप तो कभी अस्त होते ही नहीं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी राहु सूर्य को ग्रस लेता है, ग्रहण लग जाता है अर्थात् राहु का विमान बीच में आ जाता है तो सूर्य की कान्ति दबने लगती है। मगर आपको ग्रहण लगने का काम नहीं। एक नहीं, हजारों राहु भी आपके तेज को रोक नहीं सकते। तीसरी बात यह है कि सूर्य को बादल भी आच्छादित कर देते हैं। किन्तु भगवान् ! आपके अप्रतिहत ज्ञान-दर्शनमय अनन्त प्रकाश को आच्छादित करने वाला कोई पदार्थ नहीं। अतएव हे मुनियों के नाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़ कर है।

ऐसे सूर्य के समान भगवान् ऋषभदेवजी है। उन्हीं को मेरा बारंबार नमस्कार हो।

भगवान् नाभिनन्दन ऋषभदेव को मुनियों मे सूर्य के समान भी कहा गया है। यह सुन कर आप शायद सोचने लगें कि क्या भगवान् मुनियों मे ही सूर्य है ? श्रावकों में सूर्य के समान नहीं है ? इसका समाधान यह है कि भगवान् जब मुनियों में भी सूर्य के सदृश है तो श्रावकों में सूर्य के सदृश तो हो ही गये, किन्तु ऐसा कहना उपयुक्त नहीं है। भगवान् के लिए यह हीनोपमा होगी। करोड़पति लखपति तो होता ही है। जो करोड़पति है, उसे शतपति, सहस्रपति या लखपति कहना, उसके महत्त्व को कम करना है।

अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा मुनियों का हृदय विशेष निर्मल होता है, स्वच्छ होता है, पवित्र और शुद्ध होता है। भगवान् की निर्मलता और पवित्रता उनसे भी अनन्त गुणी अधिक है। श्रावकों मे मुनियों की अपेक्षा भी कम निर्मलता एवं पवित्रता होती है। इस

कारण भगवान् को मुनियो में सूर्य के समान कहना ही उचित और युक्तिसंगत है।

भाइयो ! सूर्य अपने प्रखर प्रकाश से जगत् को आलोकित करता है और रजनी में साम्राज्य जमा कर फैले अन्धकार का विनाश करता है। सूर्य से प्राणी मात्र को पोषण मिलता है। अन्य प्रकारों से भी सूर्य संसार के लिए महान् उपकारी हैं। इसी प्रकार भगवान् अपने लोकोत्तर ज्ञान-दर्शन से जगत् को प्रकाश देने वाले हैं। सूर्य द्रव्य प्रकाश ही देता है, मगर भगवान् भावप्रकाश देते हैं। भावप्रकाश के अभाव मे द्रव्य प्रकाश कार्यकारी नही होता, अतएव भावप्रकाश की महत्ता बहुत अधिक है कोटि-कोटि सूर्य चमकने लगें तो भी आत्मा के अज्ञान-अन्धकार को निवारण करने में वे समर्थ नही हो सकते। परन्तु भगवान् अनादिकालीन अज्ञान को भी अपनी प्रखरतर ज्ञान रश्मियो द्वारा दूर कर देते है। ज्ञानावरण कर्म के सर्वथा क्षय से उनका सहज स्वाभाविक अनन्त ज्ञान प्रकट हो गया है।

प्रत्येक आत्मा ज्ञानमय है और अनन्तज्ञान उसमें स्वभाव से ही विद्यमान है। मगर ज्ञानावरण कर्म उसको आच्छादित किये रहता है। जिनके ज्ञानावरण कर्म का पर्दा अधिक सघन होता है उन्हे कम ज्ञान होता है, और जो उस पर्दे को कम कर देते हैं, उन्हें ज्ञान अधिक होता है। जिनकी आत्मा से वह पर्दा पूरी तरह हट जाता है, उनमें ज्ञान की परिपूर्ण मात्रा प्राप्त हो जाती है।

केवली भगवान् के पश्चात् गणधर महाराज का दर्जा है। भगवान् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का ही कथन करते हैं। किन्तु प्रज्ञातिशय से सम्पन्न गणधर महाराजों को यह तीन शब्द सुन कर ही चौदह पूर्वों का ज्ञान हो जाता है और अनेक लब्धियाँ प्रकट हो

जाती हैं। कहिए, उन महापुरुषों के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम कितना जबदस्त था ? पूर्वों का परिमाण अत्यन्त विशाल होता है। तीन शब्दों से इतना विशाल ज्ञान उत्पन्न हो जाना साधारण जनों के लिए अद्भुत सी बात है। किन्तु जो आत्मिक शक्ति को पहचानते हैं, उन्हें कोई आश्चर्य नहीं होता।

भाइयो ! कितनी जबर्दस्त बात है ! एक अन्तमुहूर्त्त में ही उन्हे चौदह पूर्वों का ज्ञान हो गया। उनकी बुद्धि सागर के समान अपार और अथाह थी।

ज्ञान की प्राप्ति बहुत कुछ पूर्वजन्म के संस्कारों पर निर्भर है। अगर जीव अन्तराय तोड़ कर आया हो इस भव मे उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, अन्यथा नहा। अगर पूर्व भव में ज्ञान की आशातना न की हो, ज्ञानोपार्जन मे दूसरों को सहायता प्रदान की हो, ज्ञान और ज्ञानो को लांछन न लगाया हो, शास्त्रों की अवज्ञा न की हो और ज्ञान तथा ज्ञानी के प्रति सन्मान की भावना रक्खी हो तो इस जन्म मे बुद्धि निर्मल होती है और अल्प आयास से भी अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

इसके विपरीत, यदि कोई जीव ज्ञान की आशातना करके आया हो, शास्त्रों का मनमाना उलटा-सीधा अर्थ करके आया हो; ज्ञानोपार्जन के लिए दान देने वाले को रोक कर या उसे निरुत्साहित करके आया हो, मुझे कुछ देना पड़ेगा, ऐसा सोच कर ज्ञानशाला में कोई त्रुटि निकाल कर उसे बन्द करके या करवा करके आया हो, ज्ञान और ज्ञानी की निन्दा करके आया हो, तो उसका यह जन्म अज्ञान पूर्ण होता है। वह अनपढ और अज्ञान रहता है। उसे विद्या नहीं आती। एक बार बाँधा हुआ ज्ञानावरण कर्म तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक ज्ञानप्राप्ति मे बाधक बन सकता है।

ज्ञानवान् जनों का अवर्णवाद करने से इस कर्म का बंध पड़ जाता है। स्वच्छ हृदय से कोई बात कह देना अलग है, किन्तु नीयत बुरी नहीं होनी चाहिए। किसी विधवा को विधवा कह देना पाप नहीं, किन्तु द्वेष से, उसे पीड़ा पहुंचाने की मनोभावना से ऐसा कहना पाप है। हृदय स्वच्छ होने पर भी वाणी में विवेक रहना आवश्यक है। विवेकविहीन वाणी विमल अन्तःकरण होने पर भी दूसरे के लिए दुःखजनक हो सकती है।

हे प्राणी ! यदि तू ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, अगर तेरी अभिलाषा आत्मा को ज्ञान की जाज्वल्यमान ज्योति से जगमगाने की है, तो तू सामायिक प्रतिक्रमण की या दूसरी पढाई जो करना चाहता है, उसमें बाधा मत डाल। पूर्व जन्म के शुभ कर्मोदय से तुझे यहाँ धन की प्राप्ति हो गई है तो उसका सदुपयोग कर। उस धन को ज्ञान--प्रचार में लगा। ऐसे प्रयत्न कर कि जिज्ञासु जनता वीतराग की वाणी का रहस्य समझे, उसकी ओर आकर्षित हो, उसके अज्ञान का नाश हो। ज्ञान प्रचार में सब तरह से सहायक बन। ज्ञान का दान कर। ऐसा करने से कभी मुख न मोड़। अगर इस जन्म में लक्ष्मी का सदुपयोग न करेगा तो फिर कब करेगा ? यह लक्ष्मी या तो तेरे जीते जी ही तुझे छोड़कर चली जायगी अथवा किसी समय तू इसे छोड़ कर जायगा। जब यह निश्चित है और इसमें तनिक भी संदेह नहीं है तो फिर क्यों सोच-विचार करता है ?

हे आत्मन् ! देखो वर्त्तमान काल को ही देखो। आज कितना हृदय द्रावक दृश्य दिखाई दे रहा है ! पंजाब के निवासियों की क्या हालत हो रही है ? जिनके पास बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थी और लाखों की सम्पत्ति थी, उन्हें आज रहने को झौंपड़ी भी नहीं मिल रही है और दाने-दाने को मुँहताज होना पड़ रहा है। इस

प्रत्यक्ष दृश्य को देखकर भी आप न चेतोगे तो फिर कब चेतोगे? भाग्यवश यह शुभ संयोग मिल गया है तो इससे जो पुण्य कमाना हो सो कमा लो। संकोच मत करो। परिणामों को मत गिराओ। आखिर फिर पछताना ही शेष रह जायगा।

भाइयो! परिणामों की शुद्धि होना बहुत कठिन है। समय पर जो बन जाता है सो बन जाता है। लाभ ले लिया सो ले लिया। अवस्था सदा एक-सी रहने वाली नही है। अपने हाथ से दान-पुण्य कर लोगे तो कर लोगे। फिर तो फिर ही है। एक बार अवसर चूकने पर फिर कौन जानता है कि ऐसा अवसर मिलेगा अथवा नहीं मिलेगा?

उदाहरणार्थ—आज चतुर्दशी है। जिसने उपवास करने का विचार कर लिया, उसका उपवास हो जायगा। प्रमाद और आलस्य में पड़े रहने से कैसे हो जायगा? कार्तिक मास में फ़सल काटने की इच्छा रखने वाले को आषाढ़ मे बीज बोना पड़ता है। जिसने बोया होगा वही काटेगा। पूर्व पुण्योदय से प्राप्त इस सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करना चाहते हो तो अभी से बीज बोना आरम्भ कर देना चाहिए ऐसा करेगा तो आगे फसल काटने को तैयार मिल जायगी।

प्राणी! विचार कर। पूर्व जन्म में दान नहीं दिया होता, तपस्या न की होती और धर्म में श्रद्धा न रखी होती, तो क्या यह जोगवाई—यह सुअवसर—मिलना सभव था? कदापि नहीं। तो अवश्य मानना पड़ेगा कि यह सब कुछ जोगवाई जो मिली है, सुख की सामग्री मिली है, इष्ट वस्तुओं का संयोग हुआ है, सो पूर्व जन्म में दान देने आदि शुभ कर्मों का ही फल है। अगर ऐसा न माना जाय तो सोचना चाहिए कि संसार में जो अनगिनती गरीब,

दरिद्र और असभ्य लोग हैं, वे सभी मालदार क्यों नहीं हो गये ! कदाचित् कहा जाय कि पैसा मिहनत से मिलता है और पुण्य से नहीं मिलता; तो यह कहना उचित नहीं। समान मिहनत करने वाले दो मनुष्यों में से एक लाभ उठाता है और दूसरा हानि उठता है। यही नहीं, वरन् स्वामी और सेवक में से सेवक अधिक श्रम करता है, स्वामी कम, फिर भी स्वामी को अधिक लाभ और सेवक को नगण्य-सा लाभ होता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि परिश्रम धनोपार्जन का बाह्य कारण भले हो, मगर कारण तो पुण्य ही है। यही कारण है कि अत्यधिक श्रम करने वाले भी पुण्य के अभाव में फल प्राप्त नहीं कर पाते, जब कि पुण्यवान् जीव अल्प परिश्रम करके भी अधिक पा लेते हैं।

अरे जीव ! जिसके प्रताप से यह सब कुछ, ऋद्धि पाई है, क्या उसी दान को निरादर करेगा ? क्या उस शील और तपस्या का भी निरादर करेगा ? अगर निरादर किया तो याद रखना, पूंजी पुण्य की पूंजी, समाप्त हो जायगी और दिवालिया बन जाएगा ! कहा है:—

दया धर्म के रे प्रभाव से कोटिवान भयो,
अब नहीं साधुन की संगति सुहात है,
रात-दिन मनसूबो करे धन बधावा को,
आयु घटि जात ताकी चित्त में न बात है,
हीरन को छोड़ि छोड़ि काचन को नग लेत,
आप ही के हाथ देखो कैसा खोटा खात है,
रिखजी कहत हुंडी पर की सिकार देत,
अपनी हुंडी को माल रीतो खोया जात है ॥

हे प्राणी ! तू दयाधर्म के प्रताप से यहाँ आकर करोड़पति बन गया है, किन्तु जिन्होंने करोड़पति बनने का रास्ता बतलाया था, उन्हें ही भूल गया ! अब उन्हीं के दर्शन करने या व्याख्यान सुनने को कोई कहता है तो उन्हे रूखा सा उत्तर देता है कि हमारे पास समय नहीं है ! रात-दिन धन को बढ़ाने का ही मंसूबा किया करता है ! लखपति होने पर करोड़पति करोड़पति होने पर अरब-पति और अरबपति होने पर खरबपति और इसी प्रकार राजा से महाराजा बन जाने का विचार करता है ! बनने-बनने के लिए ही अड़गे किया करता है ! मगर याद रख। पूर्वजन्म में तुझे हमारे भाई-बन्धु मिले थे और उन्होंने तुझे धर्म के रास्ते लगा दिया था। उसी के प्रताप से तू यहाँ बड़ा सेठ बन गया है। अब तुझे उन्ही साधुओ की सगति अच्छी नहीं लगती !

चलो, जाने दो। अब क्या विचार है ? आगे क्या बनना है ? तेरे सामने दोनों मार्ग हैं। चाहे तो सुख के मार्ग पर चल सकता है। जिन्होंने ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मों का बंध किया है, सद्‌गुरु का उपदेश रुचिकर नहीं लगाता। कहा भी है।

कहे सद्‌गुरु बारबार मानव ! सुन लीजे।
धर्म जगत में सार मानव ! सुन लीजे ॥ टेर ॥

हे मानव ! कान लगा कर यह बात सुन ले। तुझे इस समय जो प्राप्त हुआ है, उस सब का श्रेय सद्‌गुरु को है, जिन्होंने तुझे रास्ता बतलाया था और तूने तदनुसार धर्म किया था। उसी के प्रताप से तुझे सब सुख-साधन मिले हैं। अब फिर मुनि तुझे सुना रहे है। तू सुन ले—सार वस्तु केवल धर्म है यही असली चीज है।

हे भव्य, जरा ध्यान लगा। मुनिराज उपदेश दे रहे है। यहाँ यह दृष्टान्त घटित होता है:-

वणिक रहे एक शहर में, है दीन दुःखी बेकार।
मानव सुन लीजे ॥

एक शहर मे एक वणिक् रहता था, किन्तु उसकी अवस्था अत्यन्त दुःखपूर्ण था। फटी पगडी, फटे कपड़े और फटी हुई धोती! पैर में जूतियाँ थी ही नही। उसकी पत्नी का भी यही हाल था। उसके तन के वसन भी चीथड़े-चीथड़े हो रहे थे। घर में नाम मात्र को पीतल के बरतन थे और वे भी ऐसे जान पड़ते थे कि बाबा आदम के जमाने के हो! टूटे-फूटे थे। ऐसी दीन दशा में वह अपना निर्वाह करता था। वह वणिक् दिन रात विचार किया करता था–हे आत्मा! क्या तुझे भी कभी सुख मिलेगा? या इसी मुसीबत में जिंदगी काटनी पड़ेगी किसी के शरीर पर नये कपड़े देखता तो सोचता-क्या मुझे भी कभी ऐसे वस्त्र और अच्छा खाना मयस्सर होगा? उसकी पत्नी जब किसी सेठानी के शरीर को लदा देखती तो हाय सांस लेकर रह जाती और मन ही मन कहती–कभी मैं सोने के गोखरू नहीं पा सकूंगी? वह मन मसोस कर रह जाती और अपने भाग्य को कोसने लगती।

एक बार संयोगवशात् उस नगर मे मुनिराज पधारे। बहुत-से लोग उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने जा रहे थे। उन्हें देख--वह दरिद्र वणिक् भी साथ हो लिया। लोग कहते जा रहे थे कि--आज का दिन धन्य है जो मुनिराजो के पावन चरणों से यह नगर पवित्र हुआ। हम भी भाग्यशाली है कि ऐसे महात्माओ के दर्शन का सुयोग पा सके। सचमुच आज हमारा दारिद्र्य भाग गया। अब हमारे भाग्य खुल जाएँगे। कहा है—

साधु नमे एता टले, काल जाल जम चोट।
सीस नमायाँ झर पड़े, लाख पापन की पोट ॥

गुरु के दर्शन से काल जाल आदि सब विघ्न दूर हो जाते हैं। यहाँ तक कि यमदूतों की चोट से भी बचाव हो जाता है, क्योंकि ऐसे जीव को नरक में नहीं जाना पड़ता। और जब गुरु के चरणों में भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाया जाता है तो मस्तक से समस्त पापों की पोटली नीचे गिर जाती है। सिर झुकाने पर मस्तक पर रक्खी हुई पोटली का गिर पड़ना स्वाभाविक ही है। मस्तक नम्र करना अपना भार दूर करना है। इसके विरुद्ध, जो लोग गुरु के समक्ष अकड़ कर खड़े रहते हैं, उनके सिर पर पापों की पोटली रक्खी ही रह जाएगी। वह नीचे नहीं पड़ेगी।

दरिद्र वणिक् ने भी गुरु के चरणों मे मस्तक झुकाया। गुरु महाराज का प्रशमपरिपूर्ण मुखमंडल और विरक्तिभाव देख कर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अनायास ही उसके अन्तस्तल मे गुरु महाराज के प्रति प्रगाढ़ आस्था का भाव उत्पन्न हो गया। तब उसने क्या किया—

नित उठ दर्शन मुनिवर का, करना निश्चय ली धार,
मानव ! सुन लीजे ॥

उस वणिक् ने उसी दिन यह प्रतिज्ञा धारण कर ली कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठ कर प्रथम मै गुरु–दर्शन करूँगा, चाहे मुझे हजारों ही काम क्यों न हों !

कर्म अंतराय जो टूटे तो, करना महा उपकार,
मानव ! सुन लीजे।

दूसरी प्रतिज्ञा उसने यह धारण की कि अगर मेरा अन्तराय कर्म नष्ट होगा और मुझे दो पैसे की प्राप्ति होगी तो मैं अवश्य ही परोपकार करूँगा। उसने सोचा मैंने आषाढ़ मे बाज नही बोया तो कार्तिक में फसल नहीं मिली, किन्तु अब तो मुझे सावधान हो ही जाना चाहिए। अब बोऊँगा तो आगे पा लूँगा।

उसी दिन से दरिद्र वणिक् प्रथम गुरुदर्शन करता और फिर बाज़ार में जाकर अपना धंधा करता था।

जावे नित्य बाजार में, होवे लाभ अपार,
मानव ! सुन लीजे।

वणिक् दर्शन करके और श्रद्धापूर्वक मांगलिकवाणी सुन कर बाजार जाता। वह जो भी धंधा करता, उसमें उसे चौगुना और अठगुना लाभ होने लगा। अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होने लगा। इधर गुरु महाराज का निमित्त मिल गया और उधर अन्तराय कर्म का क्षयोपशम बढ़ने लगा। ऐसा ही समझिए जैसे इधर ज्वर टूटने का समय आया और वैद्यराजजी को अच्छी दवा का संयोग मिल गया। यही स्थिति वणिक् की हुई। उसे लाभ पर लाभ होने लगा। जैसे-जैसे उसे लाभ होने लगा, वैसे ही वैसे उसकी दानप्रवृत्ति भी बढ़ने लगी। रास्ते मे आते-आते प्रतिदिन दस-पाँच का दान तो कर ही डालता था।

किसी समय का अतिशय दरिद्र वह वणिक् हजारों और फिर लाखो का स्वामी हो गया। अब पत्नी के लिए सोने के आभूषण भी बन गये और मोतियों का हार भी खरीद लिया गया। सेठानी के चेहरे पर रौनक आ गई। उस समय एक तैयार हवेली बिकी जो उसने खरीद ली, जिसमे सुविधा की सभी चीजें

मौजूद थी। बिना आरंभ के सीधी चीज़ हाथ आ गई। सेठ-सेठानी उसमें जाकर रहने लगे और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। इतना सब हो जाने पर भी उसने अपनी सर्व प्रथम मुनि-दर्शन करने की प्रतिज्ञा नहीं त्यागी। यही नहीं, उसने अब व्याख्यान सुने बिना भोजन न करने की भी प्रतिज्ञा कर ली। वह व्याख्यान श्रवण आदि के पश्चात् ही व्यापार की ओर ध्यान देता था। प्रतिदिन सामायिक प्रतिक्रमण आदि धर्मक्रिया करता था। धर्म मे उसकी ऐसी आस्था थी!

लोग कभी-कभी मुनिराज के समक्ष कहते-महाराज! यह श्रावक हमारे देखते-देखते इतना बढ़ गया है! तब मुनिराज कहते-'इसकी सम्पत्ति बढ़ी तो धर्म के ही काम आएगी।' इस प्रकार उस धर्मी के लिए मुनिराज के मुख से शुभ वचन ही निकलते थे। धीरे-धीरे उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि राजा भी उसे अपने दरबार मे बुलाने लगा।

एक बार राजा ने दरबार मे बात छेड़ दी-इस नगर में कोई नगरसेठ नहीं है। किसी सुयोग्य श्रेष्ठी को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए। बतलाओ कौन इस पद के योग्य है? मंत्री ने कहा-अमुक सेठ नया ही नया धनवान् बना है। वह उदारहृदय, दयालु, परोपकारपरायण और धर्मनिष्ठ है। जो भी उसके पास पहुंचता है; तन, मन और धन से वह उसकी सहायता करता है। वही इस पद के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

सब सभासदो ने मंत्री की बात का समर्थन किया। तत्पश्चात् वह नगरसेठ बना दिया गया—

नगरसेठ को पद लियो, फिर दे राजा सत्कार,
है थांको कांई विचार मानव ! सुन लीजो ।

कहिए, आप लोगों का क्या विचार है ? कुछ समझ मे आया या नहीं ? राजा ने आदर-सत्कार के साथ उसे नगर सेठ के पद पर अभिषिक्त किया । उस अवसर पर सेठ ने लाखों रुपये परोपकार मे व्यय कर दिये ।

मुनीम ने कहा-सेठ साहब ! एक साथ इतना अधिक खर्च करना उचित नहीं है ।

सेठ ने जरा भी विचार किये बिना उत्तर दिया-मैं एक दिन दरिद्र था । धर्म के प्रताप से यह सम्पत्ति मिली है । अगर धर्म-कार्य मे दान देते देते यह समाप्त भी हो जाय तो भी मुझे दु.ख न होगा । मेरे पास था ही क्या कि मेरा कुछ चला जायगा ! जब मेरे पास धन आया है तो इसका सदुपयोग क्यों न कर लूँ । अन्त में सारा अनिच्छापूर्वक एक साथ त्यागने की अपेक्षा स्वेच्छा पूर्वक थोड़ा-थोड़ा त्याग करता चलूँ तो लाभ ही लाभ होगा ।

सेठ का तर्क अकाट्य था । इससे उसकी विवेकशीलता ही प्रकट होती थी । यह उत्तर सुन कर मुनीम भी चकित रह गया !

इन्दौर मे एक सेठ हैं, जिन्हे सब लोग इन्द्र राजा कहते है । ये धर्म-कार्य मे सदा अग्रसर रहते है । दीक्षा दिलवानी हो तो सबसे आगे आते हैं, याने समस्त व्यय वही अपनी ओर से करते हैं । वह पहले साधारण नौकरी करते थे । भाग्य जागा तो लाखों के धनी हो गये । वह कहा करते हैं-मैं साधारण स्थिति का गृहस्थ था और अब खूब आनन्द-भोग कर रहा हूं । कदाचित् फिर भाग्य

चक्र घूम जाय और फिर वही नौकरी करने की नौबत आ जाय तो धर्म की यह लूट कैसे लूट सकूँगा ? फिर यह अवसर नहीं मिलने का। अतएव जब तक अवसर मिला हुआ है, उससे लाभ उठा लेना चाहिए।

हां, तो जिस सेठ की बात चल रही थी, उसी की ओर आइए। वह नगर सेठ होकर राजा और प्रजा में अत्यन्त सम्मानित हो गया। वह क्या करने लगा सो सुनिये—

जाति देश-समाज में, वह खरचे द्रव्य अपार,
मानव ! सुन लीजे।

वह सेठ अपनी जाति के बेटे को दुखी नहीं देख सकता था। उसके पास कोई आता और अपनी कष्ट कथा कहता तो उसका हृदय द्रवित हो उठता। वह सौ माँगता तो सेठ बिना उसके नाम लिखे उसे दो सौ दे देता था। ब्याज की तो बात ही दूर रही। इस सिलसिले में एक दृष्टान्त और स्मरण आ गया।

एक सेठ बड़ा सम्पत्तिशाली था। उसकी विशाल हवेली नगर में अलबेली थी। दस--बीस नौकर थे। मगर वह बड़ा कृपण था। प्रायः बड़े सेठों की यह परम्परा है कि उनके द्वार पर दो-चार पहरेदार रहते हैं और दो--चार पालतू कुत्ते भी पड़े रहते हैं।

उस नगर में सेठ की जाति का एक गरीब आदमी था। बहुत तंग हालत में था। एक बार वह सोच--विचार में डूबा था कि उसकी पत्नी ने कहा--सोच--विचार करते रहने से लाभ नहीं होगा। अमुक सेठजी के यहाँ जाओ। वहाँ क्या गिनती है ? अगर वह कुछ मदद कर दें तो मार्ग निकल आएगा।

गरीब युवक सेठ की हवेली पर आया। द्वार पर सिपाही थे परन्तु वे तमाखू पीने मे मस्त थे और कुत्ते इधर-उधर पडे विश्रान्ति ले रहे थे। अतएव वह बेरोकटोक अन्दर घुस गया और ऊपर चला गया। एक बुढिया से पूछा-सेठ साहब! कहाँ है? उसने एक कमरे की ओर इशारा किया और वह उस कमरे को खोल कर अंदर जा पहुँचा।

सेठ साहब कुर्सी पर पड़े हुए सिगरेट का आनन्द ले रहे थे और धुएँ के गुब्बारे उड़ा रहे थे। एक नौकर हाजिरी मे खड़ा था। ज्यों ही वह भीतर प्रविष्ट हुआ, सेठ की निगाह उस पर पड़ी। उसने हाथ जोड़कर कहा-'सेठ साहब, मैं भी महाजन का बेटा हूँ।'

यह शब्द सुनते ही सेठ क्रोध से पागल हो उठा और लाल-लाल आँखें निकाल कर बोला-अरे कौन है पहरे पर! हरामजादे, मुफ्त के टुकड़े खाते हो! निकालो इसे बाहर।

सेठ समझ गया था कि यह कुछ माँगना चाहता है। मूजी के यहाँ कोई माँगने चला जाय तो उसे ऐसा अनुभव होता था, मानो जमदूत आ गया है। तो वह गुर्रा कर बोला-इसे किसने ऊपर आने दिया है। निकालो बाहर। यह सुनते ही हाजिरी में खड़े नौकर ने उसे धक्का दिया। बेचारा तीन सीढ़ियो के नीचे गिर पड़ा। तिस पर भी सेठ ने कहा-हवेली से बाहर निकाल दो मँगते को! बेचारा अपमानित और तिरस्कृत होकर सीधा अपने घर आ गया। उसने अपनी पत्नी को यह वृत्तान्त सुनाया तो उसकी मनोवेदना का भी पार न रहा। वे विचारने लगे--इस संसार मे गरीबों का कोई सहारा नहीं। ठीक ही कहा है—

दुनिया में गरीबों को आराम नहीं मिलता।
रोतों को हँसाने का पैगाम नहीं मिलता।
जो कोई भी आता है, ठोकर ही लगाता है,
मर कर भी गरीबों को आराम नहीं मिलता।

गरीबों को धक्के देने वाले तो बहुत हैं, पर हाथ पकड़ कर सहारा देने वाला नहीं मिलता! गरीबों का जीवन वास्तव में बड़ा ही दयनीय है। किसी कवि ने बड़ी अच्छी उक्ति कही है—

हे दारिद्र्य! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं, न मां पश्यति कश्चन॥

कोई गरीब निराशा के गहरे स्वर में कहता है हे दरिद्रते! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। तुम्हारी मुझ पर बड़ी कृपा है। तुम मेरे ऊपर खूब प्रसन्न हो। तुम्हारी कृपा से मैं विद्यासिद्ध पुरुष के समान हो गया हूँ। मैं सबको देखता हूँ, मगर मुझे कोई नहीं देखता! तात्पर्य यह है कि मैं दुनिया की ओर आशा भरी निगाह से देखा करता हूं, मगर दरिद्र समझ कर मेरी ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता!

हाँ तो उस दरिद्र ने निश्चय कर लिया कि चाहे भूखे रह कर प्राण त्याग देने पड़े, मगर किसी धनोन्मत्त सेठ के घर जाकर सहायता की याचना नहीं करूँगा। कवि भी कहता है—

वरमसिधारा तरुतलवासो,
वरमिह भिक्षा वरमुपवासः।
वरमपि घोरे नरके पतनं,
न च धनगर्वितबान्धवशरणं॥

अर्थात्—तलवार मार कर जीवन का अन्त कर लेना अच्छा, मकान न हो तो पेड़ की छाया मे विकास करना अच्छा, माँग कर पेट भर लेना भला या उपवास कर लेना अच्छा और यहाँ तक कि घोर पीड़ा उपजाने वाले नरक में जा गिरना अच्छा, किन्तु धन के कारण अहंकार मे डूबे हुए अपने भाई की शरण में जाना अच्छा नहीं है !

सच है-दुनिया मे दरिद्रता से बढ़कर कोई दुःख नहीं है।

इस प्रकार विचार कर गरीब ने निश्चय कर लिया कि अब किसी जाति-भाई के पास नही जाऊँगा और जैसे भी संभव होगा, अपने पैरों पर ही खड़ा होने का प्रयत्न करूँगा।

उसकी पत्नी ने कहा-अब किसी प्रकार कोई धंधा करो। दूसरे दिन सवेरा होते ही वह घर से रवाना हुआ। उसने कुछ लोगों को हाथ में हँसिया (दांतले) लिये जाते देखा। उनसे पूछा-भाई, किधर जा रहे हो ? उन्होंने उत्तर दिया-हम लोग घास काटने जा रहे हैं। उसने पूछा-एक दिन में क्या मिल जाता है ? उन्होंने बतलाया-चार-छह आने मिल जाते है। (आज कल रुपया-बारह आने मिल सकते हैं)।

महाजन—क्या मैं भी चल सकता हूं ?

मजदूर—अवश्य।

महाजन—पर मेरे पास हांसिया नहीं है।

मजदूर—मेरे पास दो हैं। एक तुम ले लेना।

अहा ! गरीब किस प्रकार सहानुभूति शील होता है, इसका यह नमूना है। मजदूर ने उदारतापूर्वक महाजन को अपना

एक हांसिया दे दिया। वह उनके साथ चारा काटने चल पड़ा। उसने आज से पहले घास काटने का काम नहीं किया था। अतएव कुछ अटपटा-सा लगा। कई जगह चोट भी आई। मगर उसने इसकी परवाह नहीं की। दिन भर घास काटता रहा और शाम को कुछ पैसे ले आया। दूसरे दिन फिर गया और तीसरे दिन भी। धीरे-धीरे वह इस काम में निपुण हो गया। यों उसने कुछ रुपये जमा कर लिये और अपने लिए तथा अपनी पत्नी के लिए कपड़े-लत्ते भी सिला लिये।

तीन महीने तक वह डट कर मजदूरी करता रहा। इतने समय में उसके पास कुछ बचत हो गई थी। उससे उसने क्रय-विक्रय प्रारंभ किया। कभी कुछ खरीद लेता और कभी कुछ बेच देता था। भाग्य ने पलटा खाया और लेनदेन में उसे लाभ होने लगा! कभी कभी चौगुना और अठगुना भी लाभ हो जाता था। इस प्रकार वह मालदार होने लगा।

भाइयो! समय परिवर्त्तनशील है। सदा एक-सा नहीं रहता। आज जो गरीब है, दरिद्र है, पेट भर भोजन के लिए भी मोहताज है, क्या आवश्यक है कि वह आजीवन ऐसा ही बना रहेगा? नहीं।

चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि सुखानि च।

जैसे चलती गाड़ी का पहिया स्थिर नहीं रहता, घूमता ही रहता है, उसी प्रकार मानव-जीवन में कोई भी सुख अथवा दुःख स्थिर नहीं है। आज का भिक्षुक कल वैभवशाली बन सकता है। घास की झौंपड़ी में रहने वाला भी पुण्य का योग पाकर महल खड़ा कर सकता है। इसी प्रकार आज जो लक्ष्मी के मद में मत-

वाला हो रहा है, जो धन के गर्व मे चूर हो होकर गरीबों को इन्सान ही नहीं समझता और धरती पर पैर नही रखता, वह भी भाग्य-चक्र पलटने पर दर-दर का भिखारी बन सकता है। सूर्य उदित होता है, अस्त भी होता है। और अस्त होने के पश्चात् वही फिर उदित भी होता है। किसी के कर्म सदैव समान नहीं बने रहते।

रामे प्रव्रजनं बलेर्नियमनं पाण्डोः सुतानां वनं,
वृष्णीनां निधनं नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनं।
नाट्याचार्यकमर्जुनस्य पतनं संचिन्त्य लंकेश्वरे,
सर्वः कालवशेन पश्यति नरः को वा परित्रायते ? ॥

भाइयो ! साधारण मनुष्य की तो गिनती ही क्या है, बड़े-बड़े महाराजा और अवतार कहलाने वाले महापुरुष भी काल की इस विषम चक्की में पिसने से नहीं बच सके ! रघुपति रामचन्द्र का वृत्तान्त कौन नहीं जानता ? अवध के राजसिंहासन पर आसीन होने की तैयारी हो रही थी, पर भाग्य कुछ और ही तैयारी कर रहा था। राम को सिंहासन के बदले बनवास मिला ! युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन जैसे प्रतापी और बलवानों को राज्य-वैभव त्याग कर जंगलों की खाक छाननी पडी। अंधकवृष्णि के परिवार को मौत का शिकार होना पड़ा और शूरवीर राजा नल को राज्य से हाथ धोने पडे ! अर्जुन का बुरा हाल हुआ और रावण जैसे अभिमानी और विक्रमशाली राजा का भी दर्प चूर-चूर हो गया। सचमुच काल के प्रबल प्रहार के सामने कोई टिक नहीं सकता।

कालः समविषमकरः, परिभवसम्मानकारकः कालः।
कालः करोति पुरुषं, दातारं याचितारं च ॥

हे मानव ! तू अपनी ऐंठ छोड़ दे । तू काल के अप्रतिहत प्रभाव के सामने नगण्य है, तुच्छ है । काल सम से विषम और विषम से सम अवस्था उत्पन्न कर देता है । काल की बदौलत ही मनुष्य सन्मान अथवा अपमान का भाजन बनता है । समय के फेर से ही मनुष्य कभी दाता और कभी भिखारी बनता है । आज का भिखारी कल दाता और कल का दाता आज भिखारी बन जाता है ! यह सब समय की महिमा है ।

इसीलिए ज्ञानी जनों का कथन है कि मनुष्य को प्रत्येक स्थिति में समभाव धारण करना चाहिए । जो सम्पत्ति पाकर इठलाता नहीं है और विपत्ति मे विषाद नहीं करता, वही पुरुष वास्तव मे विवेकवान् है । क्षुद्र पुरुष सम्पत्ति पाकर नाचने लगते हैं और विपत्ति पड़ने पर व्याकुल हो जाते हैं । किन्तु गभीर आशय वाले जानते हैं कि यह सब कर्मों का खेल है—नाटक है । इसमें हर्ष विषाद न करके समभाव धारण करना ही योग्य है । यही शान्ति का मार्ग और उपाय है ।

उस गरीब का भी भाग्य चमका और उसके पास पन्द्रह-बीस हजार की सम्पत्ति हो गई । उधर वह कृपण सेठ, जो धन के नशे में पागल था और जिसने उस गरीब को धक्के देकर निकलवा दिया था, उसका भी भाग्य चक्र से बाहर नहीं था । धीरे-धीरे उसके पाप का उदय होने लगा और उसकी हालत बिगड़ने लगी । आखिर एक दिन वह आया कि उसकी हवेली बिक गई, घर के जेवर बिक गये बरतन-भांडे तक बिक गये । उसकी यह सब वस्तुएँ इस नवीन सेठ ने खरीदी । उसके सब नौकरों को भी उसीने अपने यहाँ नियुक्त कर लिया । यह नवीन सेठ अब आनन्द मे रहने लगा । मगर उसने अपने सब नौकरों-

चाकरों को हिदायत कर दी कि कोई दीन-दुखिया अपना दुःख-दर्द सुनाने के लिए आवे तो उसे सीधा मेरे पास भेज दिया करो।

इस प्रकार जो भी उसके पास याचना करने आता, कभी खाली हाथ नहीं जाता था। जो जितनी आशा करके आता, उसे उससे अधिक ही मिलता था। पर नवीन सेठ की एक बड़ी विशेषता तो यह थी कि वह ऐसे प्रेम से देता कि लेने वाले को तनिक भी अपमान प्रतीत न हो और वह हीनता का अनुभव न करे। वह मधुर वचनों से उसे सान्त्वना भी देता था।

उधर वह पुराना सेठ इतनी हीन अवस्था में जा पहुँचा कि पेट पालने मे भी असमर्थ हो गया। लोग उसे देखकर भांति-भांति की बातें करते। कोई कहता-क्या करे बेचारा एक दिन मालदार था, आज गरीब हो गया! कोई उसकी पहले की अकड़ का स्मरण करके ताने मारने लगते, व्यंग कसते और उपहास करते थे। कुछ दयालु जनों ने उससे कहा-तुम नवीन सेठ के पास जाओ। नगर भर में उसकी प्रख्याति और प्रतिष्ठा है। वह उदार और सहृदय सेठ है। अवश्य तुम्हारी सहायता करेगा। यह सत्परामर्श सुन कर उसका मन जाने को होता, परन्तु साहस न होता। आखिर कौन-सा मुख लेकर उसके पास जाय? जिसको एक दिन धक्के देकर हवेली से बाहर निकलवा दिया था और अपशब्द कह कर अपमानित किया था, आज उसी के समक्ष सहायता के लिए अभ्यर्थना लेकर किस प्रकार जाया जाय? वह बड़ी दुविधा मे पड़ा। मगर जब विवशता ने बाधित किया तो एक दिन कड़ा जी करके जाने का संकल्प कर ही लिया। पुराना सेठ नवीन सेठ की हवेली की ओर रवाना हुआ। पैर आगे बढ़ना नहीं चाहते थे, परन्तु वह उन्हें जबर्दस्ती आगे घसीटे लिये जा रहा था। आखिर किसी प्रकार हवेली के द्वार

तक जा पहुंचा। नौकरों ने देखा कि पहले वाले सेठजी आ रहे हैं और ज्यों ही दरवाजे पर वे आये कि नौकरों ने कहा-पधारिए, सेठ साहब ऊपर हैं।

पुराना सेठ ऊपर चला गया। उसे आते देख नवीन सेठ कुर्सी छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। औपचारिक वार्त्तालाप के पश्चात् उसने उसके आने का कारण पूछा। तब वह लज्जित भाव से बोला मुझे दो सौ रुपये चाहिए। मेरे नाम लिख कर आप दे दें तो कृपा होगी।

नवीन सेठ ने पाँच सौ गिन कर दे दिये और कहा-आपको फिर आवश्यकता हो तो ले जाना। संकोच न करना। यह सब आपका ही है। मुझे पराया न समझिएगा।

सेठ उसे ससन्मान विदा करने के लिए नीचे तक आया। उसने अपने एक नौकर से कहा-जाओ, सेठजी को घर तक पहुँचा आओ।

उसे पहुँचा कर जब नौकर वापिस लौटा और सेठ के पास गया तो उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। सेठ ने जब इसका कारण पूछा तो नौकर ने कहा-अपराध क्षमा हो तो कहूँ।

सेठ ने कहा-तुम्हे सब क्षमा है, जो मन मे हो, स्पष्ट कहो।

नौकर ने कहा-मुझे आज बड़ा अफसोस हो रहा है। जैसे आज वे आये, उसी प्रकार एक दिन आप भी उनके यहां आये थे। यही हवेली थी। मगर उन्होंने आपको मँगता कहकर निकालने की आज्ञा दी थी। मैंने आपको धक्का मारा था। आप तीन-चार

सीढ़ियां नीचे गिर गये थे। यह वही सेठ है और आपको धक्का देने वाला नौकर भी मैं ही हूँ। मगर मै सोचता हूँ--अपने उन्हे पहचान कर भी कितना आदर किया है! यह आपकी महत्ता असीम है।

नवीन सेठ बोला-सुनो भाई, समझदार मनुष्य वह कहलाता है जो अपने से भी अच्छे मनुष्यों का अनुकरण करता है। ऐसा करने से मनुष्य का जीवन अच्छा बनता है, ऊँचा उठता है और सद्गुणो से परिपूर्ण हो जाता है। बुरे आदमी भी हमारे लिए उपयोगी हैं। इस कारण कि हम उनकी बुराइयाँ देख कर सबक सीखे और यह सोचें कि बुराइयों को अपनाने का कितना बुरा परिणाम होता है। वे अनुकरण करने के लिए नहीं, बचने के लिए उपयोगी है। मगर तुम्हारे पुराने सेठ तो मेरे उपकारी हैं। वह मुझे तिरस्कृत न करते और सौ दो सौ दे देते तो आज मेरी जो हालत है, वह न हो पाती। उन्हाने परोक्ष रूप में मुझे परिश्रम करने की प्रेरणा दी और मैंने अपना जीवन सँभाल लिया।

नवीन सेठ ने फिर कहा--उनमें और मुझमें एक अन्तर और है। उस समय उन्हे दरिद्रता के दुःखों का अनुभव नहीं था, किन्तु मुझे उन दुःखों का अच्छा अनुभव है। मैं जानता हूँ कि दुखी मनुष्य क्या--क्या करता है! अतएव मैंने उस सेठ के प्रति जो व्यवहार किया है, वही मेरा कर्त्तव्य था।

अहा! कितना सुन्दर आदर्श है! वास्तव में सम्पत्ति पाकर जिसे अभिमान नहीं होता, जिसका विवेक स्थिर रहता है और जिसका अन्तःकरण करुण कोमल कमनीय भावनाओं से सम्पन्न बना रहता है, वह मनुष्य के रूप में देवता है। उसी का लक्ष्मी पाना सफल होता है। लक्ष्मी आकर जिसकी मनुष्यता को निगल जाती है, वह लक्ष्मी पाकर भी मनुष्यत्वहीन बना हुआ व्यक्ति

दयनीय है। उसे नकली सम्पत्ति मिली और उसकी असली सम्पत्ति चली गई।

हाँ, तो प्रथम दृष्टान्त वाला नगर सेठ हजारो का दान करता और सन्तोष एवं सुख के साथ जीवन व्यतीत कर रहा था। उसे किसी चीज़ की कमी नहीं थी।

दोनों भव सुखी हुवो, यश छायो संसार,
मानव ! सुन लीजो।

जो सामग्री पाकर परोपकार करता है और दान देने मे जरा भी सकोच नहीं करता, वह अपने अन्तराय को तोड़ता है। तब वह इस भव में भी सुखी होता है और परभव मे भी सुखी होता है।

कुछ सपने कुछ जागता, यह तवन कियो तैयार,
सत्तर वर्ष की उम्र में कहे, चौथमल हितकार।
मानव ! सुन लीजो ॥

मैं कुछ स्वप्न मे था और कुछ-कुछ जाग रहा था, तब यह कविता तैयार हुई। सवेरे इसे ठीक तरह लिखा गया। इस समय मेरी सत्तर वर्ष की उम्र है और आपको हित-वचन कह रहा हूं। भाइयो ! आप लोगों को पूर्वजन्म मे किसी सद्गुरु का योग मिला होगा, जिसने आपको सन्मार्ग प्रदर्शित किया होगा। उसीके प्रभाव से आपको आर्य देश, मनुष्य भव, परिपूर्ण इन्द्रियाँ और नया शहर जैसे शहर में बास मिला है। अतएव अब आप अपने द्रव्य का सदुपयोग कर लो। इससे अगला भव भी सुधर जाएगा और निहाल

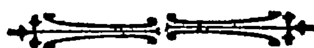
हो ओगे। यह सुअवसर, यह शुभ संयोग वार-वार नहीं मिलता। इसे प्रमाद मे न गँवाओ। लोभ-लालच और आशा-तृष्णा से व्याकुल मत बने रहो। बंबूल बोओगे तो बंबूल पाओगे। आम बोओगे तो आम मिलेंगे। क्या चाहिए सो सोच लो!

भाइयों! धर्म का आचरण करो और ज्ञानार्जन के लिए प्रयत्नशील रहो। ऐसा करने से आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

ब्यावर
२६-६-१६४७ }



वीतरागवाणी की कसौटी



स्तुति:—

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? प्रभो! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ?

प्रभो! आपका मुख-कमल एकदम अनोखा है। खूब सोचा, विचार किया, प्रकृति के विशाल भाण्डार को देखा-परखा और खोजा कि कहीं कोई वस्तु ऐसी मिल जाय, जिससे आपके मुख को उपमा दी जा सके। परन्तु आशा पूरी नहीं हुई। सम्पूर्ण

विश्व मे कोई वस्तु नहीं जो आपके मुख की समानता कर सके। अगर कुछ मिलती-जुलती वस्तु है तो वह चन्द्रमा ही है। चन्द्रमा सुधाकर है और आपका मुख भी सुधा का आकर है। चन्द्रमा अंधकार का विनाश करता है, आपका मुख मिथ्यात्व के अंधकार का विनाशक है चन्द्रमा की उज्ज्वल ज्योत्स्ना जगत् के संतप्त प्राणियों को शीतलता प्रदान करती है, आह्लाद देती है और उनके संताप का अन्त कर देती है। आपका मुखमण्डल भी भव्य जीवों को अपूर्व शान्तिदाता है, आह्लादजनक है और सब प्रकार के पापों एवं तापों को दूर करता है। चन्द्रमा विश्व भूषण है, आप भी जगत् के अनमोल भूषण है। चन्द्रमा सौम्य है तो आपका मुख मण्डल भी सौम्य है।

भगवन् ! इत्यादि समानताएँ होने पर भी आपके मुख-मण्डल में कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो चन्द्रमा में नहीं है। वे विशिष्टताएँ भी साधारण नहीं, बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ—चन्द्रमा कभी उदित होता है और कभी अस्त हो जाता है। उस का उदय अस्थाया है। किन्तु आपके मुखमण्डल की दिव्य दीप्ति नित्य उदय वाली है। वह सूर्योदय के समय में भी ज्यों की त्यों बनी रहती है। भगवन् ! चन्द्रमा में अंधकार को दूर करने की परिमित शक्ति तो है, पर वह मोह रूपी प्रगाढ़तम आन्तरिक अधकार को नष्ट नहीं कर सकता। अखिल विश्व के असंख्य चन्द्रमा यदि एकत्र हो जाएँ और किसी प्राणी के मिथ्यात्व को दूर करने के लिए अपनी समस्त कलाओं का प्रदर्शन करें तो भी वे सफल नहीं हो सकते। परन्तु आप का मुख मंडल अकेला ही असंख्य जीवों के मिथ्यात्व-महान्धकार को निर्मूल करने में समर्थ है।

इसके अतिरिक्त चन्द्रमा राहु से ग्रस्त हो जाता है, परन्तु आपके मुखमण्डल की आभा को ग्रसित करने वाला कोई राहु नहीं है। चन्द्रमा तो मेघों से भी आच्छादित हो जाता है, पर आपके मुख की उस अद्भुत छटा को आच्छादित करने का सामर्थ्य मेघ-पटल में नहीं है। चन्द्रमा की कान्ति परिमित है। किन्तु आपके मुख की कान्ति अपरिमित है अपार है, असीम है और अनन्त है। चन्द्रमा परिमित भूमि में ही अपने आलोक की किरणों का प्रसार करता है, परन्तु आपका मुखमण्डल अखिल मही-मंडल को आपने अलौकिक आलोक से आलोकित करता है।

इस प्रकार जब चन्द्रमा के साथ आपके मुखमण्डल के साधर्म्य का विचार करते है तो दोनों में बहुत अन्तर प्रतीत होता है। अन्त में यही कहना पड़ता है कि आपका मुखमण्डल आपके मुखमण्डल के ही समान है। दूसरा कोई पदार्थ ऐसा नहा है जिसके साथ उसकी तुलना की जा सके।

मगर ऐसा कहने में भी एक कठिनाई है। इससे आपके मुखमण्डल की वास्तविक महिमा साधारण जनों की समझ में नहीं आएगी। उन्हें समझाने के लिए यों कह सकते है कि-प्रभो! आपका मुख-मण्डल अपूर्व-अद्भुत चन्द्रमा के समान है।

यहाँ अपूर्व या अद्भुत शब्द से उन विशेषताओं को, जो इससे पहले वर्णित की जा चुकी हैं, समझ लेना चाहिए।

जिनके मुख को ऐसी अनुपम अनोखी अलौकिक छटा है, उन भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! चन्द्रमा का एक बड़ा गुण यह है कि उसमे मधुर शीतलता है। भगवान् की वाणी में भी अद्भुत शान्तिप्रदायिनी

शक्ति है। कैसा भी पापी क्यों न हो, जिसने एक बार भी भगवान् के वचनामृत का पान कर लिया, उसके हृदय में शान्ति हो जाती है। जिनके अन्तःकरण काम, क्रोध, मद और लोभ आदि की आग से संतप्त हो रहे थे, पापों की तीव्र ज्वालाओं से दहक रहे थे, उन्हें भी प्रभु का प्रवचन-पीयूष पान करने से अपूर्व उपशान्ति की प्राप्ति हुई।

इसी को कहते हैं वाणी ! जिस वाणी के श्रवण से संसार-संताप से तप्त प्राणीगणों को अननुभूतपूर्व शीतलता--निराकुलता का आभास होने लगे, वही सच्ची वाणी है। इस वाणी के श्रवण का अवसर तीव्र पुण्य के उदय से मिलता है शास्त्रकार कहते हैं:—

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥

मनुष्य जन्म मिल जाने पर भी सूत्र धर्म के श्रवण का सुयोग मिलना बहुत मुश्किल है, क्योंकि आली-पाली हजारों बातें तो सहज ही सुनने को मिल जाती हैं, परन्तु वीतराग देव की वाणी सुनाने वाले विरले ही होते हैं। कदाचित्त आर्य देश मे उत्पन्न हो जाय और सुनाने वाले भी मिल जाएँ तो भी सुनने वाले मे उसे सुनने की रुचि होना कठिन है। पूर्व जन्म मे जिसने खूब पुण्य का उपार्जन किया है और सत्संस्कारों का सचय किया है, वही भगवान् को वाणी श्रवण करने का अवसर पाता है।

भगवान की वाणी कौन-सी है ? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया गया है कि जिस वाणी को सुनने से श्रोता को तीन बड़ी बातें प्राप्त हो जाती हैं, वही वीतराग देव की वाणी है। यहाँ किसी मत या पंथ मजहब के शास्त्र का जिक्र नहीं है, जिस किसी

भी शास्त्र से यह तीन बड़ी बातें मिलती हैं, वह शास्त्र वास्तव मे शास्त्र है और वही भगवान् वीतराग की वाणी है।

जब प्रश्न किया गया कि सच्चा श्रुत किसे कहते हैं और मिथ्याश्रुत कौन-सा है ? तब उसका उत्तर दिया गया कि किसी भी शास्त्र की सचाई या झुठाई उसे पढ़ने वाले पुरुष की दृष्टि पर निर्भर है। जिसकी बुद्धि विपरीत हो रही है, जिसे धर्म, अधर्म प्रतीत होता है, जो सुदेव को कुदेव और सुगुरु को कुगुरु समझता है, जिसे आत्मा और परलोक पर विश्वास नहीं है और जिसके भीतर प्रकाश का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है, उसके लिए सभी शास्त्र मिथ्या ही मिथ्या हैं। चाहे वीतराग की वाणी हो या सराग की वाणी, उसकी दृष्टि सब को मिथ्या रूप में ही ग्रहण करती है। अतएव उसके लिए सत्‌शास्त्र भी मिथ्याश्रुत के रूप में परिणत हो जाता है। किन्तु जिसकी दृष्टि निर्मल है, मिथ्यात्व के धुंधलेपन से रहित है और जिसकी बुद्धि तत्त्व के समीचीन स्वरूप को ग्रहण करने में समर्थ है, उसके लिए सभी शास्त्र सच्चे हैं लोक में प्रचलित मिथ्याश्रुत भी उसके लिए सम्यक्-श्रुत बन जाते हैं। वह उनमें से परमार्थ को ही ग्रहण करता है।

तो जिस शास्त्र से तीन बातें ग्रहण की जा सकती है, वही सच्चा शास्त्र है। वह तीन बातें यह हैं-(१) तप (२) शान्ति और (३) अहिंसा।

पहली बात तपस्या की है। जिस शास्त्र के पढ़ने से यह अभिलाषा जागृत हो जाय कि मैं तपस्या करूँ, उपवास, बेला, तेला, चोला, पंचोला, अठाई, अर्धमासखमण, मासखमण, रत्ना-वली, कनकावली, मुक्तावली, सिंहनिष्क्रीडित, वर्द्धमान आदि तप करूँ, सच्चा शास्त्र है।

भाइयो ! तपस्या की शक्ति बहुत ऊँची है। उसकी महिमा इतनी अधिक है कि कही नहीं जा सकती। तप से ही कर्म कटते हैं और तप के बिना कर्म नहीं कट सकते। कई लोग कोरे ज्ञान से कर्म कटने की बात कहते हैं, परन्तु ज्ञानी जनों का स्पष्ट कहना है कि तपस्या के अभाव में ज्ञान भी पूरा लाभदायक नहीं हो सकता। ज्ञान हमारे लिए मार्गप्रदर्शक है। उससे सत्य-असत्य का विवेक प्राप्त होता है, परन्तु कर्मों को काटने की शक्ति तो तपस्या में ही है। कहा भी है—

विशुद्ध्यति हुताशेन, सदोषमपि काञ्चनम् ।
तद्वत् तथैव जीवोऽयं, तप्यमानस्तपोऽग्निना ॥

अर्थात्—जैसे मलीन सोना आग मे तपाने से पूरी तरह विशुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या की अग्नि से तप कर यह जीव भी सर्वथा निर्दोष--निर्मल--निष्कलंक--निर्विकार--निष्कर्म हो जाता है।

तप में इतनी प्रबल शक्ति है कि दुःसाध्य में दुःसाध्य वस्तु भी उससे प्राप्त हो सकती है। जिसके लिए अन्य सब उपाय अपर्याप्त सिद्ध होते हैं, वह भी तपस्या के प्रभाव से सुसाध्य हो जाती है। संक्षेप में कहें तो यह कह सकते हैं कि संसार में ऐसी कोई अभिलाषा नहीं, जिसकी तपस्या से पूर्ति न हो सके और ऐसी कोई प्राप्त वस्तु नहीं जो तपस्या से प्राप्त न हो सके।

यद् दूरे यद् दुराराध्यं, यच्च दूरे व्यवस्थितं ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

तप के सामर्थ्य को कोई चुनौती नही दे सकता है। उसके प्रभाव को अवरुद्ध करना संभव नहीं है। कोई वस्तु कितनी ही कठिन क्यों न हो, वह तपस्या के द्वारा प्राप्त होकर ही रहेगी और तपस्या के द्वारा ही प्राप्त होगी।

सर्वसाधारण लोग तप का अर्थ बहुत संकीर्ण समझते हैं। वे जानते हैं कि आहार को त्याग देना ही तप है। किन्तु सचाई ऐसी नहीं है। तपस्या को यही स्वरूप होता तो उसकी इतनी अधिक महिमा न होती। भगवान् महावीर ने तपस्या की बहुत विशाल रूप में विवेचना की है। उसके अनेक प्रकार से भेद-प्रभेद बतलाये है। उन सबको ठीक प्रकार से समझने से ही पता चलता है कि तपस्या का दायरा बड़ा विशाल है। उसमें अनशन भी सम्मिलित है तो और भी अनेक चीजे हैं। बाह्य तप भी हैं तो प्रायश्चित्त, सेवा, स्वाध्याय, विनय और उत्सर्ग की भी गणना है। यह सब आन्तरिक तप हैं। इन सब बातो पर विचार करने से ही विदित होता है कि भगवान् की तपस्या के विषय में क्या मान्यता रही है।

तपस्या से लौकिक और लोकोत्तर-दोनो प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है। चक्रवर्त्ती चौदह रत्नो का स्वामी होता है और नौ निधियो का भी, यह सब किसका प्रभाव है? सब तपस्या की ही देन है। पूर्वभव में उच्च कोटि का तपस्या की तो इस भव में ऐसी उत्कृष्ट सामग्री मिली कि चक्रवर्त्ती के मुकाबिले में इस धरती पर दूसरा कोई मनुष्य नही है। जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति मे उसके लिए कई उपमाएँ दी गई हैं। आप शास्त्रों के आख्यान सुनते हैं। उनमे आधारभूत वस्तु क्या है ?-जिस किसी को जो महत्ता, ऋद्धि, विभूति, सम्पत्ति-अथवा सिद्धि प्राप्त हुई, उस सबका बीज कहाँ था?

एक ही उत्तर है तपस्या में । जिसने जो कुछ महत्त्वपूर्ण पाया, तप के प्रभाव की बदौलत पाया ।

प्राचीन उदाहरण सैकड़ों की ही नहीं, सहस्रों की संख्या मे मौजूद है । पर तपस्या के प्रभाव को आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । कलकत्ता मे और दूसरे स्थानों में गांधीजी ने अपने जीवन मे कई बार उपवास किये । उन्होंने भोजन त्याग दिया । उसके प्रभाव से कठोर से कठोर और पापी से पापी मनुष्यों के हृदय भी बदल गये । उन्हें भी तपस्या के प्रभाव के सामने झुकना पड़ा ।

तपस्या शक्ति प्रदायिनी है । तपस्या के प्रभाव से अपूर्व आध्यात्मिक बल की प्राप्ति होती है । आध्यात्मिक बल के साथ शारीरिक बल भी प्राप्त होता है । अतएव जहाँ अध्यात्मशास्त्र तपस्या की महिमा का बखान करता है, वैद्यकशास्त्र में भी उपवास की प्रशंसा की गई है । कहा भी है—

तपसा क्षीयते व्याधिः ।

अर्थात् तपस्या से व्याधि का क्षय हो जाता है । उपवास के गुणों की परीक्षा करके शरीर शास्त्रियों ने 'उपवासचिकित्सा' की एक पद्धति ही पृथक् निकाली ।

यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि जो मुमुक्षु है और जो आत्मशुद्धि के लिए तपस्या करना चाहते हैं, उन्हें विशुद्ध आत्मकल्याण की भावना ही रखनी चाहिए । लौकिक कामना करने से आध्यात्मिक लाभ गौण हो जाता है । अतएव शास्त्रकारों ने खास तौर से आत्मिक साधना मे संलग्न साधकों को ऐसी चेतावनी दी है । श्रीदशवैकालिक सूत्र मे वह चेतावनी इस प्रकार है:—

(१) नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा ।

(२) नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा ।

(३) नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा ।

(४) नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा ।

अर्थात् तपस्या करने वाले मुमुक्षु को चार बातों का ध्यान रखना चाहिए। वह यह हैं—

(१) वह इस लोक के संबंधी लाभ के लिए तप न करे।

(२) वह परलोक में इन्द्र आदि पदवी पाने के लिए तपस्या न करे।

(३) वह कीर्त्ति (सर्वदिशा व्यापी यश) वर्ण (एक दिग्व्यापी यश), शब्द (अर्धदिग्व्यापी यश) या श्लोक (स्थानीय यश) पाने के लिए तपस्या न करे।

(४) वह कर्मनिर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रयोजन से तपस्या न करे।

तात्पर्य यह है कि साधक का लक्ष्य निश्चित होना चाहिए। एक लक्ष्य स्थिर न होने से सफलता नहीं मिलती। एकहिं साधे सब सधे, सब साधे सब जाय। जो अपना एक लक्ष्य स्थिर करके उसी की पूर्त्ति में संलग्न हो जाता है, उसे सफलता मिलती है और जिसका मन कभी इधर और कभी उधर होता रहता है, जो कभी पारलौकिक लाभ की, कभी ऐहिक लाभ की और कभी कर्मक्षय की कामना करता है, उसकी कोई भी कामना ठीक तरह पूरी नहीं हो पाती। अतएव आत्मकल्याण के इच्छुक जनों को अपना यही उद्देश्य सामने रखना चाहिए।

भाइयो ! इसमें सन्देह नहीं कि उच्चतम ध्येय से की गई तपस्या से साधारण लौकिक लाभ अनायास ही मिल जाता है। जो जीव तपस्या करके आया है, वही आज उच्च कोटि का आनंद भोग रहा है। तपस्या करके नहीं आये, वे दीन और दुखी हैं। उनकी औरत और उनके बालबच्चे भी उनका कहना नहीं मानते और उनसे झगड़ते हैं। जिसने थोड़ी-सी तपस्या की वह भी राजा बना है।

खाना, पीना और ऐश-आराम तो पशुओं को भी प्राप्त हो जाता है। पशु भी मनुष्यों की तरह खाते-पीते और भोग भोगते हैं। लेकिन पशु तपस्या नहीं कर सकते, कम से कम मनुष्यों जैसी तपस्या की साधना करने की उनमें शक्ति नहीं है। विशिष्ट तपस्या करना तो मनुष्य का ही काम है। अतएव मनुष्य शरीरकी सार्थकता तपस्या करने में ही है।

इस प्रकार तपस्या का महत्त्व जान कर जिस शास्त्र के श्रवण से तपस्या करने की रुचि जागृत होती है, वही सच्चा शास्त्र है। आप अपने को धन्य और भाग्यवान् समझ सकते हैं कि आपको शास्त्र-वीतराग के वचन, सुनने का अवसर मिल गया है। अतएव आपको यथाशक्ति अवश्य तपस्या करनी चाहिए। अधिक कर सको तो अवश्य करो, अन्यथा कम से कम नवकारसी का तप तो करना ही चाहिए। नवकारसी की तपस्या से भी कितने ही पापों का क्षय हो जाता है और स्वर्ग के सुख की प्राप्ति होती है।

एक दिन के चार प्रहर होते हैं और नवकारसी पहले प्रहर का चौथा भाग है। इतनी-सी देर भी व्रत में रहोगे, संयम का पालन करोगे तो बहुत-से कर्म कट जाएँगे। हाँ, यदि व्रत-संकल्प के बिना दोपहर तक भी भूखे रहे उस भूखे रहने से तपका लाभ न होगा नियम से बद्ध होकर और संकल्प करके जो तपस्या की

जाती है, उसका ही अभीष्ट फल होता है। जिसने तप का संकल्प किया है और जिसके सकल्प मे बल है, वह किसी भी प्रलोभन से विचलित नहीं हो सकता। तपश्चर्या के काल मे सामने गरम-गरम बादाम का हलुवा भी रख दिया जाय तो भी तपस्वी अपनी इच्छा का निरोध करेगा। इसी को कहते है तपस्या !

एक और छोटी-सी तपस्या बतलाता हूं। यदि प्रतिदिन 'निर्ग्रन्थप्रवचन' (भगवान् महावीर वाणी) के एक अध्याय का पाठ कर लिया जाय, उसके आशय को समझते हुए, शान्त एवं एकाग्रचित्त से स्वाध्याय किया जाय तो सैकड़ों वर्षों के पाप दूर हो जाते हैं। तपस्या का ऐसा प्रभाव है !

भरत महाराज ने कैसी तपस्या की थी ! पुरुषोत्तम कृष्णचंद्र महाराज ने लाखों मासखमण किये थे। रुक्मिणी देवी ने भी पूर्वभव में खूब तपश्चर्या की थी, जिसके प्रभाव से वह कृष्ण की पटरानी बनी थी। कितने नाम गिनाए जाएँ ! तपस्वियों के शुभ नामों से शास्त्र भरे हुए है।

गर्मी के दिन थे। वैसाख या जेठ का महीना था। एक महात्मा दोपहरी के समय रेत में पड़े थे। वे गर्मी की आतापना ले कर तपस्या कर रहे थे। राजा किसी प्रयोजन से बाहर गया था और उधर होकर निकला। रेत में पड़े महात्मा को देख कर उसने विचार किया-यह क्या मामला है ? वह महात्मा के समीप आया। पूछा-महाराज, यह क्या कर रहे हो ?

महात्मा—कर्म काट रहा हूँ।

राजा—कर्म किसने किये हैं ?

महात्मा—जीव ने।

राजा—तो फिर जीव को ही कष्ट क्यों नही देते ? शरीर को रेत मे डाल कर क्यों दंड दे रहे हो ?

महात्मा—राजन् ! मक्खन से घी बनाना होगा तो कैसे बनाओगे ?

राजा-मक्खन को किसी बरतन मे रखकर चूल्हे पर चढ़ा देंगे और नीचे आग चेता देंगे। छाछ जल जाने पर घी बन जाएगा।

महात्मा-छाछ को जलाने के लिए बरतन को तपाने की क्या आवश्यकता है ? बेचारे बरतन का क्या दोष है ? छाछ तो मक्खन में है, बरतन मे तो नहीं है ! मक्खन को ही आग में क्यों नहीं रख दिया जाता ?

राजा-बरतन के बिना मक्खन ठहरता नहीं है। उसी के द्वारा मक्खन तपाया जा सकता है।

महात्मा—यही बात शरीर और जीव के विषय मे क्यों नहीं समझ लेते ? मेरी आत्मा स्वभावतः परमात्मस्वरूप है, किन्तु अन्तर यही है कि उसमें कर्म रूपी छाछ को मिलावट हो रही है। मैं उस छाछ को जलाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। राजन् ! आप कहते है कि जीव ने कर्म किये तो जीव को ही कष्ट देना चाहिए, शरीर को नहीं। किन्तु शरीर को कष्ट दिये बिना कर्म नष्ट नहीं हो सकते। मन, वचन और काय के द्वारा ही जीव कर्मों का उपार्जन करता है और इन्हीं के द्वारा उन्हे नष्ट किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शरीर जड़ है और जड़ को सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती। शरीर तो माध्यम है। इस माध्यम के द्वारा जीव को ही कष्ट पहुंचता है।

पाप दो प्रकार के होते है—रूखे और चिकने जिन्हे निकाचित भी कहते है। निकाचित कर्म जिस प्रकार से बांधे जाते है, उसी प्रकार से भोगे जाते हैं। उनमे प्रायः तपस्या का जोर नहीं चलता। इन्हे समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए: पच्चीस-पचास सुइयाँ इकट्ठी करके उन्हे लोहे के तार से कस दिया जाय तो आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अलहदा-अलहदा किया जा सकता है। यदि उन्हे एकत्र करके आग मे तपा लिया जाय और फिर घन से कूट दिया जाय तो क्या उन्हे आप अलग कर सकते हैं? नहीं। इसी प्रकार जो कर्म अत्यन्त गाढ़े रूप मे बांधे जाते हैं, उन्हे तप से नष्ट नहा किया जा सकता। उन्हे अनुभाग के रूप में भोगना पड़ता है। परन्तु जो कर्म चिकने रूप में नहीं बांधे है, वे तपस्या से नष्ट किये जा सकते हैं। तपस्या से नष्ट करने का अभिप्राय यह है कि जिस रूप में वे बंधे थे, उसी रूप में नहा भोगने पड़ते। कुछ कर्म तो ऐसे होते हैं जिनका रस भोगना ही नहीं पड़ता और कुछ का हल्का सा रस भोगना पड़ता है। मान लीजिए, किसी ने किसी का खून कर दिया। खून करने वाले को बदले में फाँसी की सजा मिलती है। किन्तु किसी ने किसी की नाक काट ली तो बदले मे उसकी नाक नहा काटी जाती। उसे कैद की सजा मिलती हैं। इसी प्रकार जीव किसी प्रकार कर्म करता है और किसी प्रकार उन्हे भोगता है। इस प्रकार निकाचित कर्मों को छोड़ कर अन्य कर्म तपस्या के द्वारा नष्ट किये जा सकते है।

निकाचित कर्म प्रायः उसी रूप मे भोगने पड़ते है। यथा—किसी ने अपने निष्कलंक शत्रु को झूठा कलंक लगा दिया। तो कलंक लगाने वाले को जो कर्मबंध होगा, उसके फलस्वरूप उसे कलंक लगे बिना नहीं रहेगा। इसे समझने के लिए सीता का उदा-

हरण दिया जाता है। सीता पूर्वजन्म में ब्राह्मणी के रूप मे थी। उस समय उसका नाम वेगवती था।

उस समय एक महात्मा तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या का ऐसा प्रभाव फैला और ऐसी ख्याति हुई कि दुनिया उनके दर्शन के लिए उलट पड़ी। सब महात्मा की प्रशसा करने लगे। उनकी महिमा दिनोदिन बढ़ने लगी। मगर जिनके पापकर्म का उदय होता है, उन्हे दूसरों की कीर्त्ति सुहाती नहीं। वे किसी के यश को सहन नहीं कर सकते। वे अपनी शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा कर ही देते हैं।

दस पाँच धर्मद्रोही इकट्ठे हुए और उन्होने महात्मा के विमल यश को कलकित करने का मसूबा किया। महात्मा ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं था। उन्हें किसी से कुछ लेना-देना नहीं था। उनका सब पर समभाव था। आत्मशुद्धि के उच्च उद्देश्य से वे तपश्चरण कर रहे थे। किसी से कहते नहीं थे कि हमारी कीर्त्ति फैलाओ, यशोगान करो या स्तुति गाओ। मगर कस्तूरी की गंध आप ही आप फैल जाती है।

हाँ, तो उन लोगो ने वेगवती को अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हथियार बनाया। उसे समझा-बुझा कर यह कहने को तैयार कर लिया कि-इस महात्मा ने मेरा धर्म बिगाड़ दिया है।

ब्राह्मणी वेगवती उनकी बातो में आ गई। उसने वैसा ही कह दिया। वह कहने लगी-यह महात्मा नहीं, गृहस्थ हैं। एक बार लोगों में सनसनी फैल गई। विचारशील लोगों के सिवाय मामूली लोग महात्मा पर संशय करने लगे।

दूसरों के सिखाने से उसने ऐसा कह तो दिया, परन्तु जल्दी ही उसे लेने के देने पड़ गये। उसके पाप कर्म का उदय आ गया। उसी रात में उसका इतना जोर से पेट दुखा कि तड़प-तड़प कर बड़ी कठिनाई से रात निकाली। तब कुटुम्ब वालों ने उससे कहा महात्मा का अपवाद करने के पश्चात ही तेरा पेट दुखना आरम्भ हुआ है। सच बतला कि तू ने उनके विषय में सत्य कहा है या असत्य?

उधर महात्मा ने जब अपने ऊपर लगे कलंक की बात सुनी तो अन्न-पानी का त्याग कर दिया। निश्चय कर लिया कि जब तक यह मिथ्या कलंक दूर नहीं हो जाएगा, तब तक मैं आहार पानी ग्रहण नहीं करूँगा।

वेगवती समझ गई कि एक निर्दोष तपस्वी महात्मा को कलंक लगा के कारण ही मुझे उदर वेदना उत्पन्न हुई है। अतएव उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया। कहा-महात्मा निर्दोष हैं। मैं ने तो दूसरों के बहकावे में आकर उन्हे कलंक लगा दिया है। इसके पश्चात् उसकी जीभ भी बंद हो गई।

भाइयो! असत् दोषारोपण करना बड़ा ही भयानक पाप है। जिस को झूठा कलंक लगाया जाता है, विचार करो कि उसे कितनी मानसिक व्यथा होती होगी? प्राण लेने वाला शत्रु एकदम प्राण ले लेता है, परन्तु कलक लगाने वाला, जिसे कलक लगाता है उसे आजीवन पीड़ा पहुँचाता है। यह कोई साधारण पाप नहीं है।

लोग महात्मा के पास पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया-भगवन्! आप अन्न-पानी ग्रहण कीजिए। उस स्त्री ने स्वीकार कर लिया है कि उसने दूसरों के कहने से आप पर मिथ्या कलंक लगाया है।

महात्मा ने कहा वह बोल कर कहे और मेरे सामने कहे तो अन्न-पानी ग्रहण कर सकता हूँ।

आखिर वेगवती महात्मा के समीप लाई गई। ज्यों ही उसने बोलना चाहा कि उसकी जीभ खुल गई। उसने कहा मैं महात्मा से क्षमायाचना करती हूँ। महात्मा सोलह आना सच्चे हैं। मैं ही झूठी हूँ। मुझे अत्यन्त दुःख है कि दूसरों का कहना मानकर मैं ने एक पवित्र आत्मा को कलंकित करने का प्रयत्न किया। मैं अपने कृत्य के लिए अब लज्जित हूँ।

इस घटना के पश्चात् महात्मा ने धर्म का उपदेश दिया और वेगवती उपदेश सुन कर विरक्त हो गई। उसने आर्याजी के समीप दीक्षा अंगीकार कर ली और उग्र तपश्चर्या की। मगर मुनि पर मिथ्या दोषारोपण करने के कारण उसके चिकने कर्म बँध गये थे।

विचार कीजिए। पूर्वभव में सीता (पूर्वभव की वेगवती) ने जो मुनि को मिथ्या कलंक लगा कर जो निकाचित कर्म बाँध लिये थे, वे तपस्या के द्वारा भी नष्ट न हो सके। हाँ, पुण्य प्रकृति इतनी अवश्य बँध गई कि वह मृत्यु के पश्चात् बारहवे देवलोक में उत्पन्न हुई और देवलोक के स्वर्गीय सुख भोग कर, राजा जनक के घर, वैदेही रानी की कुक्षि में जन्म लिया। सीता के साथ ही एक लड़के ने भी जन्म लिया था। उसका नाम था भामंडल। दोनों युगल रूप में उत्पन्न हुए थे।

भामंडल छह दिन का ही था कि विद्याधरों द्वारा अपहरण कर लिया गया। बालक के अपहरण से राजा जनक और उनकी रानी को बहुत दुःख हुआ, किन्तु लड़की का मुख देख कर सबको शान्ति-शीतलता मिली। इसी कारण लड़की का नाम सीता रक्खा

गया। तपस्या के प्रभाव से सीता को असाधारण सौन्दर्य की प्राप्ति हुई। उसके शरीर के आँख, कान, नाक आदि सब अंगोपांग सुन्दर हुए। बड़ी होकर वह सभी कलाओं में प्रवीण हो गई।

सीता अब विवाह के योग्य हो गई। राजा जनक ने स्वयंवर की प्रथा का अवलंबन किया। देश-देश के राजाओं को आमंत्रित किया गया। यह सब वृत्तान्त बहुत लम्बा है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बहुत राजा स्वयंवर में इकट्ठे हुए। स्वयंवर मंडप में एक सारंग धनुष रक्खा गया और कहा गया कि जो इस धनुष को उठा लेगा, उसी के साथ सीता का विवाह कर दिया जाएगा। उस समय वह पुण्यवती कन्या हाथों में पुष्पमाला लिये स्वयंवर-मडप में खड़ी थी। राजकुमारी के अद्भुत सौन्दर्य से आकृष्ट होकर सभी राजा उसे पाने की कोशिश करते हैं। धनुष के पास जाते हैं, लेकिन सभी की कोशिश व्यर्थ सिद्ध होती है! जब कोई भी क्षत्रिय उस धनुष को तोड़ने में सफल न हुआ तो राजा जनक को चिन्ता हुई। उन्होंने कहा-क्षत्रियो! क्षत्रिपुत्रो! आप इतनी बड़ी संख्या में यहाँ एकत्र हुए हैं, लेकिन कोई भी इस धनुष को न तोड़ सके! क्या मेरी पुत्री कुंवारी ही रह जाएगी? क्या आप में कोई भी वीर नहीं है? यह पृथ्वी क्या वीरविहीन हो गई है?

जनक का उत्तेजनापूर्ण भाषण सुन कर लक्ष्मण उठ खड़े हुए। किन्तु बीच ही में राम ने उठ कर कहा-भाई! बैठो। मैं इस धनुष को उठाऊँगा।

रामचन्द्र आगे बढ़े और धनुष के पास पहुँचे। उस समय वहाँ उपस्थित क्षत्रिय नाना प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे। किसी ने सोचा-चले हैं अकड़ कर धनुष उठाने! बड़े-बड़े वीर हताश हो गये तो इनकी क्या चली है? कोई कहने लगा-बेचारा जब निराश

होकर लौटेगा तो चेहरा देखने योग्य होगा ! कोई-कोई सज्जन राजा बोले कुमार का उत्साह अभिनन्दनीय है। वह क्षत्रियों की लाज बचाने के लिए अग्रसर हुआ है ! किसी-किसी ने मन ही मन सफलता की कामना की। अभिप्राय यह है कि अनेक राजाओं के मन मे अनेक प्रकार के विचार उद्भुत होने लगे।

उसी समय गभीर भाव से रामचन्द्र ने धनुष उठा कर जो टंकारा कि सब के सब विस्मित और चकित रह गए। देखने वालों की आँखों में चकाचौंध छा गई।

स्वयंवरमडप में हर्ष का वातावरण बन गया। राजा जनक की प्रसन्नता का पार न रहा। सीता का हृदय अभीष्ट वर की प्राप्ति का विचार करके उल्लसित और विकसित हो उठा। सीता ने उसी समय राम के गले मे वरमाला पहना दी।

दूसरा धनुष लक्ष्मण ने उठाया। कहते हैं, उनको भी दूसरी राजकुमारी मिली। इस प्रकार दोनों भाई स्वयंवर में विजयी होकर और विवाह करके अयोध्या लौटे।

इधर राजा दशरथ एक मुनिराज की वाणी श्रवण कर रहा था। अपने वायुयान में जाता हुआ भामंडल भी वहां उतर पड़ा और मुनिमहाराज का उपदेश सुनने लगा। तब मुनि ने भामडल को उसके जन्म का वृत्तान्त बतलाते हुए कहा-तू सीता का भाई है और राजा जनक का पुत्र है। जन्म के छठे दिन ही तेरा अपहरण हो गया था।

उपदेश सुन कर राजा दशरथ को वैराग्य हो गया। उन्होंने संसार त्याग कर आत्मसाधना करने का निश्चय किया और राज्य

का भार राम को सौंप देना चाहा। किन्तु भाग्य को यह स्वीकार नहीं था। अतएव राज्य के बदले राम को बारह वर्ष का वनवास मिला।

भाइयो! विचार करो कि यह कर्म रूपी मदारी जीव रूपी वानर को किस-किस प्रकार नाच नचाते हैं! राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वन गये। वहाँ सीताजी अकेली बैठी है एक कुटिया में राम और लक्ष्मण युद्ध के लिए गये। सूपंणखा ने रावण को अपनी बीती सुना कर सीता को ले आने की प्रेरणा की। रावण उसे ले आने के लिए बाबोजी बन जाता है और सीता के पास आता है।

देखो, रावण महात्मा बन कर आया है! 'रोटी खाना शक्कर से, दुनिया ठगनी मक्कर से' वाली कहावत चरितार्थ हुई।

कपटी बाबा सीता के समीप आकर याचना करता है। कुटिया में फल-फूल पड़े थे। सीता ने कहा-'अच्छा महाराज, लो।'

रावण के मन मे तो कुछ और ही था। उसने कहा-इस बनी हुई रेखा के बाहर आकर दे तो लूँ, अन्यथा नहीं।

सीता रेखा के बाहर आने में संकोच करने लगी तो बाबा ने फिर कहा-देना हो तो दे दो, नहीं तो साफ-साथ उत्तर दे दो। रेखा के अन्दर से तो मैं लूँगा नहीं।

सीता रेखा से बाहर चली जाती है। उसी समय रावण उसे हरण कर लेता है और लेजा कर अशोक वाटिका मे बिठला देता है। आखिर राम को जब इस वृत्तान्त का पता लगता है तो वे सेना इकट्ठी करके लंका पर चढ़ाई करते हैं। घमासान लड़ाई होती है।

उसमें रावण अपने पुत्र आदि के साथ स्वयं भी काम आ जाता है। धर्मनिष्ठ विभीषण, रावण का भाई था। उसने सीता को वापिस सौंप देने के लिए रावण को बहुत समझाया। परन्तु रावण अपने बल-विक्रम के दर्प मे इतना उन्मत्त हो रहा था कि उसने एक न सुनी। विभीषण ने कहा-सीता परम सती है। उसे पाने की आशा छोड़ दीजिए। वह कदापि परपुरुष को अंगीकार नहीं कर सकती। इसके सिवाय राम-लक्ष्मण बड़े बलवान् है। आप मेरी प्रार्थना न सुनेंगे तो लंका के साथ ही अपना वंश भी नष्ट हो जाएगा। परन्तु रावण ने हठ न त्यागा। आखिर निराश होकर रावण के भाई ने भी अधर्म का पक्ष छोड़ दिया और वह राम के पक्ष में आ गया।

युद्ध में रामचन्द्र की विजय हुई। लक्ष्मण के हाथों रावण मारा गया। विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता और लक्ष्मण के साथ राम अयोध्या में आ गए।

यद्यपि सीता पूर्ण रूप से शुद्ध थी और उसका सतीत्व सुरक्षित था, मगर पूर्वकृत कर्मों का चक्र चला। मुनि को कलंक लगाने से बँधे हुए निकाचित कर्म उदय में आये। उन कर्मों के उदय से लोग कहने लगे--'लंका में रावण के यहां रह कर सीता कैसे निर्दोष रही होगी? इसका धर्म खण्डित हो गया है।'

कवि कर्मों की विचित्र गति पर खेद प्रकट करता है:—

क्व च ननु जनकाधिराजपुत्री,
क्व च दशकन्धरमन्दिरे निवासः।
अति खलु विषमः पुरा कृतानां,
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः॥

अर्थात् -कहाँ तो महाराज जनक जैसे ज्ञानी एवं प्रतापी राजा की कन्या और कहाँ रावण के घर में उनका निवास ! कहाँ अवध, कहाँ लंका ? मगर क्या किया जाय, पूर्वोपार्जित कर्मों का विषम फल जावों को भुगतना ही पड़ता है ! उसे भोगे बिना किसी को छुटकारा नहीं मिल सकता।

रावण न्याय, नीति और धर्म का ज्ञाता था। परस्त्रीलम्पट नहीं था। भक्त राजा था। मगर कर्मों के वशीभूत होकर प्राणी अपना आपा विसर जाता है। इसी से कवि को कहना पड़ा—

पौलस्त्यः कथमन्यदारहरणे, दोषं न विज्ञातवान् ?

कवि के सामने बड़ी समस्या है। रावण जैसा विद्वान्, विवेकवान्, धर्मज्ञ और नीतिमान् राजा क्यों नहीं समझ सका कि परस्त्री का हरण करना दोष है—बुरा है ? परन्तु इसका उत्तर यही है कि कर्मों की लीला अनोखी है !

जनकनन्दिनी और रामपत्नी सती सीता को भी कर्मों ने नहीं छोड़ा। उन्हें कलंक लग गया। महेन्द्रबाग में अग्नि का कुण्ड बनाया गया और सब लोग इकट्ठे हुए। सीता की अग्नि परीक्षा की तैयारी हुई। सीता स्नान करके और शुद्ध वस्त्र धारण करके आई और कहने लगीः—

है उज्ज्वल मेरी साड़ी, कोई दोष न लगा लिगारी,
है रवि शशि साख हमारी रे, सपना में वंछ्यो नाय।
मैं दिलो जान से कहती रे, पर नर ने वंछ्यो नाय ॥

सीता महारानी कहती हैं—'मैं आज इस अग्निकुंड के सामने खड़ी हूँ और ज्वालामुखी के सामने कह रही हूँ और सूर्य

तथा चन्द्रमा की साक्षी से कहती हूँ कि मेरी सफेद साड़ी में कोई दाग नहीं लगा है। हे अग्ने! मैं सच्ची होऊँ तो तू पानी बन जाना, नहीं तो मुझे जला कर भस्म कर देना।'

इस प्रकार कह कर सीता अग्नि कुण्ड में कूद पड़ी। दर्शकों के हृदय दहल उठे। कठोर हृदय भी काँप उठे। कितने ही सहृदय उस दृश्य को देख न सके। करुण चीत्कार उठने लगे परन्तु धन्य है शील तेरी महिमा! सच ही कहा है—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्,
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते,
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

अर्थात्- जिस मनुष्य में अखिल लोक का अत्यन्त प्रिय शील प्रादुर्भूत हो जाता है, उसके लिए अग्नि जल के समान हो जाती है, समुद्र साधारण गड्ढे के समान बन जाता है और मेरु पर्वत छोटी-सी शिला के समान-हो जाता है। उसके सामने सिंह हिरण के समान व्यवहार करता है, विषधर माला बन जाता है और विष अमृत बन जाता है।

सीता के अग्निकुंड में कूदते ही आग जल के रूप में परिणत हो गई। कुंड में ज्वालाओं के बदले कमल खिल उठे। देवों ने आकाश से पुष्प वर्षा की। उस समय सतीशिरोमणि सीता कमलासन पर ऐसी शोभायमान हुई जैसे लक्ष्मी देवी। सीता के दोनों बालक लव और कुश भी उस कुंड में कूद पड़े और दोनों अपनी प्यारी माता के दोनों बगलों में बैठ गये।

क्षण भर पूर्व जहाँ करुणा का साम्राज्य था, लोग हाय २ कर रहे थे, अब विस्मय के सागर में डूब गये। कौन कह सकता है कि उस समय कितने दर्शकों की आँखों से गंगा-जमुना न बही होगी !

सीता का पूर्वजन्म का मिथ्यादोषारोपण का पाप धुल गया। अब वह सर्वथा निर्दोष और निष्कलंक थी। यह निकाचित कर्म था जो कलंक लगाने से बँधा था और कलक लगने पर ही छूटा !

इस निकाचित कर्म के ही उदय से नाभिनन्दन भगवान् आदिनाथ को बारह महीनों तक आहार-पानी नहीं मिल सका था। इस संबंध में कहा है—

प्रभु आदिनाथ फिरे घर घर,
नहीं बारे मास तक आहार मिला।
नल राजा से वन-वास रहे,
फिर होनी क्या बतलावेगा ?
चाहे जितनी तू तदबीर करे,
तकदीर लिखा नही पावेगा ! ॥

खंधक मुनि के शरीर की जीते जी खाल उतारी गई और मुनिराज गजसुकुमाल के सिर पर दहकते अंगार रख दिये गये। यह सब किस का प्रभाव था ? निकाचित कर्मों का !

भाइयो ! शास्त्रकारों की अनन्त कृपा समझो कि उन्होंने अतीत काल के यह महान् चरित सहेज कर रक्खे और हम लोगों के नेत्र खोलने के लिए शास्त्रों में लिपिबद्ध कर दिये। इन वृत्तान्तों

से हम बहुत शिक्षा ले सकते है। जब सीता जैसी महती सती और महासत्त्व भगवान् ऋषभदेव जैसे लोकोत्तर पुरुष भी कर्मों के चक्कर से न बच सके तो साधारण जनों की क्या गिनती है ? कर्म बाँधते समय कुछ भी कठिनाई नहीं होती, बल्कि बड़े आनन्द के साथ बाँध लिये जाते है, परन्तु भोगते समय नानी याद आ जाती है ! अतएव भाइयो ! मैं बार-बार आपको चेतावनी देता हूँ कि पाप के पथ पर पैर बढाते समय सौ बार विचार करो और अपने आपको नियंत्रण में रक्खो। अपना भला चाहते हो तो चिकने कर्म मत बाँधो। जो कर्म बाँध चुके हो, उन्हें नष्ट करने के लिए तपश्चरण करो। जिसने मूर्खतावश भग पी ली है, वह उसके नशे से बचना चाहे तो दुनिया में ऐसी भी चीजें मौजूद है, जिनके सेवन से नशा नहीं चढ़ता। इसी प्रकार बद्ध कर्मों को निष्फल बनाने के लिए भी भगवान् ने एक उपाय बतलाया है और वह उपाय है-तपश्चरण करना।

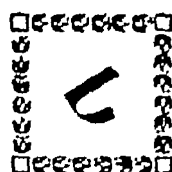
तो सच्चा शास्त्र वह है जिसके पठन एवं श्रवण से तपश्चरण के प्रति आन्तरिक रुचि और प्रीति जागृत हो जाय। पूर्वोक्त तीन बातों में तपश्चरण पहली है।

दूसरी चीज़ क्षमा और तीसरी चीज दया है। भगवान् के वचन क्षमा और दया की प्रेरणा करते हैं। अतएव जिन वचनो का श्रवण पठन और मनन अन्तरात्मा मे क्षमा और दया की दिव्य एवं उज्ज्वल भावनाएँ जागृत कर देता है, वह भगवान् के वचन हैं, चाहे वह किसी भी ग्रंथ में लिखे हों।

कई लोग कहते है, खूब खाओ, पीओ मौज करो, लड़ो, मारो और दुनिया को तहसनहस कर दो, तो भी पाप का बंध नहीं होता। पर निश्चित समझो कि यह मूर्खों के वचन हैं। यह उनके

वचन हैं जो आत्मा, पुनर्जन्म पाप-पुण्य को नहीं पहचानते। तुम ऐसे लोगों के धोखे में मत आओ। इस ठगाई में आओगे तो अपने ही पैर पर कुठाराघात कर लोगे। पापाचरण से बचो और कर्मों का निकाचित बंध न होने दो और दया तथा क्षमा भाव धारण करके शक्ति का गोपन न करते हुए तपस्या करो। यह कल्याण का मार्ग है। ऐसा करने वालों को आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है।

ब्यावर
३०-६-१६४७



देवत्व की कसौटी



स्तुतिः—

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभ-देव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गये जाएँ ?

प्रभो ! आपके मुख-चन्द्र का अवलोकन करने से जब हमारा अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो जाता है, जब आत्मा का कण-कण अनन्त ज्योति से उद्भासित हो जाता है और जब आत्मा

स्वयं ही आलोक पुंज बन जाता है, तब रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश की और दिन में सूर्य के प्रकाश की क्या आवश्यकता है ? आन्तरिक प्रकाश के सद्भाव में बाह्य प्रकाश की कोई अपेक्षा नहीं रहती। खेतों में बोया हुआ धान्य पक चुका हो और उसके कटने की तैयारी हो, उस समय यदि आकाश में बादल मँडरावे तो किसान को क्या लाभ? कुछ नहीं,हानि अलबत्ता हो सकती है। इसी प्रकार प्रभु का मुखारविन्द निहारने से जब हमारा अज्ञानान्धकार दूर हो गया तब सूर्य और चन्द्र के प्रकाश से क्या प्रयोजन है ?

तात्पर्य यह है कि संसारी जीव अपने नैसर्गिक अनन्त ज्ञान-दर्शन से, कर्मबन्ध के कारण वंचित होने से पदार्थों को देखने के लिए बाह्य प्रकाश की अपेक्षा रखता है। उसका ज्ञान-दर्शन परावलम्बी हो रहा है। परन्तु परमप्रकृष्ट चिदानन्दघन भगवान् ऋषभदेव के पावन दर्शन से कर्मबन्ध नष्ट हो जाता है। स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन को प्राप्त कर लेता है। उस दशा में उसे किसी भी बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं रहती है। जिनका ऐसा अलौकिक महात्म्य है, उन श्री ऋषभदेव भगवान् को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! जब भगवान् के द्वारा ही हमारा काम निकलता है तो दूसरों की सहायता चाहने अथवा उनके सामने दीनता दिखलाने या गिड़गिड़ाने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु कितने ही लोग अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्त्ति के लिए भगवान् का शरण छोड़ कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। कभी भैरोंजी की शरण में जाते है तो कभी भोपा के आगे घुटने टेकते है। कोई पीर साहब के सामने अपनी पीर (पीड़ा) प्रकट करते हैं तो कोई किसी और ही की शरण पकड़ते हैं। मगर यह सब अज्ञान का परिणाम है।

जिसकी आत्मा में शुद्ध सम्यक्त्व की जागृति हो गई है, वह वीत-राग सर्वज्ञ देव के अतिरिक्त किसी अन्य की शरण ग्रहण नहीं करता। वह जानता है कि जिनेन्द्र देव देवाधिदेव है। देवता भी जिनेन्द्र भगवान् की चरण-रज अपने मस्तक पर लेकर कृतार्थता अनुभव करते है। जब पुण्ययोग से उनका अवलम्बन हमें प्राप्त हो गया है, तो फिर दूसरों के सामने मस्तक रगड़ने से क्या लाभ है ? कौन बुद्धिमान् ऐसा होगा जो राजाधिराज का शरण त्याग कर उनके सेवकों की शरण अंगीकार करने को कोशिश करेगा ?

जिनमें देव के वास्तविक लक्षण नहीं हैं, फिर भी जगत में अज्ञानी जन जिन्हें देव मानते हैं, वह कुदेव कहलाते हैं। कुदेक की श्रद्धा, भक्ति और पूजा करना मिथ्यात्व है। कहा भी है—

अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरौ च या।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥

अर्थात्-जो वस्तुतः देव नहीं है, जिसमे देव के लक्षण विद्यमान नहीं है, उसे देव समझना, गुरु के लक्षणों से विहीन पुरुष को गुरु समझना और अधर्म को धर्म मानना मिथ्यात्व है, क्योंकि यह श्रद्धान विपरीत है।

आप जानते हैं कि संसार में जितने भी पाप हैं, उन सब में मिथ्यात्व घोर पाप है। यह पाप सब का बाप है। इसी कारण अठारह पापों में उसे सब से बड़ा गिना गया है। वास्तव में यह सभी पापों का सिरमौर है। इस पाप को सब से बड़ा पाप क्यों कहा गया है, यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए।

मिथ्यात्व जीव की बुद्धि को विपरीत, बनो देता है। इसकी मौजूदगी मे जीव इतना भ्रमित हो जाता है कि वह पाप को पाप ही नहीं समझता और इस कारण न उससे बचने का प्रयत्न करता है और न उसके लिए पश्चात्ताप अथवा खेद अनुभव करता है। अन्य पापों में यह विशेषता नहीं है। अगर किसी में मिथ्यात्व नहीं है और वह हिंसा, असत्य या चोरी आदि कोई पाप करता है तो उसे बुरा समझता है। उसके लिए मन ही मन या प्रकट रूप मे अपने-आपको धिक्कारता है। वह पापाचरण करके भी पापाचरण को हेय समझतो है। इसका परिणाम यह होता है कि उसकी आत्मा पापों में लिप्त नहीं होती। उसकी आत्मा में पाप की जड़ पाताल तक-गहराई में नहीं पहुँच पाता। उसके सुधार की संभावना रहती है और निश्चत है कि समय पाकर वह सन्मार्ग पर आएगा और पापों का सर्वथा परित्याग कर देगा।

मगर मिथ्यादृष्टि में यह बात नहीं होती। वह पाप को पाप नहीं मानता, बल्कि अनेक अवसरों पर उसे पुण्य मान बैठता है। ऐसी स्थिति में उसकी आत्मा पापों में पूरी तरह लिप्त हो जाती है और पाप की कालिमा इतनी अधिक हो जाती है कि उसका धुलना असंभव होता है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि जब तक मिथ्यात्व का पाप दूर नहीं होता, तब तक किसी भी दूसरे पाप के दूर होने की संभावना नहीं की जा कसती।

मिथ्यात्वपंकमग्नो, जीवो विपरीतदर्शनो भवति।
श्रद्धत्ते न च धर्मं, मधुरमपि रसं यथा ज्वरितः॥

अर्थात् मिथ्यात्व की कीचड़ में फँसा हुआ जीव विपरीत श्रद्धा वाला होता है। उसकी समझ-बूझ उलटी हो जाती है। वह

भलाई में बुराई और बुराई में भलाई देखता है। धर्म पर उसकी श्रद्धा नहीं होती। जैसे ज्वर ग्रस्त पुरुष मधुर रस को भी कटुक समझता है, उसी प्रकार मिथ्या दृष्टि पुरुष धर्म को पाप और पाप को धर्म समझता है। और भी कहा है—

पटोत्पत्तिमूलं यथा तन्तुवृन्दं,
घटोत्पत्तिमूलं यथा मृत्समूहः।
तृणोत्पत्तिमूलं यथा तस्य बीजं,
तथा कर्ममूलं च मिथ्यात्वमुक्तम् ॥

जैसे तंतुओं-धागों-के समूह से वस्त्र की उत्पत्ति होती है, जैसे मिट्टी के पिण्ड से घट की उत्पत्ति होती है और जैसे बीज से घास की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व से समस्त पापों की उत्पत्ति होती है।

यहाँ मिथ्यात्व के संबंध मे अधिक विस्तार मे नहीं जाना है। संक्षेप में इतना ही कहना है कि मिथ्यात्व से पापों का उदय और विकास होता है और पापोदय से इष्ट वस्तु की प्राप्ति न होकर प्राप्ति में बाधा होती है। ऐसी स्थिति में कुदेव पूजा करके किस प्रकार इष्ट की प्राप्ति की जा सकती है, यह प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को समझना चाहिए।

प्रश्न किया जा सकता है कि सच्चा देव किसे समझना चाहिए और कुदेव किसे मानना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर सक्षेप में यह है कि जिसमें मोह और अज्ञान का लेश भी अवशेष न रहा है, जो वीतरागता और ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका हो, वही परमात्मा है और वही सच्चा देव है। कहा भी है—

महारागो महाद्वेषो, महामोहस्तथाऽपरः ।
कषायाश्च हता येन, महादेवः स उच्यते ॥

अर्थात् जिस परम पुरुष ने महान् राग, द्वेष, मोह और कषायों को जीत लिया है और अपनी आत्मा को वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह और वीत कषाय बना लिया है, वह महादेव कहलाता है।

महादेव के नाम से किसी को चौंकने की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा के अनन्त नाम हैं, अतएव नाम का आग्रह न रखते हुए हमारी दृष्टि गुणों पर होनी चाहिए। जिसमें देव के सच्चे लक्षण विद्यमान हैं, वही वास्तव में देव है, फिर उसका नाम चाहे कुछ भी हो! जैनाचार्यों की प्राचीन काल से यही दृष्टि रही है। उन्होंने साफ शब्दों में घोषणा की है—

भवबीजांकुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

अर्थात्—जिसने भव-भ्रमण के हेतुभूत रागादि समस्त दोषों को नष्ट कर दिया है, उसी परमपुरुष को हमारा नमस्कार है, चाहे उसे ब्रह्मा कहो, विष्णु कहो, हर—महादेव कहो अथवा जिन कहो। या किसी और ही नाम से पुकार लो!

सच्चे देव की व्याख्या कर देने पर भी एक जिज्ञासा बनी रहती है और वह यह है—कि 'हम साधारण प्राणी किस प्रकार निश्चय कर सकते हैं कि अमुक ने रागादि दोषों को जीत लिया है या नहीं जीत पाया है? राग, द्वेष, मोह और अज्ञान आदि दोष चर्मचक्षु से दिखाई नहीं देते। ऐसी स्थिति में किसे रागी, द्वेषी, मोही और अज्ञानी मानें और किसे वीतराग और सर्वज्ञ समझें?'

शंका सही है और उसका उत्तर देना आवश्यक है। भाइयो ! जो वस्तु चर्म चक्षु से प्रतीत नहीं होती. उसका अस्तित्व जानने के उपाय भी हमारे पास हैं, क्रोध, अहकार, कपट और लोभ भी तो आँखो से दिखाई नहीं देते, फिर भी हम जान लेते हैं कि इस मनुष्य में क्रोध बहुत है या कम है, यह बड़ा अहकारी है, या कपटी नहीं है अथवा यह लोभी है। यह बातें हम मनुष्य के कार्यों से, चेष्टाओ से और बाहर के चिह्नो से जानते हैं, फिर यह भी क्यो नहीं जान सकते कि अमुक देव सराग है या वीतराग है ? देवों के बाह्य रूप पर आप विचार कीजिए, पता चल जायगा। आचार्यों ने ऐसे लक्षण बतला भी दिये हैं, जिनसे आपको यह मालूम हो सकता है—

प्रमदा भाषते कामं, द्वेषमायुधसंग्रहः ।
जपमाला ह्यसर्वज्ञं, शौचाभावं कमण्डलुः ॥

अर्थात्-जिसके पास स्त्री है, जो स्त्री को अपनी बगल मे बिठलाये रहता है अथवा आधे अंग मे रखता है, समझ लीजिए कि उसकी कामवासना नष्ट नहीं हुई है। उसने राग पर विजय प्राप्त नहीं की है। जो सुदर्शनचक्र, त्रिशूल, फरसा आदि शस्त्र हाथ मे लिये रहता है, उसमें द्वेष भावना भरी हुई है। वह किसी को अपना शत्रु समझता है और उसके प्राण लेने की तैयारी में हैं, या उसे अपने प्राणों का भय है-वह डरपोक है। इन्हीं दो कारणों से शस्त्र धारण किये जाते है। इसके सिवाय जिसके हाथमें जप करने के लिए रुद्राक्ष आदि की माला हो, उसे असर्वज्ञ मान लेना चाहिए, जाप की संख्या याद रहे, जपते-जपते भूल न जाएँ इसी उद्देश्य से माला रक्खी जाती है। याद रखना और भूलना असर्वज्ञ का धर्म है,सर्वज्ञ का नहीं। सर्वज्ञ पुरुष को न तो कोई चीज याद करनी पड़ती है

और न वह कोई बात भूल सकता है। अतएव हाथ में ली गई माला असर्वज्ञता की सूचक है। इसी प्रकार कमण्डल शौच के अभाव को सूचित करता है। जो अशुचि है, उसी को शुचि होने की आवश्यकता होती है!

अभिप्राय यह है कि स्त्री, शस्त्र, जपमाला और कमण्डलु आदि वस्तुएँ जिनके पास रहती है, उन्हें वीतराग और सर्वज्ञ नहीं माना जा सकता।

इसके विपरीत जिस पूर्ण पुरुष में यह सब बातें न हों, उसे सर्वज्ञ और वीतराग माना जा सकता है। वीतराग की पहचान यह समझ लीजिए:—

प्रशमरसनिमग्नं दृष्टियुग्मं प्रसन्नं,
वदनकमलमङ्कं कामिनी-संगशून्यम्।
करयुगमपि यत् ते शस्त्रसम्बन्धवन्ध्यम्,
तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव॥

जिसकी दृष्टि प्रशम-रस में डूबी हुई है, अर्थात् जिसके दोनों नेत्रों में अत्यन्त शान्ति विद्यमान है, जिनका मुख कमल प्रसन्न होता-उसमें क्रोध, राग, द्वेष आदि कोई भी विकार नहीं होता, जिनके अंक (गोद) में किसी भी कामिनी का संसर्ग नहीं है-और जिनके हाथा में किसी भी प्रकार के शस्त्र नहीं पाये जाते, वह वीतराग इस जगत् में देव हैं।

इस प्रकार कौन देव रागी-द्वेषी और मोही है तथा किसमें वीतरागता है, यह जानने की कसौटी शास्त्रकारों ने हमारे सामने पेश कर दी है। इस कसौटी पर कस कर देवों की परीक्षा करनी

चाहिए और जो वीतराग देव हैं-जिनेन्द्र हैं, उनकी ही शरण ग्रहण करना चाहिए।

जिसका जैसा लक्ष्य होता है, जिसे जैसा बनने की इच्छा होती है, वह उसी प्रकार के आदर्श को अपने सामने रखता है। अगर आपको वीतराग बनना है तो वीतराग देव ही आपके आदर्श होने चाहिए। जिसे रागी, द्वेषी और मोही बनना है, उसे तो किसी देव को आदर्श बनाने की आवश्यकता ही नहीं है। आत्मा में राग और द्वेष आदि विकार तो अनादि काल से भरे हुए है। जगत् के समस्त जीवों में भी यह विकार विद्यमान हैं। फिर उनका विकास करने के लिए किसी देव की आराधना करने की आवश्यकता नहीं है।

भाइयो! भगवान् कौन है और उसमें क्या विशेषताएँ होती हैं, यह बात जानने के लिए मैं थोड़ा और विवेचन कर देता हूँ। जिसमें पाँच गुण विद्यमान हो, उसी को भगवान् या ईश्वर कहना उचित है। वह पाँच गुण कौन-से हैं? जिस सिलसिले से मैं पाँच गुण बतलाता हूँ, उसी सिलसिले से आप उन्हें रख लेने का प्रयत्न करें।

ईश्वर मे पहला गुण होना चाहिए सर्वज्ञता, अर्थात् वह तीनो कालों और तीनों लोकों की समस्त वस्तुओं को, उनकी समस्त पर्यायों और गुणों को, युगपत् हस्तामलक के समान जानने वाला होना चाहिये। कोई भी बात उससे छिपी हुई नहीं होनी चाहिये।

ईश्वर में दूसरा गुण होना चाहिये सर्वदर्शीपन। अर्थात् जैसे वह ज्ञान के द्वारा समस्त भूत भविष्यत् और वर्त्तमान के पदार्थों के विशेष धर्मों को जानता है, उसी प्रकार उनके सामान्य गुण को भी जानने वाला होना चाहिए।

एक आदमी कहने लगा—महाराज ! दुनियां में एक वस्तु ऐसी है कि उसे ईश्वर भी नहीं देखता।

पूछा गया—कौनसी वस्तु है वह ?

उसने उत्तर दिया—स्वप्न।

स्वप्न को ईश्वर नहीं देखता। भाइयो, बोलो—क्या ईश्वर स्वप्न देखता है ? वास्तव में जो गफलत मे पड़ा होता है, वही स्वप्न देखता है, जो सदा सावधान है, जागृत है, कभी निद्राधीन नहीं होता, वह स्वप्न कैसे देखेगा ? हाँ, दुनिया को जो स्वप्न आता है, उसे वह अवश्य देखता है। दुनिया को सपना आ रहा है और ईश्वर ही जान रहा है। ईश्वर खुद को स्वप्न आते नहीं देखता, क्योंकि स्वप्न होता ही नहीं है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि सर्वज्ञ उन्हीं वस्तुओं को जानता है और सर्वदर्शी उन्हीं वस्तुओं को देखता है, जो सद्रूप हो, विद्यमान हो और जिनकी हस्ती हो। जिस वस्तु का अस्तित्व ही नहीं, उसे जानना और देखना उसके लिए आवश्यक नहीं। अन्यथा कोई मनुष्य यह भी कहने लगेगा कि सर्वज्ञ मेरे सिर पर सींग नहीं जानता-देखता, अतएव वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं है ! मगर जो है ही नहीं, उसका जानना और देखना भी नहीं हो सकता। उसे जानने-देखने वाला तो भ्रान्त होता है। सर्वज्ञ भ्रान्त नहीं होता, अतएव वह सत् पदार्थों को जानता-देखता है और असत् पदार्थों को नहीं जानता-देखता। हाँ, जिनका अभाव है, उनका अभाव अवश्य जानता है।

अच्छा, ईश्वर का तीसरा गुण है अनन्तशक्ति। कई लोग कहते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है परन्तु हमारा कहना है कि

अनन्तशक्तिमान् हैं। सर्वशक्तिमान् अनन्तशक्तिमान् मे बड़ा भेद है। ईश्वर में यदि समस्त शक्तियाँ मानी जाएँ तो यह भी मानना पड़ेगा कि वह अपने ईश्वरत्व का विनाश भी कर सकता है—उसमें सामान्य ससारी प्राणी बनने की भी शक्ति विद्यमान है! इसके अतिरिक्त यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि ईश्वर अपना सरीखा दूसरा ईश्वर भी बना सकता है! किन्तु यह दोनों बातें सर्वशक्तिमान् ईश्वर मानने वाले स्वीकार नहीं कर सकते। ईश्वर में यह दोनों शक्तियाँ मौजूद नहीं हैं। ऐसी अवस्था में अनन्त शक्तियाँ मानना ही उचित प्रतीत होता है। ध्यान में रहना चाहिए कि ईश्वर में गणना-संख्या की दृष्टि से भी अनन्त शक्तियाँ हैं और परिणाम के लिहाज से भी। ईश्वर या परमात्मा की एक-एक शक्ति अनन्त-अनन्त अर्थात् अपरिमित है।

ईश्वर में चौथा गुण पूर्णता होना चाहिए, अर्थात् वह पूर्ण हो, अपूर्ण न हो। आत्मा के जो स्वाभाविक गुण हैं, वे सब पूर्णता पर पहुँच चुके हों उनमें अधूरापन न हो। आत्मा और परमात्मा में जो भिन्नता है, वह यही कि आत्मा में स्वाभाविक गुण अपूर्ण या अविकसित होते हैं, जबकि परमात्मा में विकसित। या आत्मा और परमात्मा में मूलतः कोई गुणवैषम्य नहीं है। दोनों के गुण वही के वही हैं। जिसके गुण साधना के द्वारा विकास को प्राप्त हो गए, वही परमात्मा कहलाने लगा।

ईश्वर का पांचवा गुण अनन्त अव्याबाध सुख है। परमात्मा वही कहला सकता है जिसकी आत्मा अनन्त एव शाश्वत सुख से सम्पन्न हो गई है। उसका सुख निराबाध होता है। उसके सुख में दुःख का अंश भी नहीं होता। वह सदा सुखी होता है। अगर उसे भी दुःख भोगना पड़े तो फिर ऐसा ईश्वर ही क्या! और वह किस काम का!

यह ईश्वर के पांच गुण है। जिसमें इन पांचो की पूर्णता है, वही वास्तव में ईश्वर है। उसी को भगवान् मानना चाहिये। किन्तु कई लोग ईश्वर में दो गुण और मानते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता भी है और हर्त्ता भी है उसी ने ब्रह्माण्ड की रचना की है और वही उसका संहार भी करता है।

किन्तु यदि सूक्ष्म रीति से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि यह दो गुण ईश्वर में मानने से उसके पूर्वोक्त सभी गुणों पर पानी फिर जाता है। उसके सर्वज्ञ-सर्वदर्शीपन मे भी बाधा आती है, पूर्णता में भी बाधा आती है, सुख में बाधा आती है, और सर्वशक्तिमान होना भी बाधित हो जाता है। कैसे, सो थोड़ा विचार कर देखिए।

यदि ईश्वर ने जगत् बनाया था तो बतलाइये कि जगत की बनावट में कोई त्रुटि रह गई थी या नहीं? अगर कोई त्रुटि रह गई थी तो उसने जानते-बूझते त्रुटि रक्खी थी अथवा अनजान में रह गई थी? अनजान में, भूल से, कोई त्रुटि रह गई हो तब तो वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं ठहरता, क्योंकि भूल अल्पज्ञ से ही होती है, सर्वज्ञ से नहीं। अगर जानते-बूझते त्रुटि रही तो क्या उसमे उसे हटा देने की शक्ति नहीं थी? अगर हटा देने की शक्ति नहीं थी तो वह सर्वशक्तिमान कैसे रहा? अगर त्रुटि सुधार लेने की शक्ति होने पर भी उसने अपने मनोरंजन के लिए वह त्रुटि दूर नहीं की तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसे पूर्ण सुख प्राप्त नहीं है, तभी तो सुख पाने के लिए वह बालको की तरह चेष्टाएं करता है। इन सब के विपरीत यदि यह माना जाय कि उसके बनाये ब्रह्माण्ड मे कोई त्रुटि नहीं थी, तो बतलाना कठिन हो जायगा कि फिर सृष्टि का संहार करने की क्या आवश्यकता पड़ी।

कहा जा सकता है कि जब ईश्वर ने सृष्टि रची, तब वह पूरी तरह त्रुटिहीन थी; मगर बाद में उसमें त्रुटियाँ उत्पन्न हो गईं, इसी कारण ईश्वर को उसका विनाश करना पड़ा। लेकिन यह बचाव भी लँगड़ा है। ईश्वर सर्वज्ञ होने के कारण पहले ही जान सकता था कि मेरी सृष्टि में अमुक-अमुक त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाएँगी और वह सर्वशक्तिमान् होने के कारण उन्हें उसी समय सुधार भी कर सकता था। मगर उसने ऐसा नहीं किया, इससे यह सिद्ध होता है कि या तो उसे उन आगे होने वाली त्रुटियों का पता ही नहीं था अथवा वह उन्हें सुधारने में असमर्थ था! इस तरह भी ईश्वर की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता खंडित हो जाती है।

कदाचित् यह कहा जाय कि ईश्वर सिर्फ कर्त्ता है, हर्त्ता नहीं है, तो हर्त्ता कोई दूसरा मुकर्रर करना पड़ेगा। जब एक बनाएगा और दूसरा बिगाड़ेगा तो एक के बदले दो ईश्वर मानने पड़ेंगे और उन दोनों में लड़ाई हो जाना भी संभव है! बनाने वाला कहेगा कि मेरी बनाई सृष्टि को तू क्यों बिगाड़ता है? दूसरा कहेगा कि मेरी बिगाड़ी हुई को तू बनाने वाला कौन होता है? इस प्रकार उन दोनों में टक्कर होने से जगत् में बड़ी भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी।

अच्छा, यह विचार करें कि ईश्वर ने धर्मी बनाए कि पापी बनाए? अगर कहो कि सब धर्मी ही धर्मी बनाए तो फिर अधर्मी कहाँ से टपक पड़े? और उन धर्मियों के लिए शास्त्रों की क्या जरूरत थी?

ईश्वर सर्वज्ञ होने के कारण पहले ही जान सकता है कि अमुक प्राणी पाप करेगा या धर्म करेगा। फिर वह पापी जीवों को क्यों उत्पन्न करता है? पापी जब पाप करने का

विचार करते हैं, तभी ईश्वर उन्हे क्यों नहीं रोक देता ? क्या कारण है कि वह पहले पापियो के मन मे पाप करने की प्रेरणा उत्पन्न करता है, उन्हे पाप करने देता है और, जब वे पाप कर चुकते है तो उन्हे दंड देने को तैयार हो जाता है ? अजमेर के चीफ कमिश्नर को अगर मालूम हो जाय कि दो सौ आदमी बलवा करने वाले हैं तो क्या उसे रोकने की शक्ति होने पर भी वह बलवे को नहीं रोकेगा ? अगर वह नही रोकता तो क्या कर्त्तव्य निष्ठ शासक कहला सकता है ? वह जानता-बूझता पहले बलवा होने दे और फिर बलवाखोरों को पकड़-पकड़ कर दंड दे तो बुद्धिमान् कहां गिना जा सकता फिर ईश्वर तो दयालु भी कहा जाता है। सताने वालों पर और सताये जाने वालों पर उसे दया आनी चाहिए और सताने की क्रिया को उसे रोक देना चाहिए। ऐसा न करने पर भी ईश्वर दयालु कैसे कहा जाय ? कैसे कर्त्तव्यनिष्ठ माना जाय ?

भाईयो ! तनिक निष्पक्ष दृष्टि से विचार कीजिए कि यह सृष्टि अगर सर्वशक्तिशाली, सर्वज्ञ और दयालु ईश्वर की बनाई होती तो क्या घोर दुःखमय हो सकती थी ? यहाँ जीवो को नाना प्रकार के दुःख हैं। असख्य आधियाँ और व्याधियाँ सताती रहती हैं। कोई अकाल में ही काल के गाल मे समा जाता है। उसकी तरुणी पत्नी और वृद्धा माता घोर संकट और दुःख मे पड़ जाती है। तत्काल जन्मे हुए शिशु को मौत हो जाती है। और भी असख्य घटनाएँ ऐसी होती है, जिन्हे देख-सुन कर दिल दहल उठता है ! क्या इन सब का कर्त्ता ईश्वर हो सकता है ? कदापि नहीं। अतएव जो लोग ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता-हर्त्ता कहते हैं, वे उसके ईश्वरत्व को बट्टा लगाते हैं, कर्त्ता-हर्त्ता मानने से उसके पाँचो गुण नष्ट हो जाते हैं और वह अत्यन्त निष्ठुर, कर्त्तव्यविमुख, ज्ञानहीन

और असमर्थ सिद्ध हो जाता है। इन दोषों से बचाने के लिए आवश्यक है कि उसे कर्त्ता-हर्त्ता न माना जाय।

ईश्वर शुद्ध और पवित्र है। वह किसी का अनिष्ट न चाहता है और न करता है। वह परम वीतराग, निर्विकार और निजानन्द से परिपूर्ण है।

जो शुद्ध और पवित्र ईश्वर का स्मरण करता है, उसकी बुद्धि शुद्ध होती है। दुराचारियों का स्मरण करने वाले की बुद्धि अशुद्ध होती है। दुराचारियों का स्मरण करने वाले की बुद्धि बिगड़ जाती है तो ईश्वर की याद करने वाले की बुद्धि पवित्र क्यों न हो जाएगी? इसी लिए संतों का सदा से ही यह उपदेश रहा है कि ईश्वर को याद करो। परन्तु याद करने से पहले उसके शुद्ध स्वरूप को समझ लो। यह जान लो कि—

न रागी हो न द्वेषी हो, चिदानन्द वीतरागी हो,
वो सब विषयों का त्यागी,
जो ईश्वर हो तो ऐसा हो।

जिसमें राग न हो, द्वेष न हो, आत्मिक आनन्द की पूर्णता हो, वीतराग हो, समस्त विषयों से जनित सुख का त्यागी हो, वही वास्तव में ईश्वर है। कई लोग कहते हैं कि आज तो भगवान् ने कान से बात सुन ली। किन्तु कानों से सुनने वाला ईश्वर ही नहीं है। पूर्ण ब्रह्म का ज्ञान त्रिलोकव्यापी होता है। उसे किसी इन्द्रिय अथवा मन की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। इन्द्रिय-जन्य ज्ञान सदैव अपूर्ण होता है और परोक्ष होता है। ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, क्योंकि वह साधा आत्मा से ही उत्पन्न होता है।

कोई कहता है—भगवान् हमारी तरफ देखते हैं। तो क्या उनके पीछे अंधेरा है ? अरे मूर्ख ! भगवान् तो अनन्तचक्षु है। वे सब तरफ देखते है, मगर उनका देखना आंखों से नहीं, आत्मा से होता है। एक मशाल है और वह जल रही है। उसका प्रकाश चारों ओर फैलता है। सब तरफ रोशनी है। यह नहीं कि किसी एक दिशा मे प्रकाश है और किसी तरफ अधेरा है। इसी प्रकार ईश्वर का ज्ञानालोक लोक और अलोक मे सर्वत्र व्याप्त है।

इसी प्रकार ईश्वर जीभ से चखता है और त्वचेन्द्रिय से स्पर्श को जानता है, नाक से सूंघता है, इत्यादि कहना भी मिथ्या है। ऐसा कहने वाले ईश्वर-पद का लोप करने वाले हैं। वस्तुतः ईश्वर सब कुछ जानने वाला और सब कुछ देखने वाला है। उससे कोई बात छिपी नहा है। कहा है—

राग द्वेष अज्ञानादिक, दोप न जिसमें पाते हैं।
उस वीतराग सर्वज्ञ प्रभु के, सब जग मिल गुण गाते हैं।

यदि ईश्वर का किसी पर राग होगा तो किसी पर द्वेष भी होगा; क्योंकि राग-द्वेष का जोड़ा है। जिस पर राग है, वह गुनहगार भी होगा तो उसे स्वर्ग में भेज देगा। जिस पर द्वेष है, वह गुनहगार न होगा तो भी उसे नरक में धकेल देगा ! ऐसा ईश्वर क्या साधारण मनुष्य से कुछ बढ़ कर माना जाता है !

वास्तव में ईश्वर की महिमा है कि वह पूर्ण वीतराग है। वह भक्ति करने से प्रसन्न नहीं होता। भक्त ईश्वर की जो भक्ति करता है, अपने लिए करता है, अपनी भलाई के लिए करता है, आत्मशुद्धि के लिए करता है, भक्ति करने से पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु उसी प्रकार जैसे—

'मैं बढ़ाऊँ ज्योति' अंजन चाहता न कदापि है,
किन्तु सेवन से दृगों की, शक्ति बढ़ती आप है,

अंजन को इच्छा नहीं होती कि मै अपने सेवन करने वाले की आँख की ज्योति बढ़ा दूं। सेवन करने वाले पर वह प्रसन्न हो जाता है, ऐसा भी नहीं है। फिरभी जो अंजन का सेवन करता है उसकी ज्योति स्वतः बढ़ जाती है। यह अंजन की विशेषता है। इसी प्रकार ईश्वर निरीह, निष्काम और वीतराग है। वह अपनी भक्ति से प्रसन्न होकर नही चाहता कि मैं भक्त का भला करूँ, तथापि भक्ति की शक्ति ही ऐसी है कि भक्त का भला हो जाता है।

कई लोग कहते हैं अजी, ईश्वर तो दया का सागर है चाहे जैसा पाप करो, गुनाह करो, वह माफ कर देगा, मगर यह धारणा भ्रमपूर्ण है। मान लीजिए, एक फरियादी किसी हाकिम के पास आता है और कहता है-'हुजूर, यह मेरे हजार रुपये नहीं देता, यह गुनहगार है, इसके उत्तर में हाकिम कहता है-'मैं दयालु हूं, इसे माफ करता हूँ।' कहिए, ऐसे हाकिम को आप क्या कहेंगे? लेने वाला माफ नहीं करता तो हाकिम को माफ करने का क्या अधिकार है? लेने वाला तो यही कहेगा कि-'यदि आप माफ करते हैं और दयालु हैं तो अपनी जेब से निकाल कर मेरे रुपये दे दीजिए! मेरे रुपयों के लिए माफी देने वाले आप कौन होते है? तो जिसकी हानि हुई है, वह तो माफ नहीं करता है, फिर ईश्वर कैसे माफ कर सकता है!

जो गुना हो माफ तो दोजख कहो किसके लिये?
माफ का हर वार तू लेना बहाना छोड़ दे।
ए दिला! दुनियाँ फना, इस में लुभाना छोड़दे॥

भाई ! यदि गुनाह माफ हो जाएंगे तो दोजख बनाने की जरूरत ही क्या थी ? अच्छे काम करने वाले तो स्वर्ग में जाएंगे और गुनाह करने वालों के गुनाह माफ हो जाएंगे, फिर नरक तो खाली ही पड़ा रहेगा ! अगर सरकार खोटे कर्म करने वालों को क्षमा कर दिया करे तो कारागार क्यों बनवाए ?

अतएव भाइयो ! झूठी आशा मत बांधो। अपने आपको भ्रम में मत डालो। धोखे में नहीं पड़ना है तो पापों से बचो। अरे कुछ तो सीखो ! कहा है—

पैरों से चलना जब बालक न सीखे,
तो माँ-बाप कब तक उठावेंगे ?
तुम्हें कहाँ तक हम समझावेंगे ?

बालक अठारह वर्ष का हो जाय और फिर भी कहे—ऊँ-ऊँ-ऊँ हमें तो गोदी में ले लो ! हमसे चला नहीं जाता, तो माँ-बाप यही कहेंगे कि हम तुम्हें कहाँ तक उठाते रहें ! इसी प्रकार जब तक तुम स्वयं ज्ञानवान् नहीं बनोगे, कैसे काम चलेगा ? हम कहाँ तक तुम्हारे पास बैठे रहेंगे ? ऐसी बातों का ज्ञान तो तुम्हें भी होना ही चाहिये।

जब हम सम्मेलन के लिए आ रहे थे तो रास्ते में होल्कर रियासत का सेंधवा नामक ग्राम मिला। वहाँ हम ठहरे। हमारे पास एक भिक्खु आया और कहने लगा—ईश्वर ऐसा करता है, ऐसा नहीं करता है, यों दड देता है, इत्यादि। मैंने उस भाई से कहा-भाई ! जो तू प्रश्न कर रहा है तो यह समझ कि ईश्वर किसे कहते हैं ? या तो तू बता दे या मुझसे समझ ले। आखिर मैंने उसे

ईश्वर के यह पाँच गुण बतलाए और कहा-इन्हे ठीक ढंग से याद करलो। उसने पाँचों गुण सही याद कर लिये। तत्पश्चात् मैंने उसे समझाया कि यदि ईश्वर को कर्त्ता-हर्त्ता मानते हो तो ईश्वर के यह पाँचों गुण नष्ट हो जाते हैं।

अन्त में मैंने उससे पूछा-कहो, कुछ समझ में आता है? तब उसने विनम्र भाव से कहा-मैं पचास वर्षों से इस उधेड़ बुन में फँसा हुआ था। लेकिन आज़ मेरी दलीले गलत साबित हो गई और मुझे ईश्वर का सच्चा ज्ञान हो गया।

भाइयों! आप लोग भी समझो। आपको समझने की बुद्धि मिली है। बुद्धि का उपयोग करो। ईश्वर अपराधों और पापों को क्षमा करने लगे तो नरक किसके लिए हैं? पापी पाप करता जा रहा है और कहता है-ईश्वर क्षमा कर देगा! यह बहाना है, मिथ्या विचार है, आत्म प्रतारणा है! नरक से बचना है तो पापों से बचो।

कोई कहता है-ईश्वर है ही नहीं; होता तो हमारी मदद क्यों न करता? अरे पापी! तू पाप करके नरक में जा रहा है तो कहता है कि ईश्वर है ही नहीं!, क्यो कि तू स्वर्ग में जाना चाहता है! तू स्वयं पत्थर मारकर अपना कपाल फोडता है और फिर ईश्वर को दोप देता है कि उसने मेरी मदद क्यों नहीं की! भली समझ है तेरी यह तेरा कसूर है या ईश्वर का? क्या ईश्वर आकर तेरा हाथ पकड़ लेता? क्या समझ रक्खा है ईश्वर को!

आप में समझ होना चाहिए। बुद्धि होनी चाहिए। प्रेम और उत्साह होना चाहिए। ईश्वर को अभाव नहीं है, मगर वह तुम्हारा गुलाम नहीं है कि तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार नाचता फिरे। ईश्वर के विषय में जैनों का क्या मन्तव्य है?

ईश्वर वादी जैन सदा, अनीश्वरवाद मिटाता है,
आत्मा को ईश्वर होने की, यह युक्ति साफ बताता है।

कोई-कोई कह बैठते है कि जैन लोग तो ईश्वर मानते ही नहीं। मगर ऐसा कहने वाले या तो जैन धर्म को समझते ही नहीं, अथवा समझ कर भी जनता को अंधेरे मे रखना चाहते है। ऐसी स्थिति मे वास्तविक सिद्धान्त उनकी समझ मे आ ही कैसे सकता है ? क्योकि कहा है:—

छप्पर से खप्पर पड़ा, गंडक भौंका एक।
एक भुकता अनेक भुखा, सागे भुका सो एक॥

किसी छप्पर के नीचे एक कुत्ता बैठा था। चील के जरिए एक कवेलु नीचे गिरा। कुत्ते को लगा तो वह भौंका-भुस ! पास वाला दूसरा कुत्ता भी भौंक उठा और उसके पास वाला तीसरा भी ! इस तरह गली और चौराहे के सभी कुत्ते भुस भुस करने लगे-एक दूसरे को देखा देखी। इसी प्रकार दुनिया देखा देखी में पड़ी है। वह असली बात को नहीं समझती। जैन सिद्धान्त को समझे बिना ही लोग उसे अनीश्वरवादी कहते है, किन्तु जैन सिद्धान्त अनीश्वरवाद का विरोध करता है। जो ईश्वर को नहीं मानता, वह मिथ्यादृष्टि है। जैनधर्म ईश्वर को सत्ता स्वीकार करता है और साथ ही आत्मा परमात्मा किस प्रकार बन सकती है, यह युक्ति भी बतलाता है।

बहुत से बालक इकट्ठे होकर खेल खेलते हैं। एक मुखिया बन जाता है और कहता है-जैसा मैं कहूँ वैसा ही कहना। गलत

कहोगे तो खोपड़ी तोड़ दूंगा । फिर वह कहता है-'बोलो दाल तुअर की !'

सब कहते हैं-'दाल तुअर की !'

'बोलो-दाल मूंग की !'

'दाल मूंग की !'

'बोलो दाल चने की !'

'दाल चने की !'

'बोलो-दाल गेहूं की !'

'दाल गेहूँ की !'

लेकिन गेहूँ की दाल कहने वालों की खोपड़ी की मरम्मत हो जाती है, क्योंकि उन्होंने गलत कह दिया ! तो जो देखादेखी करके गलत बात कहता है, उसकी खोपड़ी की मरम्मत होती है । किसी को बुरा-भला कहने से, बदनाम करने से काम नहीं चलता ! काम चलता है न्याय से और उस न्याय के पीछे सत्य का बल होना चाहिए। न्याय के पार आओगे तो सुख पाओगे, नहीं तो चौरासी का लम्बा-चौड़ा मैदान पड़ा है। हम कहते हैं मान जाओ और अगर तुम नहीं मानते तो अन्त में यही कहना पड़ेगा कि चौरासी और भुगत लो ! कीड़ा बनो, मकोड़ा बनो और नरक की यातनाएँ भोगो; फिर समझना ! कभी न कभी तो संतों की बात समझनी और माननी ही पड़ेगी जब ऐसा है तो पहले ही क्यों नहीं समझ लेते ! जल्दी समझोगे तो बहुतसी मुसीबतों से बच जाओगे ।

एक सास थी और एक बहू थी। बहू ने सास से पूछा-सासूजी, यह बताओ कि सती किसे कहते हैं? सासू बिगड़ैल थी, अतएव उसने कहा-जो सात खसम करे वह सती कहलाती है। बहू बोली-मैंने तो आठ खसम किये है! तब सासू ने कहा-तूने दूसरे सत्य पर पैर रक्खा है!

भाइयो! जिसमे विकार भरे है और जो अज्ञान के अंधकार मे भटक रहा है, वह अपना सत्यानाश करने के साथ दूसरों का भी अनिष्ट करता है। वे उस दुश्चरित्रा सासू के समान उलटी बाते कहते हैं। उक्त विषय मे सच्ची बात तो वही कह सकेगी जो स्वयं पतिव्रता होगी। वह कहेगी कि जो नारी शीलवती है, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करती है, वह सती कहलाती है। इसके अतिरिक्त जो गृहस्थाश्रम मे रहती हुई भी अपने विवाहित पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषो को पिता, भाई या पुत्र के समान समझती है, वह भी सती कहलाती हैं।

सज्जनो! सत्य बात वही कह सकता है जो सत्य को स्वयं समझता है। जो सत्य का उपासक होगा, वह कदापि मिथ्या नही कहेगा। झूठे के मुख से झूठ ही निकलेगी। महाभारत युद्ध की एक घटना स्मरण करो। युद्ध का अठारहवाँ दिन आने वाला था और सत्तरहवाँ दिन समाप्त होकर रजनी का साम्राज्य स्थापित हो गया था। सर्वत्र अंधकार ही अन्धकार व्याप्त था। मगर दुर्योधन के अन्तःकरण में और भी अधिक तथा सघन अंधकार उमड़ रहा था। आगामी दिन उसकी मृत्यु का दिन था। अपनी मृत्यु की संभावना ने उसे घोर निराशा के अंधकार मे पटक दिया था। सोचते २ उसे प्रकाश की एक धुंधली सी छाया नजर आई। उसने सोचा—युधिष्ठिर महाराज आज मेरे शत्रु हैं और हम एक

दूसरे के प्राणों के ग्राहक बने हुए है। फिर भी वे धर्मराज हैं और इतने सत्यनिष्ठ हैं कि अगर मैं अपने बचने का उपाय पूछूं तो मिथ्या नहीं कहेंगे। मुझे सच्चा उपाय ही बतलाएँगे।

यह सोच कर दुर्योधन, युधिष्ठिर के पास पहुँचा। उसने कहा—महाराज ! कल मेरे मरने का दिन है। कोई उपाय बतलाइए कि मैं बच जाऊँ—मेरी मौत टल जाय।

युधिष्ठिर स्वप्न में भी असत्य भाषण करना पसंद नहीं करते थे। उन्होंने कहा-इसका उपाय तो तेरे घर में ही मौजूद है। तेरी माता गांधारी बड़ी पतिव्रता है, सती है। वह आँखों पर पट्टी बाँधे रहती है। कहा है—

दिल से सोचा कि मुझे आँखों का सुख धिक्कार है,
बाँध कर पट्टी रही वह, रहने वाली तुममें थी।
देखिए बहिनों! यह पहले कैसी नारी तुममें थी,
ज्ञान की ज्ञाता विवेकी धर्मधारी तुममें थी॥

देखो, गांधारी ने भी पतिपरायण होकर आँखों के सुख का त्याग करने के लिए पट्टी बांध रखी थी। युधिष्ठिर ने कहा-दुर्योधन अगर मरना नहीं चाहते तो एक उपाय करो। तुम नग्न होकर माता के पास जाना और कहना-'माता ! आँखों की पट्टी खोलकर एक बार मेरे शरीर पर अपनी दृष्टि डाल दे।' जितने अंगो पर माता की नजर पड़ेगी, वह वज्रवत् हो जाएँगे और उन पर शस्त्र की चोट नहीं लगेगी।

जरा विचार कीजिए युधिष्ठिर की सत्यवादिता और उदारता पर ! वह जानते थे कि जिस परिस्थिति मे मैं दुर्योधन को सद्यः

संभावित मौत से बचने का उपाय बतला रहा हूं ? वे यह भी समझते थे कि इसका परिणाम क्या होगा ? फिर भी इतने उदार थे कि उपाय बताये बिना न रहे और इतने सच्चे थे कि झूठा उपाय नहीं बतलाया। वे सच्चे थे और सच्ची बात बतलाने में हिचके नहीं। सच्चा कभी किसी को झूठा रास्ता नहीं बतलाएगा।

दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे विश्वास हो गया कि धर्मराज के बतलाये उपाय से मेरा शरीर अवश्य अभेद्य हो जायगा। मगर दुर्योधन जब प्रसन्नचित्त होकर लौट रहा था तो रास्ते में कृष्णजी मिल गये। उन्होंने कहा—दुर्योधन ! आज बड़े प्रसन्न दिखलाई दे रहे हो। क्या पा गये ?

दुर्योधन ने हँसते-हँसते कहा—ऐसी चीज पा गया हूं कि आपके बाप भी अब मुझे नहीं मार सकते। कल अठारहवाँ दिन है। मैं अपने बचाव का उपाय युधिष्ठिर महाराज से पूछ आया हूँ।

कृष्ण ने कहा–युधिष्ठिर ने क्या उपाय बतलाया है ?

दुर्योधन ने युधिष्ठिर का बतलाया उपाय कृष्णजी को सुना दिया और कहा–मैं अब नहीं मरने का !

कृष्ण सोचने लगे–यह दैत्य नहीं मरेगा तो हम कब तक लड़ते रहेंगे ? यह तो बड़ा बुरा हुआ ! वह युधिष्ठिर पर भी मन ही मन खीझे। मगर अधिक देरी करने से काम बिगड़ जाने का भय था। अतएव उन्होंने दुर्योधन से कहा–निस्सन्देह अब तू किसी से नहीं मरेगा, पर एक सलाह मेरी भी मान ले ! तू इतना बड़ा हो गया है कि माता के सामने बिलकुल नग्न होकर जाना नीति के विरुद्ध है ! अतः जब तू माता के सामने जाय तो फूलों का लंगोट कमर में बांध लेना।

दुर्योधन ने कहा–हाँ, इतना अवश्य कर लूँगा ।

दुर्योधन फूलों का लंगोट लगा कर गांधारी के सामने आया और बोला–माता ! अपनी दृष्टि मेरे शरीर पर डालो और मुझे वज्रवत् अभेद्य बना दो।

माता ने आँखों की पट्टी खोल दी और अपने पुत्र को देख लिया। फिर दुर्योधन से पूछा–यह बात तुझे किसने कही ? दुर्योधन ने पिछला वृत्तान्त कह सुनाया । रास्ते में कृष्णजी के मिलने की बात भी कह दी। तब गांधारी ने चिन्ताग्रस्त होकर कहा–युधिष्ठिर ने तुझे सोलह आना सत्य उपाय बतलाया था, मगर तेरे भाग्य में कुछ और ही लिखा है ! तू लंगोट पहन कर क्यों मेरे सामने आया ?

अठारहवें दिन संग्राम आरंभ हुआ। कृष्ण ने भीम को बतला दिया कि जब तक तुम दुर्योधन की जांघ पर आघात नहीं करोगे, वह मरने वाला नहीं है।

दुर्योधन ने पहले एक बार कहा था–अगर द्रौपदी को मैंने अपनी जांघ पर न बिठलाया, तो, मेरा नाम दुर्योधन नही ! उस समय भीम ने दांत पीसते कहा था-अगर मैने तेरी जांघ न तोड़ी तो मेरा नाम भीम नहीं।

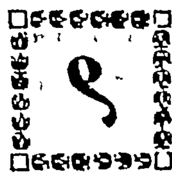
तात्पर्य यह है कि सत्यवादी पुरुष लौकिक हानि-लाभ का विचार करके कभी असत्य के साथ समझौता नहीं करते। सत्य ही सर्वोपरि उपास्य होता है। सत्य की उपासना करने से भले तात्कालिक हानि दृष्टिगोचर होती हो, तब भी वे सत्य का परित्याग नहीं करते; क्योंकि उनका दृढ विश्वास होता है कि अन्त में सत्य की ही विजय होती है और असत्य कभी विजयी नहीं हो सकता। लोगों का यह भ्रम मात्र है कि असत्य का सेवन करने से किसी

प्रकार का लाभ हो सकता है। युधिष्ठिर अपने सत्य पर आरूढ़ रहे तो क्या महाभारत मे उन्हे विजय प्राप्त नहीं हुई? अवश्य हुई।

भाइयों! आप सत्य का महत्त्व समझकर सत्य को ही अपने जीवन का साथी बनाइए। सत्य ही आपका पथप्रदर्शक होना चाहिए। आपको सत्य के ही आलोक मे विचरण करना चाहिए। सत्य का संसार बड़ा ही सुहावना होता है। सत्यवादी मे कितनी शक्ति आ जाती है, यह कहा नहीं जा सकता।

जब आप सत्य की उपासना मे ही तन्मय हो जाएँगे, तभी सच्चे देव का भी स्वरूप समझ सकेंगे। तभी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकेंगे। उस समय आपको रागी, द्वेषी और मोही देवताओं की अपेक्षा नहीं रह जायगी। इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नही रहेगी। भैरों भवानी और भोपों के आगे गिड़-गिड़ाने की जरूरत नहीं होगी। सच्चा सर्वज्ञ और वीतराग देव आपके सामने दर्पण के समान होगा और उसमे आप अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप को देख पाएँगे। एक बार सत्य परमात्म तत्त्व को पहचान लेने के पश्चात् ससार की कोई शक्ति आपको सन्मार्ग से विरत एवं विमुख नहीं कर सकेगी और आप स्वयं परमात्मपद प्राप्त करके आनन्द ही आनन्द पाकर कृतार्थ हो जाएँगे।

ब्यावर
१-१०-१९४७ }



कषाय-शृङ्खला



स्तुति:—

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

प्रभो संसार में अनेक प्रकार के देव माने जाते हैं, परन्तु जैसा ज्ञान आप मे प्रकाशमान है, वैसा हरि-हर आदि किसी भी देव मे नहीं। स्वयं चमचमाती हुई मणियों में सूर्य का तेज जैसा महत्त्व पाता। वैसा किरणों से व्याप्त काच के टुकड़े मे भी महत्त्व

नहीं पाता अतएव आपके ज्ञान के मुकाबिले में, इस संसार में किसी दूसरे का ज्ञान नहीं ठहर सकता। आप जगत् मे अद्वितीय ज्ञानी है।

ऐसे अनुपम और असाधारण ज्ञानालोक से विभूषित भगवान् ऋषभदेव को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

भाइयों! आचार्य मानतुंगजी ने भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए इस श्लोक में एक विशेष बात सूचित की है। आप जानते होंगे कि आत्मा का लक्षण चैतन्य है और चैतन्य का अर्थ है ज्ञान। इस प्रकार ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से अनन्त ज्ञानमय है। चाहे त्रस जीव हो या स्थावर, नारक हो या देव, सिद्ध हो या निगोदजीव, सब आत्माएँ समान स्वभाव वाली है। मूल में उनमे कोई पार्थक्य नहीं है। फिर भी हम वर्तमान में प्रत्येक जीव मे ज्ञान का अन्तर देखते है। यह अन्तर मुख्यतः दो प्रकार का है। प्रथम प्रकार का अन्तर सत्य ज्ञान और मिथ्या ज्ञान का है। अर्थात् किसी आत्मा मे सम्यग्ज्ञान होता है तो किसी में मिथ्या ज्ञान होता है। इस अन्तर का कारण सम्यग्दर्शन का होना और न होना है। जिस आत्मा मे सम्यग्दृष्टि का प्रादुर्भाव हो गया है, उसका सब ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है और जिसमे सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है, जो मिथ्यात्व के मल से मलीन है, उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है। दूसरे प्रकार का अन्तर ज्ञान की तरतमता को लेकर होता है। यहाँ यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि जिन साधनों से सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान प्राप्त करता है, उन्हीं साधनों से मिथ्यादृष्टि भी। अर्थात् कान, आँख, घ्राण आदि इन्द्रियाँ, मन और पुस्तक आदि जो साधन सम्यग्दृष्टि को प्राप्त है, वही साधन मिथ्यादृष्टि को भी

प्राप्त होते हैं। ऐसी बात नहीं है कि सम्यग्दृष्टि के नेत्रों की बनावट अन्य प्रकार की हो, कानो की बनावट अन्य प्रकार की हो और मिथ्यादृष्टि के नेत्रों-कानो की रचना भिन्न २ प्रकार की हो। दोनों की इन्द्रियो की रचना समान होती है और बाह्य साधन ग्रन्थ आदि भी समान हों तो भी एक का ज्ञान सम्यक् और दूसरे का ज्ञान मिथ्या होता है। इसका क्या कारण है?

इन्द्रिय आदि बाह्य कारणों मे ही नहीं, वरन् ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, जो अन्तरंग कारण है, भी दोनो में समान हो तो भी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि के ज्ञान मे महद् अन्तर रहता है। क्या यह एक विचारणीय प्रश्न नहीं है?

विचार करने पर विदित होगा कि इस महान् भेद का कारण आत्मा की निर्मलता और मलीनता है। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम समान हो और इन्द्रिय आदि बाह्य साधन भी समान हों, तो भी निर्मल आत्मा में ज्ञान का जैसा स्फुरण होता है, मलीन आत्मा मे वैसा नहीं होता।

इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। सूर्य की किरणें जैसी साधारण पत्थर पर पड़ती है, वैसी ही मिट्टी के ढेले पर भी पड़ती है। जैसी कांच पर पड़ती है, वैसी ही उत्तम जाति के रत्न पर भी पड़ती है। उन किरणों में कुछ भी भिन्नता नहीं है। फिर भी इन पदार्थों में एक सरीखी चमक उत्पन्न नहीं होती मिट्टी के ढेले मे कम, पाषाण पर कुछ अधिक, काच पर उससे भी अधिक और रत्न पर उससे भी अधिक चमक दृष्टिगोचर होती है। यह अन्तर पदार्थों की अपनी-अपनी निर्मलता की मात्रा पर निर्भर है। जो पदार्थ जितना अधिक निर्मल होगा, उसमे उतनी ही अधिक चमक उत्पन्न होगी।

इसी प्रकार जिस आत्मा में अधिक उज्ज्वलता है उसमें ज्ञान की चमक अधिक होती है और जिसमें उज्ज्वलता जितनी ही कम होगी, उसमें ज्ञान की चमक भी उतनी ही कम होगी। अतएव ज्ञान की अधिक उज्ज्वलता प्राप्त करने के लिए आत्मा को निर्मल बनाने की आवश्यकता है।

जिस आत्मा में ज्ञान की जितनी अधिक स्फुरणा होती है, प्रतिभा होती है या चमक होती है, समझ लीजिए कि वह आत्मा उतना ही अधिक निर्मल है।

आचार्य महाराज ने यही तथ्य यहाँ सूचित किया है। भगवान् ऋषभदेव में ज्ञान की जैसी चमक है, वैसी अन्य देवों में नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि भगवान् की आत्मा में जैसी निर्मलता है, वैसी अन्यत्र नहीं है।

यहाँ एक बात और स्मरण रखनी चाहिए। प्रारंभ में मंगला-चरण के रूप में जो पद्य बोला गया है, वह भक्तामरस्तोत्र का है। इसमें भगवान् ऋषभदेव की स्तुति है। इसी प्रकार विभिन्न तीर्थंकरों की भिन्न-भिन्न स्तुतियाँ हैं, जो अनेक भक्त आचार्यों, विद्वानों और कवियों ने रची हैं। फिर भी समस्त तीर्थंकरों का पद समान होता है। उनकी आध्यात्मिक योग्यता भी समान होती है ज्ञान-दर्शन आदि गुणों में भी कोई अन्तर नहीं होता। अतएव एक तीर्थंकर की स्तुति में जिन गुणों का वर्णन किया गया है, वे गुण सभी तीर्थंकरों के समझे जाने चाहिए। अन्य देवों से यहाँ रागी द्वेषी और मोही देव-कुदेव समझना चाहिए।

ज्ञान आत्मा का आलोक है। जब वह असली स्वरूप में प्रकट होता है तो केवलज्ञान कहलाता है। केवलज्ञानी से कोई

बात छिपी नहीं रहती। केवली के वचन ही शास्त्र कहलाते हैं और उनके मुकाविले में दूसरो का ज्ञान पूरा नहीं है। अतएव और-और ग्रन्थ भी लिखे हुए हैं, परन्तु वे केवलिकथित शास्त्रों के मुकाविले में नहीं है। केवलिकथित शास्त्र पूर्वापर अविरुद्ध होते हैं, अर्थात् ऐसे नहीं होते कि कहीं कुछ लिख दिया और कहीं कुछ लिख दिया और दोनों का आपस में मेल ही नहीं बैठता! इसी प्रकार केवली के वचन प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति या तर्क से खडित नहीं हो सकते। वे प्राणीमात्र के लिए हितकारक होते हैं और सन्मार्ग के प्रदर्शक होते हैं! केवली के वचन सम्पूर्ण हैं और शुद्ध हैं। केवली भगवान् ने जिस वाणी का उच्चारण किया है, वह केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् की है। अतएव वह सत्य है, तथ्य और पथ्य है। किसी दूसरे को इतना ज्ञान नहीं था, अतएव उसकी उसकी वाणी केवली की वाणी के समान नहीं है। अलबत्ता भिन्न-भिन्न कालों और देशों में उत्पन्न होने वाले सब तीर्थंकरों-केवलियों के वचन मे समानता होती है। उसमें कोई फर्क नहीं होता। यह नही कि भगवान् ऋषभदेव ने जो फरमाया है, उसके विरुद्ध भगवान् पार्श्वनाथ ने फर्माया और पार्श्वनाथ से विपरीत बात महावीर स्वामी ने कही हो। अनन्त चौवीसियों हो चुकी हैं और भविष्य में भी होगी, परन्तु उनके पदार्थनिरूपण में कुछ भी अन्तर आने वाला नहीं है। क्योंकि तीर्थंकर भगवान् पूर्ण ज्ञानी हैं और पूर्ण ज्ञान में विविधता नहीं होती। जहां विविधता है, वहां ज्ञान की अपूर्णता समझनी चाहिए।

सभी तीर्थंकर भगवन्त क्या उपदेश देते हैं, यह श्रीमद् आचारांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध मे बतलाया है। भगवान् इस सूत्र के तीसरे अध्ययन के चौथे उद्देशक में क्या फर्माते हैं.—

'जे कोहदंसी से माणदंसी,
जे माणदंसी से मायादंसी,
जे मायादंसी से लोहदंसी,
जे लोहदंसी से पेज्जदंसी ।'

जैसे रेल के डिब्बे एक दूसरे से जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार शास्त्र की बातें भी एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं।

हाँ, तो भगवान् कहते है—जो क्रोध के स्वरूप को जानता है और जानकर छोड़ देता है, वह मान को जानता और त्यागता है; इसी प्रकार जो मान को जानता और छोड़ता है, वह माया को जानता और छोड़ता है; जो माया को जानता और छोडता है वह लोभ को जानता और छोड़ता है। तथा जो लोभ को जानता और त्यागता है, वह राग को जानता और छोडता है।

इस प्रकार इन कषायों का परस्पर में संबंध है। क्रोध से जलता हुआ व्यक्ति कहता है—'हाँ, देख लेना, तीन दिन के बाद मजा चखा दूंगा!' इस कथन मे क्रोध के साथ मान की स्पष्ट झलक है। अर्थात क्रोध आने से मान भी आ गया। अतएव ये दोनों भाई की तरह है। एक दूसरे की सहायता करने को तैयार हैं।

दो आदमी लड़ रहे हों और उनमें से एक जब दूर से ही देख ले कि मेरी मदद के लिए मेरा भाई आ रहा है, तो उसमें अधिक जोर आ जाता है। और जब वह सोचता है कि मेरी पीठ पर कोई नहीं है, अर्थात् कोई मेरा सहायक नहीं है, तो कहने लगता है—जाने दो साहब जाने भी दो!

इसी प्रकार दो स्त्रियाँ लड़ रही हों और उनमें से एक यदि देख ले कि मेरी सासू सहायता के लिए आ रही है, तो लड़ाई और जोर से छिड़ जाती है। और जब देखती है कि कोई भी मेरी सहायता के लिए नहीं आ रही है तो कहती है—रहने दो, क्या लाभ है लड़ाई से! और ऐसा कह कर अपना पीछा छुड़ा लेती है।

क्रोध में भी मददगार की आवश्यकता होती है और मददगार है मान। अतएव जो क्रोधी है वह मानी भी होता है। मगर यह परम्परा यहीं समाप्त नहीं होती। जो मानी होता है वह कपटी भी होता है। क्रोध आया तो मान आया और मान आया तो कपट भी आ गया। जब भीतर कपट का प्रवेश हो जाता है तो मानी मनुष्य मायामयी वाणी को प्रयोग करता है। वह ऊपर से कहता है—अच्छा, अच्छा, कोई बात नहीं! मगर मन में सममता है कि—मिलने दो मौका, फिर सारी कसर निकाल लेंगे!

कपटी मनुष्य जितना नीचा नमता है, उतना ही खतरनाक होता है और उतना ही हानि पहुँचाता है। कहा है—

दगाबाज दूना नमे, चीता चोर कमान।

तो जहाँ मान आएगा, वहाँ दगाबाजी भी आ जायगी। किन्तु यह परम्परा और आगे चलती है। इस रूप में कि जो कपट को देखता है वह लोभ को देखता है। अर्थात् जहाँ दगाबाजी है वहाँ लोभचन्दजी भी आ धमकेंगे, क्योंकि जहाँ कपट होता है वहाँ मतलब अवश्य होता है और मतलब का नाम ही लोभ है। इस प्रकार कपट के पीछे लोभ का डिब्बा जुड़ा हुआ है। इसके पश्चात राग का नम्बर आता है। जहाँ लोभ आएगा वहां राग भी आएगा। लोग कहते है—'वाह साहब! आपका क्या कहना

है ! आपके साथ तो हमारी आत्मोपमता है । आपका हमारे यहाँ पुराना खाता है ! रुपयां की इतनी क्या जल्दी थी, फिर भेज देते ।, इस प्रकार लोभ के पीछे-पीछे राग भी आ गया । इतना कहा कि मरा बेचारा ग्राहक ! क्योंकि यह ग्राहक जमाने की विद्या है-वाणिज्य कौशल है । मिठास के बिना दुकानदारी नहीं जमती । लोग कहते है—दुकानदारी नर्मी की, साहूकारी भर्मी की, हाकिमी गर्मी की और बहू बेटी शर्म की ! तेज-तर्राट स्वभाव से दुकान नहीं जमती ।

व्यापारी लोग रत्नकंबल लेकर जब राजा श्रेणिकों के दरबार में आये तो उससे पहले बाजार में बतला चुके थे । मगर किसी ने उन्हे खरीदने का साहस नही किया । तब वे राजा के दरबार में पहुँचे । आज्ञा होने पर एक रत्नकंबल निकाल कर दिखलाया । कबल देख कर राजा प्रसन्न हुआ । एक दासो को बुला कर कहा-इसे ले जाओ और महारानो को दिखला दो । दासी वह कबल लेकर महारानी चेलना के पास पहुँची । चेलना भी उस उत्तम कबल को देख कर अतीव प्रसन्न हुई । तब दासी ने पूछा-महारानीजी, क्या इच्छा है ? पसन्द आया ?

महारानी बड़े घर की बेटी है । उसके प्रत्येक वाक्य और व्यवहार से कुलीनता टपका करती थी । इस बार भी उसने अपनी महत्ता के अनुरूप ही उत्तर दिया-'महाराज की इच्छा मेरी इच्छा है । वही जाने । जैसा वे ओढावेगे, मैं ओढ़ लूँगी और जैसा पहनावेंगे, पहन लूँगी ।,

भाइयो ! विवेकवती बाइयों का बोलना और ही तरह का होता है । वे पति की इच्छा पर ही अपने आपको छोड़ देती हैं । अर्थात् पति अपनी सुविधा और स्थिति देख कर उनके लिए जो वस्तु

लाकर देता है, उसी में वे सन्तोष मान लेती है। उसी में वे अनन्य सुख का अनुभव करती हैं। वे जानती हैं कि पति स्वभावतः अपनी पत्नी को अच्छी से अच्छी वस्तु प्रदान करना चहता है। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो कोई विवशता है। ऐसी स्थिति में उसे परेशान करना, उसका जी दुखाना या अप्रसन्नता का जाहिर करना कुलीनता नहीं, पत्नी का कर्त्तव्य नहीं। ऐसा करने से दाम्पत्य की मधुरता कम हो जाती है। पारस्परिक कटुकता बढ़ती है और गृहस्थजीवन सुख पूर्वक व्यतीत न होकर भार रूप हो जाता है।

महारानी चेलना धर्म को जानने वाली सती महिला थी। यद्यपि मगध के सम्राट् के यहाँ धन की कमी नहीं थी, फिर भी उन्होंने यह नहीं कहा कि महाराज इस कंबल को खरीद लें।

हाँ, तो दासी ने लौट कर महाराजा श्रेणिक से कहा—महारानीजी का फर्माना है कि आप जो उचित समझें, करें।

राजा ने व्यापारी से रत्न कंबल का मूल्य पूछा तो मालूम हुआ कि सवा लाख मोहरें इसका मूल्य है! यह सुन कर श्रेणिक ने कहा—इतना अधिक मूल्यवान कंबल हम नहीं खरीदेंगे। हमारे खजाने में प्रजा की गाढ़ी कमाई का पैसा आता है। वह यों खर्च करने के लिए नहीं है। सवा लाख मोहरों से तो हम पचास हजार की फौज तैयार कर लेंगे जो प्रजा की और देश की सुरक्षा के काम आएगी।

राजा को लोभ होता है राज्य बढ़ाने का और राज्य बढ़ता है फौज से और फौज बढ़ती है कल्दारों से! अतएव राजा ने व्यापारी से कहा-हम रत्न कंबल के लिए इतना खर्च नहीं करना चाहते। व्यापारी अत्यन्त निराश हुए और नगर से बाहर जाकर एक पनघट पर ठहरे।

जिस पनघट पर व्यापारी ठहरे थे, वह शालिभद्र के हलके मे था। यहाँ उसका बगीचा था। वहाँ बने कुए का पानी मीठा और हलका था। शालिभद्र के लिए उसी कुए का पानी जाया करता था। और दूसरे लोग भी उसका उपयोग करते थे।

व्यापारी पनघट के समीप पहुंचे और उदास भाव से आराम करने लगे। इतने में ही शालिभद्र की पानी लाने वाली दासियाँ पानी लेने वहाँ पहुंची—

शालिभद्रजी की आई दासियाँ,
जल भरने पनघट पणियार ।
देख व्यापारी, पूछियो उदास हो तुम क्यों इस बार,
कहे व्यापारी नहीं बिकानी सोलह कंबल है हम लार ।

जब शालिभद्रजी की दासियां पानी भरने गई और पानी खींचने लगी, तब उन्होंने उदास व्यापारियों को बैठे देखा। बड़े घर के साधारण कोटि के नौकर-चाकर भी बड़े विचारवान् होते है। उस घर में रहते-रहते वे सभ्यता शिष्टाचार, गंभीरता, उदारता आदि गुण सीख लेते और अपना लेते हैं। ससर्ग से उनमे यह विशेषताएँ आ जाती हैं। कहा भी है—

संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति ।

अर्थात्—मनुष्य में जो भी अवगुण या सद्गुण होते है, वे ससर्ग से उत्पन्न होते है।

किसी राजा के यहां बहुत-से नौकर थे। उनमे कई एक रुपया प्रतिदिन पाता था और कोई आठ आना। आठ आने वाले

एक आदमी ने एक दिन कहा-मुझमे और रुपया पाने वाले मे क्या अन्तर है ? क्यो इसे रुपया और मुझे आठ ही आने दिये जाते हैं ? यह भी दो हाथों और दो पैरों से काम करता है और मैं भी। ऐसी बात तो है नहीं कि यह चतुर्भुज या चतुष्पद हो और मैं द्विभुज और द्विपद हूँ ! फिर इसे मुझसे दुगना वेतन क्यों दिया जाता है ?

यह खबर राजा के कानो तक पहुँची। राजा ने सोचा-यह आदमी आदमी-आदमी का फर्क नहीं जानता; क्योंकि इसमे आठ आने के योग्य अक्ल है।

आठ आने की अक्ल वाला नौकर कहता है-राजा उसी का पक्ष लेते है और मुझे कुछ भी नही समझते। उसे मुझसे दुगुनी तनख्वाह देते हैं ! क्या उसके दो पेट और दो मुख हैं ? उसे दुगने अनाज की आवश्यकता होती है ? दोनो बराबरी का खाते हैं और बराबर काम करते है। फिर क्यों मुझे आधी तनख्वाह मिलती है ?

वह इस प्रकार बड़बड़ाया करता था। राजा ने सोचा कि इस मूर्ख को मालूम नही कि आदमी-आदमी मे भी अन्तर होता है। इसी से कुढ़-कुढ़ाना करता है। इसे समझाना चाहिए।

एक दिन राजा वायु सेवन के लिये बाजार मे होकर निकला उस दिन उसने उसी आठ आने वाले नौकर को साथ ले लिया। जब राजा बाजार में जा रहा था कि घोड़े ने लीद की। राजा ने उससे कहा-देख, मैं दो घंटे बाद लौटूँगा। तब तक इस लीद की निगरानी रखना। यह आदेश देकर राजा चला गया। आठ आने

वाला वह आदमी लीद के पास खड़ा होकर लीद का पहरा देने लगा। बीच सड़क में उसे खड़ा देखकर जो भी आता वही पूछता-भाई, यहाँ कैसे खड़े हो ? वह उत्तर देता-मुझे राजा साहब ने लीद की निगरानी के लिए खड़ा रक्खा है। लोग हँस कर चले जाते। कोई कहता-'इसके लक्षण ही ऐसे हैं।' दूसरा कहता-'यह लीद का पहरा देने योग्य ही आदमी है।'

उस आदमी मे इतनी विचार शक्ति भी नही थी कि लीद की निगरानी की बात कहने में मेरी बदनामी होती है, बेइज्जती होती है ! वह तो बड़ी अकड़ के साथ उत्तर देता था। आखिर दो घंटे बाद राजा साहब वायु सेवन करके लौटे। उस आदमी को वहीं खड़ा देख कर उन्होंने कहा-अच्छा, इसे रुमाल में बाँध ले और घुड़साल मे लेजा कर डाल दे।

आठ आने वाले उस आदमी को खयाल आया--राजा के मुसद्दी लोगों ने सोचा होगा कि इसे कितना हल्का काम बतलाया है ! यह सोच कर वह फिर बड़बड़ाने लगा-किसी और से रखवाली कराते तो पता चलता ! यह बात भी राजा साहब के कानो तक पहुंच गई।

एक दिन राजा फिर वायुसेवन के लिए निकला। इस बार उसने आठ आने वाले और रुपया वाले-दोनों नौकरों को साथ ले लिया। बाजार में पहुंचे कि संयोगवशात् उसी जगह घोड़े ने फिर लीद कर दी। राजा ने रुपये वाले नौकर को आदेश दिया-तुम इस लीद की निगरानी करना। मैं अभी दो घटे मे घूम कर आता हूँ। यह सुन कर आठ आने वाला नौकर बहुत खुश हुआ। उसने सोचा-चलो, इस काम में तो यह मेरी बराबरी का हुआ।

रुपया वाला आदमी लीद के पास खड़ा हो गया और आमने सामने की हवेलियों को गौर से देखने लगा। किसी ने

पूछा–आप यहाँ क्यो खड़े हैं ? तब उसने कहा–कागज और कलम-दावात लाओ तो बतलाऊँ ! सब चीजें आ गई । अब वह बड़े गौर के साथ कभी इधर देखता है और कभी उधर देखता है ! जहाँ वह खड़ा था, वहीं एक लखपति सेठ की हवेली थी । उस पर सेठ की निगाह पड़ी । अपनी हवेली की ओर गौर से देखते देख कर सेठ ने सोचा–क्या कारण है कि यह राजा का आदमी आँखे फाड़-फाड़ कर इधर देख रहा है !

सेठ के मन में उथल पुथल-सी मच गई । उसने कारण जानने के लिए मुनीम को भेजा । मुनीम के पूछने पर उसने उत्तर दिया–सरकार ने हुक्म दिया है कि जिसकी हवेली का कोना आगे निकला हो, उसे नोट कर लेना, ताकि उसे तुड़वा कर बराबर कराया जा सके । मुनीम ने यह बात सेठ को बतलाई । सेठ ने कहा–एक हजार की थैली ले जाओ और चुपचाप उसे दे आओ ! हवेली का कोई हिस्सा तुड़वाया गया तो लाख रुपये की हवेली बिगड़ जायगी ।

यही बात दूसरे सेठ को मालूम हुई तो उसने पाँच हजार की थैली भेज दी और कहलाया–कृपा करके हमारी हवेली मत लिखना ! फिर क्या था ? तीसरे और चौथे सेठ ने भी थैलियाँ भेजनी शुरू की । इस प्रकार पचास-साठ हजार की थैलियाँ जमा हो गई ।

दो घंटे बाद राजा साहब घूम कर लौटे तो उन्होंने कहा–यह लीद रूमाल में भर लो ।

रुपया वाले नौकर ने कहा–हुजूर ! लीद का वजन बहुत बढ़ गया है । वह इस छोटे-से रूमाल में नहीं ली जा सकती । उसे भरने के लिए तो एक गाड़ी चाहिए !

यह उत्तर सुन कर आठ आने वाला नौकर सोचने लगा-इसने यह क्या अडंगा खडा कर दिया !

आखिर वह सब थैलियाँ खजाने में पहुंचा दी गईं। तब राजा ने उसे बुला कर पूछा-यह थैलियाँ कहाँ से आ गईं ? क्या किया तू ने कि यह लीद के पास जमा हो गईं ?

नौकर ने कहा-हुजूर, आपने मुझे लीद के पास खड़ा कर दिया था। मैंने खड़े-खड़े थैलियों के आने की युक्ति निकाल ली। उस युक्ति से धड़ाधड थैलियाँ आने लगीं !

राजा ने विस्मित होकर कहा-इतना रुपया इकट्ठा कर लिया !

नौकर हाथ जोड़ कर बोला-हुजूर जल्दी पधार गये, इसी कारण इकट्ठा हो सका। थोडी देर से पधारते तो पूरा लाख करके छोड़ता !

तब राजा ने आठ आने वाले को कहा-कुछ समझा कि नहीं तेरी बुद्धि और इसकी बुद्धि में कितना अन्तर है ! तू ने और इसने एक ही कार्य किया; परन्तु तू ने बेइज्जती और बदनामी इकट्ठी की और इसने यह थैलियाँ इकट्ठी की। सभी औरतें घाघरा-ओढना पहनती हैं और सभी मर्दों की आकृति एक-सी होती है, परन्तु सब की बुद्धि एक-सी नहीं होती। कहा है—

पाग भाग सूरत नरा, विद्या सुगुण विवेक ।
एता मिले न एकठा, सोधो शहर अनेक ।

देखो, पाग और भाग्य सर्वत्र समान नहीं मिलते हैं। एक ही माँ-बाप की दो लड़कियों के भाग्य अलग अलग होते हैं। एक भाग्यशालिनी लड़की ऐसी जगह पहुँचती है कि मोटरों में सैर

करती है और विशाल हवेली की मालकिन कहलाती है। दूसरी को झौपड़ी भी नहीं मिलती और धान बीनती फिरती है !

पिता ने दो पुत्रा को बराबर पाँती दी एक उसे चौगुनी कर लेता है और दूसरा दिवालिया हो जाता है। क्योंकि दोना के भाग्य न्यारे-न्यारे है। कहावत है-'माँ ने जाए चौदह पूत, एक देवता तेरह भूत।' यह भाग्य का खेल है। आपने लोकोक्ति सुनी ही होगी:—

मनुष्य मनुष्य मे आंतरो, एक हीरो एक कांकरो।

इसी प्रकार न एक-सी मुखाकृति होतो है और न एक सरीखी इज्जत सबको होती है। ससार मे बहुसंख्यक मनुष्य है। आप नित्य नये लोगो की मुखाकृनि देखते हैं। लाखो का मुख आपने देखा होगा। पर शत प्रतिशत आकृति किसी की किसी से मिलती देखी है ? नहीं। भले ही आप दो मनुष्यों की आकृति का अन्तर शब्दों द्वारा व्यक्त न कर सकें, मगर नेत्र तत्काल उस अन्तर को पहचान लेते है। उन्हें कभी स्थायी धोखा नहीं होता। इसी प्रकार सबकी प्रतिष्ठा भी एक-सी नहा होती। कोई-कोई समाज के सम्माननीय होते हैं और राज्य मे भी प्रतिष्ठा पाते हैं। कोई अपने घर में भी तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते है।

विद्या भी सबको समान प्राप्त नहा होती। एक ही गुरु के पास रह कर पढ़े हुए दो विद्यार्थी विद्या-बुद्धि में विसदृश देखे जाते है। क्षोर कदम्बक उपाध्याय ने ही अपने पुत्र पर्वत को पढ़ाया था और उसी ने नारद को भी। मगर दोनों की विद्या का परिणमन कितना भिन्न हुआ ? पर्वत ने 'अजैर्यष्टव्यम्' की अर्थ कर दिया—यज्ञ में अजों-बकरों को होमना चाहिए। नारद ने उस की मान्यता का विरोध किया। पर्वतके दुराग्रह ने ऐसी पापमयी परम्परा प्रच-

लित कर दी कि आज तक भी वह निश्शेष नहीं हो पा रही है। दोनों की बुद्धि मे कितना भेद था !

राजा ने पण्डित से पूछा-पण्डितजी, हमारी मुट्ठी में क्या है ? पंडितजी बोले-गोल-गोल चोज है और उसके बीच में छेद है। मालूम होता है, चक्की का पाट है।

राजा ने दूसरे पण्डित से वही प्रश्न किया। उसने कहा-गोल- गोल वस्तु है और उसके बीच मे छेद है। इससे प्रतीत होता है कि आपके हाथ में मोती है।

दूसरे पण्डित का उत्तर सुन कर पहला उससे कहने लगा-गुरुजी ने पढ़ाने मे फर्क रख दिया ।

भाइयो ! यह गुरुजी का दोष है या अपनी बुद्धि का ? पण्डित में इतनी बुद्धि नहीं थी कि वह सोचता कि हाथ में चक्की का पाट कैसे समा सकता है ! तिस पर तुर्रा यह कि गुरूजी पर पक्षपात का दोषारोपण करता है ! दूसरे में बुद्धि थी। उसने सोच लिया और यह भी सोच लिया कि राजा हैं तो हाथ मे मोती होना चाहिए। यहाँ दिमाग का काम था। विद्या तो एक-सी पढ़ी, पर बुद्धि भी तो होनी चाहिए। बुद्धि के अभाव में विद्या अकेली क्या करे।

जैसे बुद्धि में अन्तर होता है, उसी प्रकार गुणों में भी अन्तर होता है ! किसी में ऊँची श्रेणी के गुण होते हैं तो किसी में निम्न श्रेणी के हैं। दो आदमी सोना पहनते हैं। मगर एक का सोना मैल वाला होता है और दूसरे का एकदम निर्मल-चमकदार होता है। ज्ञान गुण भी सब का समान नहीं होता। एक ही अवधिज्ञान के असख्यात भेद है। किसी का मिथ्याज्ञान होता है, किसी का सम्यग्ज्ञान। कोई ज्ञानवान् क्रोध नहीं करते, मान और

कपट भी नही करते किसी के विषय मे लोग कहते हैं-ये हैं तो ज्ञानी, मगर मानी और मायावी हैं।

विवेक भी सबका अलग अलग होता है। कोई किसी से कहता है-हमारे यहां जीम लेना। दूसरा कहता है-आपको हमारे यहां जीमना पड़ेगा इस प्रकार बोलने-बोलने में कितना अन्तर है! किसी की जीभ से ऐसे मधुर वचन निकलते है, मानो अमृत झर रहा हो। दूसरा कर्कश कठोर वचन बोलता है। यद्यपि अप्रिय वचन बोलने वाला भी समझता है कि मै यदि मिष्ठ और प्रिय वचनों का उच्चारण करूँ तो मेरी पूंजी कम नहीं हो जायगी और अप्रिय कर्कश एवं कठोर वचन कहने से कोई लाभ नहीं हो जाता; फिर मनुष्य अपने स्वभाव से लाचार होता है। कहा है—

जिह्वायाः खण्डनं नास्ति, तालको नैव भिद्यते ।
अक्षरस्य क्षयो नास्ति, वचने का दरिद्रता ? ॥

अर्थात्—मधुर वचनो का प्रयोग करने से जीभ नहीं कट जाती और न तालु ही भिदता है। अक्षरो की भी कमी पड़ने वाली नही है। फिर वचनों मे दरिद्रता क्यों की जाय ? और कहा भी है-

रे जिह्वे कटुके स्नेहे, मधुरं किं न भाषसे ।
मधुरं वद कल्याणि; लोको ऽयं मधुरप्रियः ॥

अरी कल्याणी जिह्वे ! सारा ससार मधुरता चाहता है। फिर तू क्यों मधुर भाषण नहीं करती ? तू मधुर भाषण कर। कटुक भाषण न कर।

ऐसा जानते बूझते भी लोग अपनी जीभ से तलवार की तरह तीखे और हृदयविदारक वचन निकालते है !

मुनिराज गोचरी के लिए जावें और आहार लेते समय नहीं-नहीं कहे, और फिर भी ग्रहण कर लें तो दोष लग जाता है। कोई कहता है 'कम कम !' परन्तु ऐसा न कह कर कहना चाहिए- घणो घणो। इससे साधुजी के भी 'घणो' और दातार के यहाँ भी 'घणो' रहे। मगर विवेक के बिना ऐसा बोलना नहीं आता।

एक अंधा था। उस पर देवता प्रसन्न हो गये। देवता ने कहा-मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। जो माँगना हो माग ले; पर एक ही चीज माँगना। अंधे ने सोचा-आँख माँगता हूँ तो कमाई करनी पड़ेगी। अभी अंधा समझ कर लोग दे देते हैं। सूझता हो जाऊँगा तो कौन देगा? किसे दया आएगी?

अच्छा, धन माँग लूँ मगर आँखों के बिना धन किस काम का? स्त्री माँगूँ तो निर्वाह कैसे होगा? इस प्रकार पशोपेश में पड़ कर उसने विवेक से काम लिया। उसे नयी बात सूझ गई। उसने देवता से कहा-अच्छा एक बात माँगता हूँ। आप दें तो दूँगे? देवता ने कहा-क्यों नहीं। कह तो दिया है। तब अंधेने कहा-'मैं अपने मकान की सातवीं मंजील पर, अपने पोते को, सोने की थाली में, खीर खाते देखूँ।'

अंधे की माँग एक थी, पर उसमे सभी कुछ समा गया था। पुत्र होने पर ही पोता होता है और पुत्र के लिए पत्नी चाहिए। सोने की थाली पर्याप्त धन के बिना नहीं हो सकती। बड़ी हवेली के बिना सातवीं मंजील नहीं हो सकती। खीर खाने के लिए गाय-भैंस चाहिए और देखने के लिए आँख चाहिए।

अंधे की माँग सुन कर देवता सोचने लगा-आज तक बहुतों से पाला पड़ा था, मगर ऐसे आदमी से कभी पाला नहीं पड़ा। इस अंधे ने खूब फँसाया!

आखिर देवता को भी हिमाग जमाना पड़ा और अपने वचन की पूर्ति के लिए अंधे को सभी कुछ देना पड़ा। विवेक ऐसी चीज है!

हाँ तो भाइयो! इतनी चीजें एक साथ नहीं मिलतीं। सारी दुनिया घूम लो, पर इनमें अन्तर मिलेगा ही इसका एक विशेष कारण है कर्म का प्रभाव। यह जीव अतीतकाल में जो कर्म उपार्जन कर चुका है, वही भाग्य के रूप में उसके सामने आते हैं। उनके फल स्वरूप ही आकृति, गुण, विद्या, बुद्धि, विवेक आदि की प्राप्ति होती है। जिसने शुभ कर्म का बंध किया है, उसे सुन्दर आकृति मिलती है और अशुभ नाम कर्म वाले को अमनोज्ञ आकृति प्राप्त होती है। वचन की उत्तमता-अनुत्तमता भी ऐसी ही है। सुस्वर नाम कर्म का और आदेय नामकर्म का उदय हो तो मनुष्य का वचन सबको प्रिय लगता है और सब उसके वचन का आदर करते हैं। दुस्वर एवं अनादेय नाम कर्म का उदय होने पर इससे उलटा होता है। ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम अच्छा है तो विद्या बुद्धि की भी अच्छी प्राप्ति होती है। ज्ञानावरण का उदय होने से उनमें कमी होती है। मिथ्यात्व का उदय हो तो ज्ञान मिथ्या हो जाता है और सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर सम्यग्ज्ञान होता है इस प्रकार कर्म के अनुसार जीवों को भिन्न-भिन्न गुणों की प्राप्ति होती है।

शालिभद्र की दासियाँ बड़े घराने की थी उनकी समझ साधारण घर की दासियों से भिन्न प्रकार की थी। अतएव उन्होंने रत्न कंबल के व्यापारियों से पूछा—आप लोग उदास क्यों बैठे हैं? न कहने योग्य न हो तो कहिए। तब उनमें से एक नवयुवक व्यापारी ने कहा—हमारी उदासी से तुम्हें क्या मतलब? तुम्हें बतलाने से क्या लाभ होगा? व्यर्थ की माथापच्ची करने से क्या प्रयो-

जन है ?

तब एक वृद्ध ने कहा-भाई, हम लोग व्यापारी हैं। व्यापारी में नरमाई होनी चाहिए। अगर इन्हें कह दें तो हर्ज भी क्या है ? अपनी चीज़ का विज्ञापन ही होगा।

इतना कह कर उस व्यापारी ने दासियों से कहा-हमारे पास रत्नकंबल हैं। कीमती हैं। जब राजा ने ही इन्हे नहीं खरीदा तो दूसरा कौन खरीदेगा ?

दासियाँ बोली-हमारी सेठानी के पास चलो। ये सब खरीद लेगी। चिन्ता मत करो।

व्यापारियों ने सोचा-माल खरीद लिया तो अच्छा ही है, अन्यथा अपना माल अपने पास है। वे दासियों के पीछे-पीछे चल पड़े। हवेली के पास आकर व्यापारियों को बाहर ठहरा कर दासियां भीतर गईं और सेठानी से व्यापारियों के आने की बात कही। सेठानी ने कहा-अच्छा, उन्हें बुला लो। व्यापारी बुलाये गये और सेठानी के पास पहुंचे। सेठानी ने कहा-अच्छा, देखें, गांठ खोलो।

व्यापारी बोले-एक-एक कम्बल की कीमत सवा-सवा लाख है।

सेठानी-कितने कंबल है ?

व्यापारी-सोलह।

सेठानी-मगर भाई हमें तो बत्तीस चाहिए। मेरे यहाँ बत्तीस पुत्रवधुएँ हैं। किसे दूँ और किसे न दूँ ? डेरे पर और हो तो ले आओ।

व्यापारी-नहीं माजी, सोलह ही हैं।

सेठानी-अच्छा, यही दे दो—

सवा सवा लाख एक कंबल का है मोल जी।
गिणता आया बीस लाख, मांड दिया तोल जी।

एक कंबल की सवा लाख मोहरें कीमत हैं तो सोलह की बीस लाख मोहरें हुई। सेठानी ने कहा-मुनीमजी गिनोगे कब तक, इन्हें तोल कर दे दो। और देखो, यह मोहरें इनके डेरे तक भिजवा दो। इन्हें गाड़ी भाड़ा खर्च न करना पड़े।

इसे कहते हैं सेठाई ! जहाँ सेठाई होती है वहाँ क्षुद्रता नहीं होती ! मँगतापन नहीं होता। पाई-पाई को पकड़ने की भावना नहीं होती। बल्कि उदारता होती है, दरियादिली होती है। जो सम्पत्तिशाली हो उसे उदार भी होना चाहिए। ऐसा न हो तो उसकी सम्पत्ति का क्या लाभ है? सेठानी ने मोल तोल नहीं किया। उलटा अपनी गाड़िया मे मोहरें भर कर व्यापारियो के डेरे में पहुँचवा दीं। सोचा-चलो बीस लाख मोहरों के साथ गाड़ीभाड़े की क्या गिनती है ! बेचारे व्यापारी क्या सोचेंगे !

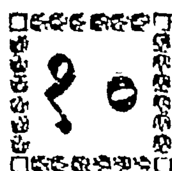
भाइयो ! बड़प्पन जिसमें हो वही बड़ा आदमी है। बड़प्पन का अर्थ है उदारता। जिसमें बड़प्पन होता है, उसकी सम्पत्ति प्रशंसनीय होती है और सार्थक होती है। जो सम्पत्तिशाली पैसे-पैसे के लिए मरता है, अपने नौकर-चाकरो से दो पैसे की वस्तु बिगड़ जाने पर उनका वेतन काट लेता है, आप अच्छा खाता है और नौकरों को बुरा खिलाता है, सदा इसी फिराक में रहता है कि कैसे इनके पैसे काट लूँ; उस मालदार के माल का मूल्य मैले के

बराबर है ! तात्पर्य यह है कि सम्पत्तिमान् को विशालहृदय भी होना चाहिए। ऐसा न होने से कभी-कभी तुच्छतर चीज के लिए किये-कराये पर पानी फिर जाता है। आप लोगों को अनुभव ही है कि विवाह के अवसर पर हजारों-लाखों खर्च किये जाते हैं, परन्तु दस-बीस रुपये के लिए कभी-कभी दोनों पक्षों मे ऐसा मन-मुटाव हो जाता है कि सारा खर्च व्यर्थ हो जाता है। ऐसे अवसरो पर यदि सोचा जाय कि जहाँ हजारो खर्च हुए, वहाँ पचीस और सही; तो सब सार्थक हो जाता है। किन्तु थोड़ा-सा लोभ काम बिगाड़ देता है।

तात्पर्य यह है कि जहाँ लोभ होता है, वहाँ राग भी आये बिना नहीं रहता। क्रोध. मान, माया लोभ और राग-द्वेष की एक शृंखला है। एक कषाय दूसरे को उत्पन्न करती है। अतएव इन सभी कषायों को त्यागने का अभ्यास करना चाहिए। वस्तुतः कषाय ही जन्म-जरा-मरण रूप ससार का मूल है। मूल को उखाड़ देने से वृक्ष नहीं रहता। इसी प्रकार कषायों का अन्त हो जाने पर भवभ्रमण का भी अन्त हो जाता है।

भाइयो ! अगर आप अक्षय और अखण्ड शान्ति चाहते है, यदि आप आत्मिक संताप से बचना चाहते हैं, निराबाध सुख की अभिलाषा करते है और सदा के लिए समस्त दुःखों से छुट्टी पा लेना चाहते हैं, तो इन कषायो को जीतने का अभ्यास करो। सदा सावधान रह कर उन पर नियन्त्रण स्थापित करो। ऐसा करने से आपको इसी जन्म मे अपूर्व शान्ति प्राप्त होगी। आप अनिर्वचनीय सुख का आस्वादन करने लगेंगे। परलोक मे भी आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

ब्यावर }
२-१०-१९४७ }



मानव-शरीर



स्तुतिः—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्यां सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानुसहस्त्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

आचार्य महाराज ने इस पद्य में भगवान् आदिनाथ की माता की स्तुति की है। भगवती मरुदेवी ऋषभदेवजी की माता

था। जगत् में सैंकड़ों माताएँ हैं और सैंकड़ों पुत्र उनसे जन्म लेते हैं; परन्तु हे सुरेन्द्र-असुरेन्द्र अर्चनीया, जगगंगा, परमसौभाग्य-शालिनी भगवती मरुदेवी! जैसे आपने भगवान् ऋषभदेव जैसे पुत्र को जन्म दिया, वैसा पुत्र जनने वाली जननी जगत् में दूसरी नहीं जनमी। ऐसे पुण्यवान् पुत्र का प्रसव करने वाली दूसरी माता नहीं थी। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण-चार दिशाएँ हैं और चार ही विदिशाएँ है। वे सभी ग्रहो, नक्षत्रों और तारकों को धारण करती है, किन्तु सूर्य को प्रकट करने वाली केवल पूर्व दिशा ही है। हे माता! तुमने ऐसे नर-रत्न को जन्म दिया, जिसने मानव जाति के अत्यन्त विषम और सर्वनाशकारी संकट को दूर किया, मनुष्य को जीवन की विधि और कला सिखलाई, प्राणरक्षा का परम मंत्र सिखलाया और अन्त मे स्वयं आदर्श बन कर आत्मिक कल्याण का पथ प्रदर्शित किया। जिसने लौकिक और लोकोत्तर धर्म का मार्ग दिखलाया और मानवीय इतिहास में एकदम नया स्वर्णपृष्ठ जोड दिया।

हे माता! तुम सचमुच असाधारण और तीव्रतर पुण्य लेकर इस धराधाम पर अवतीर्ण हुई थी। यही कारण है कि तुमने भगवान् ऋषभदेव से भी पहले मुक्ति प्राप्त कर ली। बहुत दिनों से बंद मोक्ष का द्वार खोल दिया।

माँजी साहिबा पहले ही मोक्ष मे पधार गई। भगवान् के पिता नाभि महाराज स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से च्यवन करके यहाँ आएँगे और फिर मोक्ष पधारेंगे। इस प्रकार बूढ़ी माता ने अपने पति और पुत्र से पहले ही बाजी मार ली।

मरुदेवी नन्दन ने कर्त्तव्य के क्षेत्र में अवतीर्ण होकर अद्-भुत कार्य किया। उन्होंने लौकिक और लोकोत्तर कल्याण के लिए

जो राजमार्ग निर्माण किया था, उस पर आज भी मानव जाति चल रहो है। यद्यपि उस पथ में अनेक कांटे-भाटे लोगों ने बिखेर दिये हैं, तथापि मूल मे पथ आज भी वहां है। उसके बिना दुनिया का निस्तार भी तो नहीं हैं।

ऐसी माता मरुदेवी और उनके अनूठे कुंवर ऋषभदेवजी को हमारा वार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! मै आपके सामने जो कुछ भो कह रहा हूँ, आपको प्रतिदिन सुना रहा हूँ, वह सब क्या है? सच पूछो तो उसमे मेरा कुछ नहो है। शब्द मेरे है, पर आशय सब उन्हीं भगवान् ऋषभदेव और महावीर का है। मैं तो तीर्थंकरो की दिव्य वाणी के ग्रामोफोन का ही कार्य कर रहा हूँ। अन्य मुनिराज भी आपको उन्हीं की वाणी सुनाते है। अतएव आपको अपना अहोभाग्य समझना चाहिए कि आप तीर्थंकर भगवन्तो की परमपावनी दिव्यध्वनि को सुनने का सुअवसर पा रहे है।

आचारागसूत्र भगवान की वाणी का पहला संकलन है। वही मै आपको सुना रहा हूँ। उसमे कल बतलाया गया था कि क्रोध, मान, माया और लोभ आदि में एक शृङ्खला है। जो क्रोध करता है, वह मान करता है और जो मान करता है वह माया करता है, जो माया करता है वह लोभ करता है, जो लोभ करता है वह राग करता है और जो राग करता है, वह द्वेष भी करता है। और इसी प्रकार इनके त्याग के सम्बन्ध मे भी जान लेना चाहिए। वह इस तरह-जो क्रोध को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागता है वह मान को भी जानता और छोड़ता है। इसी क्रम से आगे द्वेष तक समझ लेना चाहिए।

आज इससे आगे के पाठ के सम्बन्ध मे विचार करना है। आगे कहा गया है:—

'जे दोसदंसी से मोहदंसी,
जे मोहदंसी से गब्भदंसी,
जे गब्भदंसी से जम्मदंसी,
जे जम्मदंसी से मारदंसी,'

अर्थात् जो द्वेष करेगा उसे मोह का भी उदय होगा, जो मोह करेगा वह गर्भ में प्रवेश करेगा। जो गर्भ मे प्रवेश करेगा उसे जन्म भी लेना पडेगा और जिसे जन्म लेना पड़ेगा उसे मौत के मुँह मे भी जाना पड़ेगा।

गर्भ में प्रवेश करने वाला और जन्म लेने वाला मनुष्य प्रायः यह नहीं जानता कि वह जानवरों की योनि से, मनुष्यों की योनि से, देवयोनि से अथवा नरक में से आया है; फिर भी वह इन चार में से ही किसी योनि से आता है। जानवरों में भी कई प्रकार के जानवर है, कई प्रकार के मनुष्य हैं, कई प्रकार के देव हैं और कई भूमियों के नारक है। वह जीव नहीं जानता कि इनमे से मैं कहाँ से आया हूँ, लेकिन आया अवश्य कहीं न कहीं से है।

संसार में नाना प्रकार के जीव हैं और उनकी गर्भस्थिति एक सरीखी नहीं है। तथापि यहाँ मानव प्राणी को लक्ष्य मे रखा जाय तो कहा जा सकता है कि वह करीब नौ-सवा नौ महीनों तक गर्भ में निवास करता है।

भाइयो! गर्भ में रहना भी बड़ा भारी दुःख है जब देव की आयु पूर्ण होने लगती है तब वह तीन बातें सोच कर बहुत ही

व्याकुल होता है। सर्वप्रथम उसकी व्याकुलता का कारण यही होता है कि उसे गर्भ में निवास करना पड़ेगा। हमारा देवलोक का समस्त सुख एवं आनन्द छूट जाएगा। व्याकुलता का दूसरा कारण यह होता है कि जब मै वहाँ जाऊँगा तो माता-पिता के घृणित एवं अशुचि रज और वीर्य को कैसे आहार के रूप में ग्रहण करूँगा। पिता के वीर्य और माता के रज का जब सम्मिश्रण होता है, तभी जीव वहाँ पहुंचता है। उसका आहार करने से ही गर्भस्थ जीव का शरीर बनता है। कहाँ तो देवलोक मे अमृत-रसमय पुद्गलों का आस्वादन और कहाँ रज-वीर्य जैसे अपवित्र पदार्थों का आहार! दोनों में कई समानता नहीं। देव जब सोचता है कि मुझे इन गन्दी चीजो को भोगना पड़ेगा तो उसको घबराहट का पार नहो रहता। यह ऐसी चीजें हैं कि मनुष्य को भी पसद नहीं तो देवो को कैसे पसंद हो सकती हैं?

मगर कर्मोदय के सामने मनुष्य या देव की पसंदगी या नापसंदगी का कोई प्रश्न नहीं है। देवो को वह चीजें चाहे पसंद हों या नहीं, मनुष्य का शरीर तो इन्हीं चीजों से बनता है। भाइयो! कलाकंद का, बादाम के सीरे का अथवा कचौरी का तो यह शरीर बना हुआ नहीं है।

जब गर्भ रह जाता है तो स्त्री का ऋतुस्त्राव बंद हो जाता है, अर्थात् उसे मासिक धर्म नहीं होता। जैसे तुम्हारा विचार मकान बनवाने का होता है तो ईंट, पत्थर और केलू के टुकड़े भी इकट्ठे करके रखते हो। उन्हें काम के समझ कर फैंकते नहीं हो। और जब मकान बनवाने का विचार नहीं होता तो उन्हे बाहर फैंक देते हो। इसी प्रकार जब स्त्री गर्भवती नहीं थी तो प्रतिमास वह स्त्रीधर्म मे आती थी और मैली एवं अनावश्यक चीज को

बाहर फैंकती थी, परन्तु गर्भवती होने पर वही अनावश्यक चीज आवश्यक हो गई और शरीर बनने के काम आने लगी। क्योंकि उन्हीं चीजों से यह तीन मंजिल को बंगला तैयार होता है। इसी कारण प्रकृति उनको बाहर नहीं फैंकती। उन्हीं से यह नाक, कान, आँख, हाथ और पैर आदि सब अंगोपांग बनते हैं।

आप भुट्टे (मक्किए) खाते हैं, परन्तु उनकी गिल्लियाँ (डूंडियाँ) फैंक देते है। महतर सड़क या गली साफ करते समय उन्हे उठा लेता है और शहर से बाहर फैक देता है। जब वह समय पाकर सड़ जाती है तो खाद बन जाती हैं। खेतो में डाली जाती है और उनके बदले आपको गेहूँ मिलता है। इसी प्रकार जो पुद्गल आज आपको मनोज्ञ प्रतीत होते हैं, वही एक दिन अमनोज्ञ प्रतीत होने लगते हैं और फिर जब उनमे परिणमन होता है तो फिर मनोज्ञ मालूम होने लगते हैं। वस्तुतः पुद्गलों का परिणाम बड़ा ही विचित्र होता है। अगर हम दूर न जाएँ और सिर्फ अपने शरीर की रचना की प्रक्रिया पर ही विचार करें तो हमारे विस्मय का अन्त नही आएगा। रोटी, दाल, भात और शाक आदि आहार के पुद्गल किस प्रकार खल और रस रूप मे परिणत होते हैं? किस प्रकार उनसे सात धातुओं का निर्माण होता है? किस प्रकार वे विभिन्न इन्द्रियों के रूप में पलट जाते हैं? और उन्हें इस रूप में पलटने के लिए कैसे-कैसे कारखाने भीतर काम कर रहे हैं? वह कारखाने कैसे बने और उन कारखाने को बनाने वाला कौन है? इत्यादि प्रश्नों पर आप गौर करें तो आपको मालूम होगा कि इस शरीर के भीतर कैसी अनोखी रचना है?

हाँ, तो बात यह चल रही है कि अशुभ पुद्गल भी

निमित्त पाकर शुभ बन जाते हैं। देखिए, बड़े-बड़े शहरों में विष्टा फैकने के लिए गाड़ियाँ चलती है। वह विष्टा जंगल मे बड़े-बडे गड़हे खोदकर गाड़ दी जाती है। जब वह सड़ जाती है तो बढ़िया खाद बन जाती है, जिससे केले, नारंगी, मोसंबी और मीठे-मीठे खरबूजे आदि चीजे पैदा होती है है। यह सब कहाँ से आई ? विष्टा के उस गंदे खाद से ही तो उत्पन्न हुई है।

गाय भी जूठन खाती है और जूठन का गंदा पानी पीती है, लेकिन बदले मे कैसा मीठा और उत्तम दूध देती है ?

इसी प्रकार यह शरीर भी कैसी-कैसी वस्तुओं से बना है ? पता चल गया न ? कहा भी है—

यच्छुक्रशोणितसमुत्थमनिष्टगंधं,
नानाविधकृमिकुलाकलितं समन्तात्।
व्याधि दोषमलसद्म विनिन्दनीयं,
तद्वारितः कथमिहर्च्छति शुद्धिमङ्गम् ? ॥

अर्थात्-जिस शरीर की उत्पत्ति रज और वीर्य से हुई है, जो अनिष्ट गंध वाला है, नाना प्रकार के कीड़ो के समूह से व्याप्त है, रोगों का, दोषों का और मल का घर है और अतीव निन्दनीय है, वह शरीर पानी से धोकर शुद्ध कैसे किया जा सकता है ? इसकी शुद्धि कदापि नहीं हो सकती।

लेकिन वाह रे मनुष्य ! तू देखता हुआ भी नहीं देखता ! अपने शरीर को देख-देख कर अकड़ता है और ऐसे बैठता है कि कहीं कपड़े में दाग न लग जाय ! कहीं जरा-सा दाग लग गया तो उसे रम्फाइता है ! कई बार तो कपड़े मैले हो जाने के भय से

बच्चों को, चाहे वह रो ही क्यों न रहे हों गोद में नहीं उठाता। डरता है कि बच्चों के शरीर की धूल से कपड़े भर जाएँगे। कपड़ों की इतनी चिन्ता है मनुष्य को! मगर भूल जाता है कि यह शरीर महान् अशुचि पदार्थों से ही उत्पन्न होता है! जिन चीजों का दाग कपड़ों में लग जाने से हिन्दू कहता है कि पूजा-पाठ के योग्य नहीं रहे और मुसलमान कहता है कि नमाज़ पढ़ने योग्य नहीं रहे, उन्हीं अपवित्र वस्तुओं से इस शरीर का निर्माण हुआ है। हे मनुष्य! तू हजार बार पानी से धो अथवा साबुन से धो, यह शरीर स्वच्छ और पवित्र होने वाला नहीं है। हाँ, इस शरीर के सम्पर्क से पवित्र समझी जाने वाली वस्तु भी अपवित्र हो सकती है, पर शरीर पवित्र नहीं हो सकता। किसी ने ठीक ही कहा है—

दुग्धेन शुद्ध्यति मशीवटिका यथा नो,
दुग्धं ह्येति मलिनत्वमिति स्वरूपं।
नाङ्गं विशुध्यति तथा सलिलेन धौतं,
पानीयमेति नु मलीमसतां समस्तम् ॥

जैसे स्याही की गोली दूध से धोई जाय तो गोली तो शुद्ध होती नहीं, दूध ही मलिन हो जाता है; इसी प्रकार पानी से धोने पर शरीर शुद्ध नहीं होता, बल्कि पानी ही शरीर के संसर्ग से अपवित्र हो जाता है।

यह इस शरीर की वास्तविक स्थिति है, जिसके लिए शास्त्र के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है और तर्क की भी जरूरत नहीं। यह प्रत्यक्ष सिद्ध सत्य है। फिर भी आश्चर्य है कि मनुष्य अंधा होकर इस शरीर का अभिमान करता है और कहता है कि हम तो

शौचमूलक धर्म का पालन करते हैं, ऐसी पवित्रता रखते हैं, वैसी पवित्रता रखते हैं !

भाइयो ! यह शरीर सारा का सारा अशुद्ध पुद्गलों से बना हुआ है। सर्व प्रथम जीव रज-वीर्य का आहार करता है और फिर उससे शरीर बनता है। शरीर के पश्चात् आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ बनती हैं, फिर श्वासोच्छ्वास बनता है और फिर भाषा तथा मन का निर्माण होता है। यद्यपि इन सब का बनना एक ही साथ प्रारंभ हो जाता है, मगर निष्पत्ति क्रमशः ही होती है। इससे विदित होगा कि मन शाश्वत नहीं है। वह भी पुद्गल का ही बना हुआ है।

इन सब पुद्गलों पर आत्मा का अक्स पड़ता है। जैसे काच पर सूर्य का अक्स पड़ता है और वह चमकता है। मन का अक्स वचन पर पड़ता है और आत्मा का अक्स मन पर पड़ता है। मन बदल जाता है तो वचन भी बदल जाता है। जैसे चलती हुई गाड़ी की जंजीर रोक ली जाय तो डिब्बे भी रुक जाते हैं और एंजिन भी रुक जाता है, इसी प्रकार मन का निरोध होने पर वचन का भी निरोध हो जाता है और शारीरिक चेष्टाएँ भी रुक जाती हैं। मन, काया और वचन का संचालक है। उठते-उठते मन बदल जाय तो उठना बन्द हो जाता है। अतः सब से पहले आत्मा का अक्स मन पर पड़ता है और तब यह जीव बोलता है और शरीर से प्रवृत्ति करता है। जब मन प्रवृत्ति करने से उपरत हो जाता है तो वचन और मन को भी अपनी प्रवृत्ति रोक देनी पड़ती है।

यह मन क्या है ! शरीर यदि मोटर है तो मन उसका ड्राइवर संचालक है। जैसे मोटर में सेठ बैठता है, उसी प्रकार इस

मोटर में आत्मा या चिदानन्दजी विराजमान हैं। यों तो ड्राइवर मोटर को अपनी मर्जी के मुताबिक घुमाता है, पर जब सेठजी का कोई खास आदेश होता है कि अमुक दिशा में या अमुक स्थान पर इसे ले चलना है, तब ड्राइवर की स्वेच्छा काम नहीं आती। उसे अपने स्वामी का आदेश शिरोधार्य करना ही पड़ता है। या यों कह लीजिए कि शरीर एक प्रकार की बग्घी है। मन चलाने वाला और आत्मा उसमें बैठने वाला है। मन इस गाड़ी को चलाता है, मगर सेठ के होने पर यह सोचता है कि गाड़ी कहीं उबड़-खाबड़ रास्ते पर न चली जाय। अतएव वह बहुत होशियारी से धीरे-धीरे हाँकता है। कहावत है—लड़के गाड़ीवान के गाड़ी धीरे-धीरे हांक। हाँ, अगर बैठने वाला ही गफलत में रह जाय तो ड्राइवर गाड़ी को चाहे जिधर ले जाता है। इस शरीर रूपी बग्घी के विषय में कवि कहता है—

तेरे पाने को निर्वाण; मिली तन-बग्धी सुन्दर आन। ध्रु०।
बग्धी तेरी तन की सुन्दर, बैठा चेतन जिसके अन्दर।
मन है चालक चतुर सुजान ॥

हे भव्य जीव ! विचार कर कि अपने शरीर की इस बग्धी में बैठ कर तुझे कहाँ जाना है ? जो सवार बग्धी हांकने वाले को हांकने का हुक्म तो दे देता है, पर स्वयं ही यह नहीं जानता कि कहाँ जाना है, उसे आप पागल कहेंगे या बुद्धिमान ? निस्संदेह आप उसे पागल या मूर्ख कहेंगे। पर जो मनुष्य यह नहीं जानता कि इस शरीर रूपी बग्धी में बैठकर हमें कौन-सी मंजिल पार करनी है, उसे आप क्या कहते हैं ? अथवा जो बम्बई जाना चाहता है किन्तु दिल्ली के रास्ते चल रहा है, उसे आप क्या समझेंगे ?

विचार करो कि ऐसे लोगो की श्रेणी में ही तो आप नहीं है ? आपको कहाँ जाना है ? इस बग्घी में बैठकर आपको मोक्ष जाना है। मानव शरीर रूपी सुन्दर बग्घी में बैठकर आपको मोक्ष-नगर में जाना है और इसमें बैठे बिना मोक्ष तक पहुँचना सभव नहीं है। अनन्त जीवो ने इसी शरीर से मोक्ष प्राप्त किया है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और दूसरे बड़े-बड़े माण्डलिक राजा मनुष्य के चोले मे ही हुए है और होंगे। कहा है—

अर्हन्त चक्री बल वासुदेव होते है।
ऐसी नर-देह को वे फिजूल खोते है।

जिस शरीर मे अर्हन्त देव प्रकट होते है, उस शरीर को हे नादान ! तू व्यर्थ बर्बाद कर रहा है ? देख, यह आत्मा तन रूपी बग्घी में बैठी हुई है और इस तन के द्वारा मोक्ष में पहुंचना है। उसको चलाने वाला मन बड़ा चतुर है, दक्ष है, और ऐसा दक्ष है कि सामने बराबर ध्यान रखता है कि रास्ते में कौन आ रहा है, कहीं कोई पत्थर तो बीच मे नही पडा है, गाड़ी उलट तो नहीं जाएगी और किसी से कहीं झगडा तो नही हो जायगा। जमीन ऊँची-नीची हो तो उससे बचा कर वह सावधानी से चलाता है। रात में कितनी सावधानी रखनी पड़ती है। कि कहीं कोई कील न गढ़ जाय या कोई दूसरी दुर्घटना न हो जाय। मगर यह सब होता तभी है जब चिदानन्दजी की निगाह रहती है।

अच्छा इस बग्घी में और क्या है—

चंचल चपल इन्द्रियों के घोड़े,
विषयों हित ये चहुँ दिशि दौड़े।

लगाम ज्ञान की इनके तान।
मिली तन बग्घी सुन्दर आन ॥

पाँचो इन्द्रियों के घोड़े इस बग्घी मे जुते हुए हैं। यह इद्रियां किधर दौड़ती है ? अपनी खुराक के लिए, चारे के लिए। कान दौडते है मधुर स्वर श्रवण करने के लिए, आंखे अच्छा अच्छा रूप देखने के लिए, नाक सौरभ का आस्वादन करने के लिए, जीभ मधुर-मिष्ट रस चखने के लिए, और शरीर स्पर्श-सुख का अनुभव करने के लिए। इस प्रकार इन पांचो घोडा मे से कोई किधर और कोई किधर भागना चाहता है। अतएव इन्हे लगाम लगानी पड़ेगी। लगाम लगाये बिना ये काबू में नहीं रहने वाले है। इनके लिए ज्ञान ही लगाम है। पांचो इन्द्रियो के ज्ञान की लगाम लगा दी जाय तो ये वशीभूत हो जाएँगे।

इन्द्रियाणि प्रवर्त्तन्ते, विषयेषु निरन्तरम् ।
सज्ज्ञानभावनासक्ता, वारयन्ति हिते रताः ॥

यह इन्द्रियां निरन्तर अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त होती रहती है; परन्तु जो महामति ज्ञान-भावना में आसक्त हैं और जो वास्तविक आत्म कल्याण में लीन हैं, वे इन्हे ज्ञानभावना के द्वारा रोक देते हैं।

रे जीव ! तू पांचों इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय पाकर सुख का अनुभव करता है, परन्तु तुझे समझना चाहिए कि यह विषय विष मिले हुए पकवान हैं। कलाकंद मीठा लगता है और सब को प्रिय है, लेकिन उसमें थोड़ा-सा संखिया मिला दिया जाय तो क्या वह खाने योग्य रहेगा ? उसके खाने से कुछ फायदा होगा ? नहीं, वह प्राणलेवा हो जायगा।

इसी प्रकार इन विषयों में हालाहल विष भरा है। ज्यादा सिनेमा देखेगा तो आँखों की रोशनी बन्द हो जायगी और ज्यादा मनोज्ञ गंध सूंघेगा तो नाक बंद हो जायगी। ज्यादा मीठा खाएगा तो बिमारियाँ धर दबाएँगी। अधिक स्पर्शसुख का अनुभव करेगा तो निर्बल निस्तेज और मुर्दार होकर अकाल मे ही काल के गाल मे चला जायगा। इसलिए ज्ञान की लगाम लगाकर इन घोड़ों को रोक। ऐसा किये बिना ये रुकने वाले नहीं है।

यह गाड़ी कहाँ से पार हो रही है—

विकट है यौवन की यह झाड़ी,
जिसमें फँसी कई की गाड़ी।
देखो हो रहे वे हैरान,
मिली तन–बग्घी सुन्दर आन॥

काया की बग्घी को सँभाल कर चलायो गया तो ठीक है, अन्यथा खतरा ही खतरा है। बीच में बड़ा विकट रास्ता पड़ता है। यौवन रूपी झाड़ी पड़ती है। इसमें से सँभल कर निकल गये तो भाग्यशाली समझो, अन्यथा रावण जैसे राजा की भी गाड़ी झाड़ी में अटक हो गई। अरणक साधु की गाड़ी इस झाड़ी में फँसी तो उसे साधु से गृहस्थ बनना पड़ा। यौवन के उन्माद मे कितने ही लोग ऐसे-ऐसे कर्म कर डालते हैं कि उनके सारे परिवार को, सारी जाति को भी नतमस्तक होना पड़ता है। जातियों में झगड़े पड़ जाते हैं, जाति बहिष्कार के अवसर उपस्थित होते हैं। निन्द्य से निन्द्य जो कृत्य हो सकते हैं, वह यौवन का उन्माद करा लेता है। उनके फलस्वरुप, उन्माद दूर होने पर मनुष्य जीवन पर्यन्त पश्चाताप करता है, अपने को धिक्कारता है, अपनी दृष्टि

में ही पतित हो जाता है और मुँह दिखलाने में भी लज्जा का अनुभव करता है।

यौवन से अंधे बने हुए लोग किस प्रकार नारकीय यंत्रणाएँ भोगते हैं, यह देखना हो तो किसी बड़े अस्पताल में चले जाओ। वहाँ देखोगे कि इन पागलों ने किस प्रकार मूर्खतावश अपने हीरा से जीवन को बर्बाद किया, किस प्रकार घोर यातनाओं को न्यौता देकर बुलाया और किस प्रकार मनुष्यभव में ही नारक भव को भोग रहे हैं! किसी का हाथ कटा है, किसी का पैर कटा है और कोई बुरी तरह कराह रहा है! इस प्रकार प्रत्यक्ष में देखा जा सकता है कि जवानी को न सँभालने से मनुष्यों का कैसा हाल होता है। जिनकी गाड़ी जवानी की झाड़ी में फँस गई, उनकी दशा देखो। सारा जीवन बर्बाद हो गया! कई संखिया खाकर मर गये, कई नदी में कूद कर प्राण विसर्जित कर चुके और ऐसे गये कि फिर पत्र भी नहीं दिया। ऐसी है यह जवानी की झाड़ी! कहा है-

कब्ज़ कर लो जवानी को,
जवानी तो दिवानी है!

ये अंकुश क्यों लगाये जाते हैं? इसीलिए कि यह गाड़ी कहीं जवानी की झाड़ी में औंधी न हो जाय। कहीं उलट न जाय।

जवानी एक मिनिट में मनुष्य की तारीफ को मिट्टी में मिला देती है। जो मनुष्य अभी अभी सब का आदर पात्र था, प्रतिष्ठित था, जिसे लोग लायक कहते थे, वही थोड़ी-सी देर में लोगों की निगाह से गिर जाता है, उसे हिकारत की दृष्टि से देखा जाता है, सब नालायक कहने लगते हैं। कपड़ा फाड़ने में कितनी देर लगती है और उसे साँधने में कितना समय लगाना पड़ता है? प्रतिष्ठा

स्थापित करने मे बहुत समय लगता है पर बिगाड़ना चुटकियो का काम है ! लायक बनने में अर्सा लगता है, नालायक बनने मे एक मिनिट की भी देर नहीं लगती । इस प्रकार जीवन की गाड़ी जवानी की झाड़ो में फँस गई तो निकलना कठिन हो जाता है और सँभल गई तो परले पार हो जाती है ।

एक महात्मा प्रतिदिन बाहर निकलते तो रास्ते मे एक वेश्या का घर पड़ता था । जब महात्मा उसके घर के सामने से निकलते तो वह प्रश्न करती-'कहो महात्मा मर्द या नामर्द ?' महात्मा 'नामर्द' कह कर अपना पिण्ड छुड़ाते और चल देते थे । एक रोज महात्मा बीमार हो गये और सख्त बीमार हो गये । यहाँ तक कि वस्ती मे जाना भी छूट गया । मरने का समय निकट आ गया । रंडी ने विचार किया-आज महात्मा क्यों नहीं आये ? वह महात्माजी की कुटिया मे गई और देखा कि वे कुछ होश में है और कुछ बेहोश हैं । तब उसने कान के पास मुँह ले जाकर कहा-'महात्मा मर्द या नामर्द ?' महात्मा ने तड़क कर उत्तर दिया-मर्द मर्द और फिर मर्द ! अब तू मेरा क्या बिगाड़ सकती है ? अब नगाड़े बज चुके है और कूच की तैयारी है । श्मशान मे लक्कड़ पहुँच गये है । अब तेरा जादू नही चल सकता ।

भाइयो ! माल सँभालना मुश्किल है । माल लेकर अजमेर जाऊँ, जयपुर जाऊँ, यह सोचते-सोचते रास्ते मे ही लुट जाता है । एक आदमी दिल्ली से हजारों के नोट लेकर आ रहा था कि रास्ते में ही लुट गया उसने विचार किया-सेठ के पास जाऊँगा और कहूँगा कि नोट लुट गये तो वह कब मानने वाला है ? इस प्रकार सोच कर वह यमुना नदी के तट पर जाकर डूबने का विचार करने लगा । डूबना चाहता था कि पुलिस के सिपाहियो ने पकड़ लिया

और पूछा-क्यों आत्महत्या करने का विचार कर रहा है? उसने सारी बीती घटना सुना कर कहा-सेठ मेरे कहे पर विश्वास नहीं करेगा और मुझे बेईमान समझेगा। दुनिया से बदनाम हो जाऊँगा। बदनाम होने की अपेक्षा मर जाना ही मुझे अच्छा लगता है।

संयोग की बात समझिए कि उसके नोट लेने वाले गुण्डे भी अकस्मात् वहाँ आ गए। पुलिस के कर्मचारी बड़े घाघ होते हैं। उन्होंने किसी प्रकार जान लिया कि चोर यही हैं। पकड़ कर उन्हे समझाया-देखो, बेचारा आत्मघात करने को तैयार है। इसके छोटे-छोटे बच्चे बेमौत मारे जाएँगे। अगर तुमने नोट लिये हैं तो इसे लौटा दो। हम तुम्हे बेदाग छोड़ देंगे।

पत्थर पसीज गये। गुण्डों के घट में दया आगई। उन्होंने सारे नोट निकाल कर दे दिये।

कोई कितनी ही होशियारी करे, मौका आने पर माल उतर जाता है। मनुष्य मानता है कि मै बड़ा सावधान और चतुर हूँ। मुझे कौन शीशी में उतार सकता है मगर सेर को सवा सेर मिल ही जाता है और चतुराई एक ओर रह जाती है।

एक अंगरेज दिल्ली गया और सोचने लगा-देखूँ गुण्डे कैसे होते हैं। मुझे ठग लें तो जानूँ। यह कह कर वह दिन भर घूमता फिरा। शाम के समय कोतवाली में पहुँचा और कहने लगा-सुना था कि दिल्ली मे बहुत गुण्डे है और बड़े होशियार है, लेकिन मैंने तो एक भी गुण्डा नही देखा!

उसके पास एक आदमी खड़ा था। उसे यह कहना सहन नहीं हुआ। उसने उत्तर दिया-तुम्हारे पास था ही क्या? मैंने तीन बार तुम्हारी जेब टटोली, पर उसमें पीतल की तीन गिन्नियों

के सिवाय कुछ भी तो नहीं था ! उन पीतल के टुकड़ों का मुझे क्या करना था ? अगरेज शर्मिंदा हो गया। उसने गुण्डों का लोहा माना और चला गया।

अभिप्राय यह है कि जवानी मे बड़े-बड़े समझदार मनुष्य भी ठगा जाते हैं और जो जीव सर्वार्थसिद्ध विमान में जा सकते थे, वे सातवें नरक मे चले जाते है। पुडरोक-कुंडरीक का उदाहरण याद कीजिए।

दो भाई थे पुण्डरीक और कुंडरीक। बड़ा भाई राजा था और छोटा भाई साधु बन गया था जब आयु के तीन दिन शेष रह गये तो साधु की नीयत बिगड़ गई। उसने एक हजार वर्ष तक बेले बेले की तपस्या की थी। पर भवितव्य को कौन टाल सकता है ! वह साधुता से गिर गया और संघ छोड़ कर घर आ गया। बड़े भाई ने उसे प्रतिबोध देने का प्रयत्न किया, किन्तु उस पर प्रभाव न पडा। तब उसने अपना राज्य उसे दे दिया और ओघा-पात्र आदि उसके उपकरण आप ले लिये। इस प्रकार मुनि राज मुकुट धारण करके राजा बना और राजा केशमुण्डन करके मुनि बन गया। राजा भोगों में अत्यधिक आसक्त हो गया। यहाँ तक कि मांस-मदिरा आदि का भी सेवन करने लगा। उधर मुनि बना हुआ बड़ा भाई रूखा-सूखा खाने लगा और कंकरीली भूमि पर सोन लगा। सुकुमार शरीर इन कष्टो को सहन न कर सका। साधु बीमार पड़ गये। उधर वह राजा भोग-विलास में ऐसा तन्मय हुआ कि वह भी बीमार पड़ गया। दोनों रोगग्रस्त हो गए। तीन दिन हुए थे कि दोनों ने परस्पर विरोधी कारणों से शरीर का त्याग किया। दोनों मर कर कहाँ गये ?

एक समय देखो चवे, भाई दोनों जान।
एक सातवीं नरक में, एक अनुत्तर विमान॥

देखिए, जिसने हजार वर्ष भोग साधा और संयम पाला, वह तो सातवी नरक भूमि मे गया और केवल तीन दिन संयम पालने वाला अनुत्तर विमान मे देव हुआ। इसीलिए कहा गया है कि अच्छा भाग्य होता है तभी उस झाड़ी में से सकुशल गाड़ी निकलती है और तभी काम बनता है। जरा-सा प्रमाद हुआ कि गाड़ी उलटते देर नहीं लगती। कहा है—

जिसके जरिए से सुख पाया,
अपना जीवन सफल बनाया।
तुम बैठे गफलत दरम्यान,
मिली तन-बग्धी सुन्दर आन॥

इस मनुष्य-देह से कितनो का ही उद्धार हो गया। जिनका उद्धार हुआ, इसी देह से हुआ। इसी देह ने उन्हे परम सिद्धि प्रदान की। इसी देह मे तीर्थंकर प्रकट हुए। यही देह आत्मकल्याण का सर्वोत्कृष्ट साधन है। इस देह को प्राप्त करने के लिए आत्मकल्याण के अभिलाषी देवता भी तरसते हैं। कितने भाग्यवान् हो तुम कि इस देह को पा सके हो। इसे पाकर गफलत मे मत रहो। कितने ही भव्य एक दिन व्याख्यान सुन कर ही छह खंड का राज्य त्याग कर साधु बन जाते हैं। वे छह खंड का राज्य इस प्रकार छोड़ देते है जैसे नाक मे से मैल निकाल कर दूर फैंक दिया जाता है। वे सर्वोत्तम मानवीय भोगोपभोग भोगने वाले जीव थे। विशाल और

सुखद राजमहलों मे रहते थे । उनके भोगो की समता नहीं हो सकती—

महल मनोहर पौढ़ता, कोमल सेज बिछाय ।
ते कंकरीली भोम पै, सोए समधर काय ॥
वे गुरु मेरे मन वसो ॥

जिनके लिए राजमहल मे फूलो की सेज बिछती थी और जिन्हे एक पांखुरी के ऊपर आई हुई दूसरी पांखुरी चुभती थी, ऐसे अतिशय कोमल शरीर वाले भी जब संयमी साधु बने तो समभाव धारण करके, आत्मानन्द मे लीन होकर, बिना कुछ भी बिछाए, ककरों-पत्थरों पर सो गए ।

जिन्हे साधु जीवन के आन्तरिक आनन्द का अनुभव नहीं है, वे ऐसी कठिनाइयो को सुन कर कॉप उठते हैं, मगर जिन्हे उसका अनुभव हो चुका है, वे भलीभांति जानते हैं कि साधुता का सुख ऐसा सुख है जो इन्द्र या उपेन्द्र को भी प्राप्त नहीं है—

सुखिनो विषयतृप्ता नेन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यहो ।
भिक्षुरेकः सुखी लोके, ज्ञानतृप्तो निरंजनः ॥

अर्थात्-दिव्य विषयो के उपभोग मे आकण्ठ डूबे रहने वाले इन्द्र और उपेन्द्र भी उस सुख का अनुभव नहीं कर सकते, जो सुख सदा ज्ञान मे तृप्त रहने वाले निरंजन भिक्षु को प्राप्त होता है । भिक्षु के ज्ञानानन्द के सामने इन्द्र का स्वर्गीय सुख भी तुच्छ है ।

और भी कहा है—

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्, यादृग् भिक्षुस्तु निःस्पृहः ।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे, त्रिलोकीविभवे सति ॥

इस संसार में स्पृहाहीन भिक्षु को जैसा सुख प्राप्त है, वैसा इन्द्र को भी प्राप्त नहीं। तीन लोक की सम्पूर्ण सम्पदा प्राप्त हो जाने पर भी दूसरे को वह सुख नहीं मिल सकता।

सच है, असली सुख इच्छा की तृप्ति मे—निवृत्ति में है। जहाँ जितनी इच्छानिवृत्ति है वहाँ उतना ही सुख है और जिस प्राणी में जितनी ज्यादा तृष्णा है, वह उतना ही ज्यादा दुःखी है। भिक्षु का सुख सर्वोत्तम इसी कारण है कि समस्त कामनाओं को जीत चुका है। भगवान् महावीर स्वामी ने सुखी बनने का यही मार्ग बतलाया है—

आयावयाही चय सोगमल्लं ।
कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ॥
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं ।
एवं सुही होहिसि संपराए ॥
द. अ. २ गा १५ ॥

कामनाओ को जीत लो तो दुःखो को जीत लिया। एक और साधु के उद्गार सुनने हो तो सुनिए। वे कहते हैं कि यह साधुत्व जितना मनोहर है, उतना दूसरा कुछ भी नहीं—

न च राजभयं न च चौरभयं,
न च वृत्तिभयं न वियोगभयम् ।
इहलोकसुखं परलोकहितं,
श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम् ॥

अहा ! यह साधुपन बड़ा ही आनन्ददायक है। साधु बनते ही दुनिया की सब झंझटे दूर हो जाती हैं। न यही भय रहता है कि राजा लूट लेगा और यह डर कि चोर चोरी कर ले जाएगा। राजा को और चोरों को जिन चीजों की जरूरत होती है, वे सब चीजें तो हमने स्वेच्छा से ही ठुकरा दी है। अब न आजीविका का भय है और न वियोग का भय है। 'चारो दिशा जागीरी मे' हैं अतएव आजीविका की चिन्ता नहीं रही। संसार के समस्त पदार्थों को, यहां तक कि शरीर को भी पराया समझ लिया और सब से अपना ममत्व हटा लिया, इस कारण वियोग का भी भय नहीं रहा। इतने पर भी विशेषता यह है कि यह श्रमणत्व इस लोक मे सुखकारी और परलोक मे हितकारी है। भला इससे बढ़ कर मजे़दार चीज और क्या हो सकती है!

भाइयो ! यह उल्लिखित उद्गार उन सन्तों के है जो संसार से विरक्त हो गये थे और जिन्होंने साधुता का आनन्द चखा था। एक हिन्दी की भी बानगी लीजिए—

राजा तो मगन राजकाज के संवारन में,
रंक तो मगन सेर चून की लगन में।
धनी तो मगन धन-दौलत गाढ़न पर,
कामी तो मगन मृगनयनी के वदन में।
कूड़ा तो मगन कूड़ताई त्रिखवादन में,
शूरा तो मगन सूरताई सों ही जूझन मे।
कोउ काहू में मगन कोउ काहू में मगन,
मुनिराज तो मगन वीतराग के भजन में॥

राजा राज्य करने मे ही मगन रहता है। उसकी मौज को दूसरा क्या जाने ? गरीब को सेर के बदले सवा सेर आटा मिल जाय तो समझता है कि आज मैंने अच्छे का मुँह देखा है। वह उसी मे मगन है। मूंजी मालदार को ज़मीं में दौलत गाड़ने मे ही आनन्द मिलता है। और उसका आनन्द वही जानता है। किसी दुराचारी से पूछो कि बुरे रास्ते मे चलने से क्या मजा है ? तो वह उत्तर देता है कि हमारा मज़ा हम ही जानते हैं। सातवे नरक मे चले जाएँगे, आठवे मे चले जाएँगे; इससे बढ़ कर और क्या होगा ? जान चली जाय तो भी परवाह नही। शूर वीर भी यही कहता है। उसे वीरता प्रदर्शित करने मे ही आनन्द है। जूझते-जूझते प्राणो का उत्सर्ग कर देना वह अमर हो जाना मानता है। किसी को इधर की उधर और उधर की इधर भिड़ाने मे ही मजा आता है। अखबार वालो का काम कैसे चलता है ? वे इधर-उधर की छापने मे ही कमाते हैं। नारदजी को इधर-उधर जाकर चिनगारी छोड़ देने, लड़ाने-भिड़ाने मे ही मज़ा मिलता था। इस प्रकार कोई किसी मे और कोई किसी में मौज मानता है। मगर मुनिराजो को भगवान् के भजन मे ही मजा मिलता है। उन्हे मजा न मिलता तो क्यो छह खंड का राज तज कर चक्रवर्ती साधु बनने की इच्छा करते ?

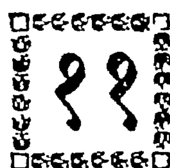
सच यह है कि ससार का समस्त विषय जनित सुख परावलम्बी, तुच्छ और अनुपादेय है। साथ ही क्षणिक भी है। स्वेच्छापूर्वक इसका परित्याग करके परमात्मा का भजन करने से वचनागोचर आनन्द प्राप्त होता है। उसके फलस्वरूप मोक्ष का अमर सुख मिलता है।

मोक्ष का वह सुख इसी शरीर से प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार यह शरीर तार भी सकता है और डुबा भी सकता है—

दुर्लभ तन-बग्घी का पाना,
इस खातिर सबको चेताना ।
'चौथमल' कहे भजो भगवान्,
मिली तन-बग्घी सुन्दर आन ॥

भाइयो ! मनुष्य शरीर मिलना बहुत मुश्किल है । मिला है तो इससे कल्याण करो । कोई कह सकता है इसे पाकर मौज उड़ाओ, लेकिन हमारे पास आओगे तो हम यही कहेंगे कि दुनिया झूठी है, अतः तपस्या करो । अगर हमारा कहना नहीं रुचता तो जाने दो साधु की बात ! तुम स्वयं ही पीछे पछताओगे और कहोगे कि मान गये होते तो अच्छा था । जिसका भला होने वाला है उसी को संतों की बात रुचिकर होगी और वही उसे मान कर तप और संयम का आचरण करके आनन्द का भागी होगा !

ब्यावर
२-१०-१९४७



राग-द्वेष



स्तुतिः—

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा—
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चन मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

प्रभो ! यह जीव अनादि काल से चतुर्गतिक संसार में भ्रमण कर रहा है। इसने अतीत काल में अनन्त-अनन्त भव धारण किये हैं। संसार के जीवों की चौरासी लाख योनियों में से कोई भी योनि शेष नहीं रही, जहाँ इसने अनन्त बार जन्म न लिया

हो। जन्म-मरण के निरन्तर बहने वाले प्रवाह में यह अनन्त बार मनुष्य की योनि में उत्पन्न हुआ। इसने अपने कल्याण के लिए हरि हर ब्रह्मा आदि अनेक देवों की उपासना की, पूजा की, भक्ति की और उनकी शरण गही। परन्तु किसी से कोई लाभ न हुआ। किसी से उद्देश्य की सिद्धि न हुई।

प्रभो! इस जन्म में न जाने कौन-सा पुण्य प्रकट हुआ कि आपके दर्शन हो गये, आप से भेंट हो गई और आपका शरण ग्रहण करने की बुद्धि उत्पन्न हो गई। भगवन्! पहले मैंने हरिहर आदि अन्य देवों को जो देखा था सो उनका देखना भी मैं अच्छा ही समझता हूँ, क्योंकि उन्हें देख लेने के पश्चात् आपको देख कर हृदय में पूरा सन्तोष हो जाता है। जो एक बार आपको अवलोकन कर लेता है, उसके चित्त को जन्म-जन्मान्तर में भी कोई भी आकर्षित करने में समर्थ नहीं हो सकता।

ग्राहक एक दुकान पर जाता है और उसे बढ़िया से बढ़िया चीज़ दिखलाई जाती है, तो भी उसके चित्त को सन्तोष नहीं होता। वह सोचता है दूसरी दुकान पर शायद इससे भी उत्तम मिल जाय। वही ग्राहक जब दस-पांच दुकानों का चक्कर लगा देता है और सब जगह उससे घटिया चीज़ देखता है, तब उस बढ़िया चीज़ से सन्तोष हो जाता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि तुलना किये बिना निश्चय नहीं होता और न वस्तु का वास्तविक महत्त्व समझा जा सकता है। इसी दृष्टि से आचार्य महाराज ने यहाँ कहा है कि पहले दूसरे देवों का देख लेना उपयोगी हुआ। उन्हें देखने के पश्चात् जब वीतराग भगवान् को देखा तो पूर्ण संतोष हो गया, क्योंकि दोनों की तुलना करने का अवसर मिल गया। वीतराग देव को जब देखा तो प्रतीति आ गई कि देव है तो यह है; बाकी

तो कोई कामी है, कोई क्रोधी है, कोई लोभी है, कोई रागी है, कोई द्वेषी है और कोई दभी है। अतएव हे प्रभो ! आपको देख लेने पर दूसरा कोई देव पसंद नहीं आता। यही नहीं, आपमें और गाढ़ी रुचि जागृत होती है। यह यथार्थ ही है, क्योंकि जब सचाई सामने आ जाती है तो झूठ अच्छा नहीं लगता।

जिन भगवान् ऋषभदेव को देख लेने पर इस भव मे तो क्या अगले भवों मे भी दूसरा कोई देव पसंद नहीं आता, उन भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! जगत के जीवों ने अगर भगवान् के सच्चे स्वरूप को पहचान लिया तो औरो मे उनकी रुचि नहीं रहती। औरों में रुचि हो तो जानना चाहिए कि अभी वीतराग देव को पहचाना ही नहीं है। वह जीव भ्रम मे पड़ा हुआ है।

छोटे उम्र के बालको और बालिकाओ को गुड्डा गुड्डी का खेल बहुत प्रिय होता है। वे गुड्डा-गुड्डी बनाते हैं, उनसे खेलते हैं, और उनकी शादी भी करते हैं। मगर उनको यह खेल तभी तक रुचिकर होता है, जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती। शादी होने पर बालिका समझ लेती है कि असली गुड्डा मेरा पति है और असली गुड़िया मैं स्वय ही हूँ। उस समय उन गुड्डा-गुडियो का खेल उन्हे पसंद नहीं आता। उन्हें आले मे विराजमान कर दिया जाता है।

इसी प्रकार जीव को जब असली ज्ञान हो जाता है तो वह अपने शरीर को मिथ्या समझने लगता है। यह बात अवश्य है कि सच्ची समझ समीचीन ज्ञान होने पर ही आती है और समीचीन ज्ञान होना सहज नहीं, बहुत कठिन है।

सच्चा स्वरूप किसने जाना था ? कामदेव श्रावक को असल ज्ञान हुआ था। देवता तलवार लेकर आया और डरा-धमका कर उससे सत्य मार्ग से हटने के लिए कहा ! मगर कामदेव उसकी धमकी से नहीं डरा और अपने सत्य पर डटा रहा।

असली ज्ञान हुआ था अरणक (अर्हन्नक) श्रावक को ! जब उसने जान लिया कि देवता मेरे जहाज को आसमान में ले जा रहा है। वह कहता है-अरणक ! अपने धर्म का परित्याग कर दो; अन्यथा तेरे इस जहाज को ऊपर ले जाकर गिरा दूंगा। तू प्राणों से हाथ धो बैठेगा।' ऐसे विकट प्रसंग पर धैर्य रहना कठिन है। मगर अरणक का चित्त शान्त और स्वस्थ है उसे निश्चय है कि जगत् में धर्म से अधिक समर्थ संरक्षक दूसरा कोई नहीं है। अतएव अविचल भाव से कहता है-जहाज और है, शरीर और है और मेरी आत्मा और है। मेरी आत्मा का कोई विनाश नहीं कर सकता। यह तो अजर, अमर, अविनाशी और अखंड है। शूर वीर पुरुष संकट के समय घबराता नहीं है। सैकड़ों घाव खाकर भी चूं तक नहीं करता।

एक राजपूत इन्दौर आया। उसके पैर में भयंकर बीमारी थी। उसने डाक्टर को पैर दिखलाया। डाक्टर ने कहा-इसका आपरेशन करना पड़ेगा, अन्यथा सारा पैर सड़ जाएगा। राजपूत ने कहा-ठीक है, काट डालिए।

डाक्टर ने कहा-क्लोरोफार्म सुंघा देंगे। उससे तुम बेहोश हो जाओगे और तकलीफ महसूस नहीं करोगे।

राजपूत बोला—क्लोरोफॉर्म सूंघ कर पैर कटाया तो मैं असली राजपूत नहीं।

उस वीर पुरुष ने पैर लम्बा कर दिया और कहा—लो जहाँ से चाहो, काट डालो।

राजपूत का हड्डियों सहित पैर काट दिया गया। वह तनिक भी नहीं घबराया और न आँखों में एक भी आंसू आया। असल राजपूत ऐसे होते हैं। नही तो "ए मेरी माँ!" चिल्ला-चिल्ला कर जमीन-आसमान एक कर देते हैं।

भाइयो! असल वीर जो होगा वही कर्म काट सकेगा। "ए मेरी माँ" कहने वाले कदापि मोक्ष मे नहीं जा सकते। शास्त्र तो स्पष्ट करता है कि—

जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा।

जो कार्य करने मे शूरवीर होगा, वही धर्म करने में भी शूर होगा असल में मनुष्य में पाई जाने वाली शूरता अखंड और अविभाज्य शक्ति है और कर्म तथा धर्म उसके दो क्षेत्र है। शूरता है तो वह कर्म मे भी प्रयुक्त हो सकती है और धर्म में भी। शूरता का स्वामी आत्मा है। उस शक्ति का प्रयोग करना आत्मा पर निर्भर है। वह अपनी शक्ति को धर्म के क्षेत्र में भी प्रयुक्त कर सकता है और कर्म के क्षेत्र में भी। आत्मा के जैसे संस्कार होगे, वैसे ही वह अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा।

जिसमें शक्ति ही नहीं, वह किसी भी क्षेत्र में अपना विशिष्ट पुरुषार्थ प्रकट नहीं कर सकता। न विशिष्ट कर्म कर सकता है न विशिष्ट धर्म ही कर सकता है। नपुंसकों को तलवार और बंदूक देकर युद्ध के मैदान में भेज दिया जाय तो क्या उनके बल पर विजय की आशा की जा सकती है? कदापि नहीं। हिजड़े कभी निहाल

नहीं कर सकते। 'ऐ मेरी माँ' कहने वालों से कोई उम्मीद नहीं करना चाहिए। हीजड़े समय आने पर तालियाँ पीट सकते है और कुछ नहीं कर सकते।

शूरवीर तलवार की भी परवाह नहीं करता। कोई भी बड़े से बड़ा संकट उसे उसके उद्देश्य से विचलित नहीं कर पाता। गजसुकुमार को याद कीजिए। थोड़ो-सी देर मे ही उन्होने सिद्धि-लाभ कर लिया। धधकते हुए अंगार सिर पर रक्खे है, सिर खिचड़ी की तरह पक रहा है और दुस्सह वेदना हो रही है, किन्तु परिणामो की धारा इतनी ऊँची चढ़ी है कि सिर को इधर से उधर नहीं किया!

ठीक ही कहो है—'कद तांई अवेर करे कोई जीमे रे' अर्थात् चाहे कोई कितनी ही अवेर-देखभाल, सारसँभाल करे, देखने वाले तो सूखे टुकड़े ही खाएँगे। तात्पर्य यह है कि अज्ञानियों को कितना ही समझाओ, चौरासी में जाने वाले तो भटकते ही फिरेंगे। मोक्ष पाने वाले विरले शूरवीर ही होते है। सच्चा ज्ञान जिन्हे मिल गया है, उनका क्या कहना है! वही परमात्मा को पहचानते हैं और वही धर्म को जानते हैं।

श्रीमद् आचारांगसूत्र मे भगवान् ने फर्माया है कि जो लोभदर्शी होता है, वह रागदर्शी भी होता है और जो रागदर्शी है वह द्वेषदर्शी भी होता है। इन सब का पारस्पारिक कार्य कारण भाव है। जहाँ राग आया कि द्वेष आ ही जाता है। राग की पूर्ति मे त्रुटि रही तो द्वेष आये बिना नहीं रहता। किसी ने अनुराग के वशीभूत होकर कुछ काम करना चाहा और उसमें दूसरे की सहायता चाहो। अगर दूसरा उसे सहायता नहीं देता तो वह द्वेष का भाजन बन जायगा। किसो ने आपसे सौ रुपया माँगा और आपने नहीं दिया तो आपके प्रति उसका द्वेष जाग उठेगा। अगर आपने

दे दिया और फिर माँग लिया तो भी द्वेष उत्पन्न होगा। उधार दिया और दुश्मनी तैयार हुई। कहा है—

दुश्मन नहीं हो तो कर के देख लो, दे माल उधारो।

जिसका कोई शत्रु न हो और शत्रु बनाना हो तो उसका सरल उपाय है उधार दे देना। उधार देना दुश्मन पैदा करना है; क्योंकि वह वक्त पर न लौटाये तो माँगना पड़ता है और माँगने पर देनदार नाराज होता है। कहता है– क्या हमारा विश्वास नहीं है? क्या गाँव मे हमारी हवेली नहीं है? क्या हमने दिवाला निकाल दिया है? ऐसे ओछे जी लोगों से कभी उधार नहीं लेना चाहिए। अरे छोकरे, फैंक दे इनके रुपये!' बस दुश्मन तैयार हो गया। यह कथन प्रायिक है। अकसर ऐसा होता है, परन्तु सर्वत्र ऐसा ही होता हो. सो बात नही। जगत् में लेन-देन के बिना काम नहीं चलता और एक दूसरे को समय पर आर्थिक सहयोग न दे, यह न तो संभव है और न उचित ही है। अपने प्रिय जनों, संबंधियों एवं साथियों को धनवान् गाढ़ी आवश्यकता के समय भी अगर उधार न दे तो उसका धन किस काम का है? पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही समाज का निर्माण हुआ है और इसी आधार पर समाज का संचालन हो रहा है। कोई किसी को कुछ भी सहयोग न दे और सब अपने-अपने हाल में मस्त हो जाएँ तो समाज का अस्तित्व ही न रहे। फिर पशुओं के झुंड मे और मनुष्य-समाज मे कोई अन्तर नहीं रह जायगा।

अभिप्राय यह है कि जो प्रामाणिक, कुलीन और सज्जन होते है, वे उधार ली हुई रकम को कृतज्ञता पूर्वक लौटा देते हैं और समय पर नहीं दे पाते तो लज्जित होते है और लेनदार से क्षमायाचना करते हैं। ऐसे लोगों पर यह कथन लागू नहीं पड़ता।

हाँ, तो जहाँ राग होता है वहाँ द्वेष का कोई न कोई निमित्त मिल ही जाता है। एक सेठ ने अपने मित्र के लडके की शादी मे बीस लाख का कठा पहनने को देकर गँवा दिया। बात यों हुई—

एक करोड़पति सेठ था। वह बडा योग्य आदमी था। एक लखपति सेठ के साथ उसका प्रेम था और अच्छी खासी मित्रता थी। एक दिन लखपति सेठ के लड़के की सगाई हुई। उसके करोड़-पति मित्र ने सब तरह को सहायता पहुँचाई। उसे खूब खुशी हुई। अब विवाह का समय आया और लडका बाने बैठा। करोड़पति सेठ ने विचार किया—मेरे मित्र के लडके का विवाह है तो दुनिया कैसे जानेगी कि यह करोड़पति का मित्र है? कैसे मालूम होगा कि करोड़पति ने क्या सहायता दी!

उसने अपने मित्र को बुलाकर बीस लाख का एक कठा दिया और कहा—यह लड़के के गले में पहना देना। उसकी कही कोई लिखा-पढ़ी नही हुई और न कोई साक्षी बनाया गया; क्योंकि विश्वास था। कंठा लेकर सेठ घर आया तो उसकी स्त्री ने पूछा—क्या लाये हो? सेठ ने कहा—करोड़पति के यहाँ से कठा लाया हूँ शादी के समय लड़के को पहनाने के लिए। किन्तु मेरा विचार है कि इसे अभी नही पहनाऊँगा। उसने वह कंठा तिजोरी मे रख लिया।

एक दिन बीता, दो दिन बीत गये; किन्तु लड़के के गले मे कंठा नहीं दिखाइ दिया तो करोड़पति ने विचार किया—कंठा अभी तक क्यों नहीं पहनाया गया? फिर आप ही आप सोचा अभी नहीं तो फिर पहना देगा।

इधर लखपति सेठ को विवाह संबंधी सभी काम करना अवश्य है, परन्तु उसका चित नहीं लगता। उसका पाप उसे व्यग्र एव

व्याकुल बनाये रहता है। एक रात्रि मे उसे नींद न आते देख और इधर—उधर करवटे बदलते देख उसकी स्त्री ने पूछा—स्वामिन् ! क्या कारण है कि आज आपकी आँखो मे नींद का नामोनिशान भी नहीं है। ऐसी कौन-सी चिन्ता आपको घेरे हुए है ? बच्चे का विवाह तो आनन्द का प्रसग है इस प्रसंग पर इतनी चिन्ता क्यों हो रही है ? मुझसे तो छिपाइए नहो। जो हो, कहिए।'

सेठ ने कहा-कोई बात नहीं है। यो ही न जाने क्यों नींद नही आ रही है।

सेठानी बोली-हृदय की बात दूसरे पर प्रकट कर देने से शान्ति हो जाती है। हृदय हल्का हो जाता है। कभी कोई रास्ता भी मिल जाता है। न कहने से अनर्थ हो जाता है तो आप हृदय की बात अवश्य कहिए।

आखिर सेठ ने दिल खोल ही दिया। कहा-मै बीस लाख का कठा ले आया हूँ। इस समय वह तेरे अधिकार में है। न लिखा-पढ़ो है न गवाह-साक्षो है। कंठा स्वयं बोल नहीं सकता कि मै इसका हूँ या उसका हूँ ! ऐसी स्थिति मे अगर मैं उसे हजम कर जाऊँ तो मालामाल हो सकता हूं। बीस लाख ! किसे कहते हैं ! जिन्दगी भर माथापच्ची करके भी तो इतना नहीं कमा सकता। फिर यह महालक्ष्मी तो घर बैठे आई है उसे धक्का देकर बाहर निकालना बुद्धिमत्ता नहीं जान पड़ती।

इस प्रकार लखपति सेठ की नीयत बिगड़ गई। कहावत है-"एक कामिनी दूजा धन, इस पर बिगड़े सबका मन।' सेठ यही कहावत चरितार्थ करने लगा।

सेठ की पत्नी उज्ज्वल विचार की महिला थी। अपने पति का पापमय विचार सुन कर उसे दुःख हुआ। उसके मन में मार्मिक-पीडा हुई। अपने पति को पतित और पाप में पड़ा जान कर उसे खयाल आया-यही समय है जब पत्नी को अपने पवित्र कर्त्तव्य पालन करने में तत्पर होना चाहिए। सच्ची और आदर्श पत्नी का यही धर्म है कि जब उसका पति नीति का त्याग करके अनीति के मार्ग पर जाता हो, धर्म विमुख होकर अधर्म की ओर कदम बढ़ाने को तैयार हो और कर्त्तव्य से च्युत होकर अकर्त्तव्य की ओर झुक रहा हो तो वह निस्संकोच भाव से, दृढ़ता के साथ उसे सच्ची सलाह दे, अनीति, अधर्म और अकृत्य से पति की रक्षा करे और उसे नीति एवं धर्म के पथ पर आरूढ़ करे। ऐसा करने वाली पत्नी ही वास्तव में 'धर्मपत्नी' पद की अधिकारिणी होती है। इसके विपरीत जो पत्नी पाप कार्य में पति का साथ देती है, उसके अन्याय-अनाचार का विरोध नहीं करती अथवा उसे प्रोत्साहन देती है, वह धर्मपत्नी नहीं कही जा सकती; उसे अ-धर्मपत्नी कहना ही अधिक उचित होगा।

कहा जा सकता है कि समाज में पुरुष जाति की प्रधानता है और परिवार का सारा अर्थतंत्र पुरुष के हाथ में होता है। अतएव स्त्री की आवाज सुनी नहीं जाती। वह किस प्रकार पुरुष को पाप से रोक सकती है?

यह कहना सही है। फिर भी नारी शक्ति है, अबला नहीं है। कम से कम उसे अबला नहीं होना चाहिए। उसे अपने बल पर विश्वास करना चाहिए। अगर उसे अपने बल पर भरोसा हो जाय और वह ऐसे प्रसंग पर उसका उपयोग करे तो निस्सन्देह उसे बहुत अंशों में सफलता मिल सकती है। मगर सफलता हो कर्त्तव्य

पालन की कसौटी नहीं है। बहुत बार कर्त्तव्य का पालन करने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। अगर सफलता नहीं मिलती है तो न सही; उससे हमारा कर्त्तव्यपालन दूषित नहीं हो जाता। मनुष्य के वश में यही है कि वह कर्त्तव्य का पालन करता रहे। हो सकता है कि तत्काल उसका फल दिखाई न दे, फिर भी यह निश्चित है कि पालन किया हुआ कर्त्तव्य कभी निष्फल नहीं होता। यह सोच कर कर्त्तव्य तो पालना ही चाहिए!

लखपति सेठ की पत्नी आदर्श महिला थी। उसने सेठ की हाँ में हाँ मिला कर प्रणयपात्री बनने के बदले अपने कर्त्तव्य का ही पालन करना उचित समझा। उसने स्पष्ट शब्दों मे कहा—स्वामिन्! आपके मन में अपवित्र विचार उत्पन्न हुआ है। यह दुर्विचार जीवन को अधःपतन की ओर ले जाने वाला है। इसे मन से तत्काल निकाल दीजिए—भीतर मत बैठने दीजिए। इसका परिणाम अन्त में हानिकारक ही होगा।

आप जरा विचार तो कीजिए कि कौन छाती पर धन लेकर गया है? सब यहीं का यहीं रह जाने वाला है। यथा—

कौन धन ले गया बाँध गठरिया,
राजा रावण लंकापति था।
छोड़ गया वो सोने की नगरियाँ,
कौन धन ले गया बाँध गठरिया॥

प्राणनाथ! आखिर आप पाप से धन संचित कर लेंगे और मित्र के साथ द्रोह और विश्वासघात करके कदाचित् लाखों की

सम्पत्ति अपने अधीन कर लेंगे, तो भी वह क्या काम आएगी ? आखिर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए ही तो धन की आवश्यकता होती है। सो हम लोगों के पास पर्याप्त है। जो है, वह काफ़ी से भी ज्यादा है। उसका भी पूरा भोग नहीं कर सकते तो फिर अनावश्यक धन के लिए क्यो पापों का गठरी बाँधना चाहिए ? धन को साथ तो कोई ले नहीं जा सकता। सब छोड़-छाड़ कर अकेले जीव को ही जाना है। हाँ, पाप-पुण्य आवश्य साथ ल जाना पड़ेगा। ऐसी स्थिति मे आप अपना मलीन विचार त्याग दीजिए। यही कल्याण का मार्ग है।'

भाइयो ! दूर क्यो जाते हो, यहीं प्रत्यक्ष देख लो। हिन्दू पाकिस्तान से आते हैं क्या लेकर आते हैं ? जिनकी वहाँ बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थीं और लाखों की सम्पत्ति थी, वे प्रायः लोटा लेकर आ रहे हैं उंगलियो में से छल्ले भी निकाल लिये जाते हैं। ऐसा सुनते है। आप भी सुन रहे और देख रहे हैं। जब यहाँ यह हाल है तो परलोक जाते समय क्या लेजा सकोगे ?

तो सेठानी बोली-सेठ साहब ! अपनी नीयत मत बिगाड़ो और भला चाहो तो कल ही बालक के गले में कंठा पहना दो। मगर सेठ के मन में पाप समा गया था। अपनी धर्मपत्नी की हितभरी बात उसे पसद न आई। वह बोला-तुम इन बातों में समझती नहो हो। जानती नहीं हो कि ये जितने भी बड़े-बड़े लखपति-करोड़पति बने हैं, सब दूसरों का माल हड़पने से या धर्मादे की रकम डकारने से ही बने हैं। जिन्होने बेईमानी करके, अनीति करके या पाप करके पूंजी जमा कर ली है, वे अब धर्म-नीति की चिल्लाहट मचाते है, जिससे कोई उनका धन न छीन ले। कोई स्वयं मिहनत करके धनकुबेर नहीं बन सकता। सभी ने दूसरो के मुख का कौर छीना है ! धन ऐसा किये बिना नहीं आता।

सेठानी-ठीक है, पर मैं समझती हूं कि दूसरों को पापाचरण करते देख कर स्वयं पापाचरण करना योग्य नहीं है। अधर्म करके पैसा जमा करने से अन्त में हित नहीं, अहित ही होगा। किसी चोर को करोड़पति होते नहीं देखा। वे दिवालियों के दिवालिया ही रहते हैं। बहुत-से सांसी और कंजर चोरी करते हैं, फिर भी भूखे के भूखे ही रहते हैं।

सेठ-तू नहीं समझती। मुफ्त के धन से मौज करेंगे।

सेठानी ने पति को भरसक समझाने का प्रयत्न किया। अपने कर्त्तव्य का पालन करने में कुछ भी कमी नहीं की, लेकिन सेठ के मन में परिवर्त्तन नहीं हुआ। कहा है—

तादृशी जायते बुद्धिर्यादृशी भवितव्यता।

अर्थात् मनुष्य की बुद्धि वैसी ही हो जाती है, जैसी होनहार होती है।

मति भ्रष्ट होने पर मनुष्य को भला-बुरा नहीं सूझता। सेठ का भी यही हाल हुआ। लक्ष्मी ने उसे हिताहित के विवेक से शून्य बना दिया। वह मित्रद्रोह करने को कटिबद्ध हो गया। विश्वासघात करने को तैयार हो गया। कहा है—

अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे।
पितृपुत्रविरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी! तुम अविश्वास का निधान हो, महान् पातकों का कारण हो और पिता एवं पुत्र जैसे आत्मीय जनों के साथ भी वैर-विरोध उत्पन्न करने वाली हो। तुम्हें मेरा नमस्कार है।

वास्तव मे यह लक्ष्मी क्या-क्या नहीं कराती ! इसके लिए मनुष्य पशु से भी अधिक नीच, दानव से भी ज्यादा भयंकर बन जाता है।

आखिर लखपति सेठ पाप के वशीभूत हो गया। उसने बीस लाख का कंठा हजम करने का निश्चय कर लिया। विवाह का दिन आ गया। तब करोडपति सेठ ने विचार किया-अब तक लड़के को कंठा नहीं पहनाया, इसका कारण क्या है ? सभव है परायी चीज समझ कर डर गया हो। चंवरी के समय पहना देगा। मगर उसने तो विचार ही दूसरा कर लिया था। विवाह का कार्य समाप्त हो गया और कई दिन व्यतीत हो गये। अब करोड़पति ने सोचा-न कठा पहनाया गया न लौटाया ही गया। पोल हो पोल से कहीं चीज चली न जाय।

उधर उस लखपति ने अपने मित्र के घर जाना छोड़ दिया वह बातचीत करने से भी कतराने लगा।

एक दिन करोड़पति बग्घी में बैठकर हवाखोरी को निकला। दो तीन जन उसके साथ थे। वह अपने मित्र की दुकान के सामने से निकला तो उसका मित्र लखपति उसकी ओर देख भी नहीं सका। उसने आँखें नीची कर लीं। तब करोड़पति सेठ ने बग्घी रुकवाई और कहा—चलो मित्र, घूम आवे। बहुत दिनों से दिखाई नहीं दिये।

लखपति सेठ लज्जा और संकोच से दबा जा रहा था। मगर मित्र जब सामने आ गया तो करता क्या ? वह चुपचाप उठा और बग्घी में बैठ गया। बग्घी आगे चली। तब करोड़पति ने कहा—मित्र लड़के की शादी से बड़ी खुशी हुई। आपने दिल

खोल कर खर्च किया। लेकिन एक बात है। दुनिया को क्या मालूम पड़ा कि करोड़पति के मित्र के लड़के को विवाह हुआ। आपने बीस लाख वाला वह कंठा लड़के को पहनाया ही नहीं। मैंने यही सोच कर दिया था कि दुनिया देखे और आपकी तारीफ हो।

करोड़पति का यह कथन सुन कर वह बोला-वाह सेठजी वाह! यह खूब कही! आपने मुझे कंठा कब दिया था? आज कैसी बहकी बहकी बातें कर रहे हो? कहीं भंग--भवानी का ज्यादा सेवन तो नहीं कर लिया है? किस बेईमान ने आपका कंठा देखा है? प्रभो प्रभो! कैसा कलिकाल आ गया है! सेठ साहब, गरीब ने आपकी सोहबत की तो क्या इसलिए कि आप उसे डुबा दें?

बग्घी में जो दूसरे लोग बैठे थे, यह बातचीत सुनकर सोचने लगे-बड़ी विचित्र बात है! एक कहता है--मैंने कंठा दिया और दूसरा कहता है--मैंने नहीं लिया। न जाने इनमें कौन झूठ कह रहा है और कौन सच बोल रहा है?

उनमें से एक ने कहा-सेठ साहब! आप भूल तो नहीं गये?

सेठ ने कहा-भाई, बीस लाख की चीज क्या भूली जा सकती है? वह ऐसी तो नहीं कि चाहे जिसे दी जा सकती हो! इन्हें तो अपना अभिन्न हृदय मित्र समझ कर ही दी थी।

लखपति बोला-ठीक है, समझ गया कि आप करोड़ पति किस प्रकार बने हैं। इसी तरह गरीबों को चूसा होगा।

वाद विवाद बढ़ता गया पर परिणाम कुछ नहीं निकला। आखिर बग्घी लौटी और लखपति अपनी दूकान पर ही उतर गया उसने सेठ से कहा-अब कभी आपकी हवेली में पैर भी न रक्खूगाँ। आपने मुझे कलंक लगाया है।

सेठ अपने घर चला गया। वह अत्यन्त उदास था। प्रथम तो बीस लाख की चीज़ हाथ से निकल गई, दूसरे मित्र ने विश्वास घात किया और तीसरे स्वयं बदनाम होने की नौबत आ गई! यह सब सोचकर उसका हृदय अत्यन्त संतप्त हो गया। रात्रि में उसे नींद न आई। वह सोचने लगा-दूसरे लोगो के सामने मुझे नहीं पूछना चाहिए था। अगर मैं अपनी बात सही सिद्ध न कर सका तो बड़ी अप्रतिष्ठा होगी। अकेले में पूछा होता और वह इंकार भी कर जाता तो कोई बात नही थी। यह सोचकर सन्तोष कर लेता कि एक साल की कमाई न आई सही!

रात बीती मगर सेठ की चिन्ता न बीती। उसे खाना-पीना अच्छा न लगा। उसन अपने कई विश्वासपात्र लोगो से कहा-आप उससे मिलकर कंठा लेना स्वीकार करवा दो, कंठा भले उसी के पास रहे। मुझे कठे के लिए चिन्ता नहीं है चिन्ता अपनी बात के लिए है। अगर उसने स्वीकार न किया तो लोग मुझ पर सदेह करेंगे और मेरी इतने दिनों की प्रतिष्ठा धूल मे मिल जाएगी। परन्तु लखपति सेठ ने कठा लेना स्वीकार नहीं किया।

आखिर पंचायत में मामला पेश हुआ। वहाँ भी करोड़पति सेठ ने वही बात कही। मगर उसने स्वीकार न किया-वह बोला-आखिर मुझे भी मरना है। मै झूठ नहीं बोलूँगा। पंच परमेश्वर के सामने झूठ बोल कर क्या परलोक-इहलोक बिगाड़ूँगा? न मैंने कंठा लिया है, न सेठ ने दिया है। कहिए तो गंगाजली उठालूँ कहिए रामजी की सौगंध खालूँ, केशरियानाथजी की शपथ खालूँ। उसकी यह सफाई सुनकर कुछ लोग इधर और कुछ लोग उधर बोलने लगे। मामला टांय-टांय फिस हो गया।

अन्त मे विवश होकर करोडपति सेठ ने राजा के पास जा

कर फरियाद की—'अन्नदाता ! न्याय होना चाहिए। मैंने उस लखपति सेठ को; लड़के को कंठा पहनाने को दिया, परन्तु वह हज़म कर जाना चाहता है। मुझे कंठे की परवाह नहीं, परन्तु प्रथम तो बेईमानी को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए, दूसरे मेरी प्रतिष्ठा नहीं जानी चाहिए। कंठा चाहे राजकीय भंडार में रहे, चाहे किसी अनाथालय, पाठशाला अथवा अन्य किसी उपयोगी संस्था के काम आ जाय, परन्तु उस बेईमान के पास बेईमानी से नहीं रहना चाहिए।

राजा ने लखपति सेठ को बुलाया और पूछताछ की। उसने कहा—महाराज ! मैं ने तो स्वप्न में भी कंठा नहीं देखा। न जाने क्यों यह मेरे पीछे पड़ गये हैं ! अगर निष्कारण ही मेरी इज्जत बिगाड़ना चाहते है तो इनकी क्या इज्जत रहेगी ? अन्नदाता मैं तो उस कंठे के विषय मे कुछ भी नहीं जानता।

यह कह कर लखपति सेठ रोने लगा। जहाँ कपट होता है वहाँ धूर्त्तता आ ही जाती है।

राजा ने कहा—तुम इन्कार करते हो तो सुनो। बस्ती से बाहर माताजी का एक मन्दिर है। वहाँ न्याय होता है। पूजा पाठ के बाद रात्रि में आदमी को भीतर रख दिया जाता है। देवी झूठे को मार डालती है और सच्चा जिंदा बच जाता है ! बोलो, परीक्षा देने को तैयार हो ?

सेठ बोला—हुजूर, प्रसन्नता के साथ तैयार हूं। आप बंद कर दीजिये। जो झूठा होगा वह पछताएगा।

रात्रि में उसे माता के मन्दिर में ले जाया गया। पूजा होने के बाद वह बंद कर दिया गया। बाहर संतरी पहरा देने लगे।

राजा आदि अन्य सब लोग चले गये। उसके बाद सेठ को विचार आया—मैं वास्तव मे झूठा हूँ। माताजी आएंगी तो क्या होगा ? कहावत है—"चोर जाय चोरी करने और घर मे बोले सांच।"

और भी कहा है:—

मौत समय सब पोत खुलेगा,
नयनों से तब नीर झरेगा।
सुकृत करना हो तो कर,
तुझको जाना जूने घर ॥

देख प्राणी! मरने के बाद निकल जाएगी सारी अकड़ाई। धर्म की और पाप की पोट साथ मे जाएगी। जिसने धर्म किया होगा, उसे वैसा फल मिलेगा। और पाप करने वाले को वैसा फल मिलेगा। इस जीवन मे परभव के लिए सुकृत नही करेगा। तो जूने घर जाना पड़ेगा।

हाँ, तो सेठ विचार करने लगा कि मैंने अपने मित्र को धोखा दे दिया, पचो को भी चक्कर मे डाल दिया और राजा के सामने भी अपराध स्वीकार नही किया। मगर अपने अन्तःकरण को धोखा कैसे दे सकता हू ? माताजी के सामने मेरा झूठ कैसे काम आ सकता है ? वह तो सब कुछ जानती हैं। उनके सामने में क्या कर सकूँगा ?

सेठ इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि माताजी आ धमकी। हाथ में तलवार चम-चमा रही है और पैर मे घुंघरु बज रहे हैं। आते ही देवी ने कहा—'खाऊँ, खाऊँ; खाऊँ!'

सेठ को अचानक एक बात सूझ आई। उसने कहा—आप खाओ तो तैयार हूँ, एक बात मन में है।'

माता—क्या है ?

सेठ—माताजी ! किसी गाँव मे मेला भरा। गाँव-गाँव से देखने के लिए लोग आ रहे थे। एक माँ और बेटी भी आ रही थी। माँ का कद छोटा था और वह दुबली-पतली थी। बेटी लम्बी और मोटी थी। दोनो विधवाएँ थी। उनकी जाति में पुनर्विवाह का रिवाज था। उनका पुनर्विवाह कर लेने का विचार हुआ।

उनके पीछे काफी दूरी पर बाप बेटे का एक युगल आ रहा था। उनके मन में भी पुनर्विवाह का विचार था। वे धूर्त थे और उनके भीतर नाम मात्र को भी लज्जा नहीं थी। नीचे पैरों के निशान देख कर बेटे ने बाप से कहा—छोटे पैर वाली से मैं नाता कर लूँगा और बडे पैर वाली से तुम नाता कर लेना। आगे चल कर दोनो औरतें मिल गई और उनका नाता हो गया। छोटे पैर वाली चली गई बाप के घर में और बड़े पैर वाली चली गई बेटे के घर में। दोनो के एक--एक लड़का हुआ।'

माताजी ! आप बतलाइये कि वे बेटे उनके क्या लगे ? कृपा कर इसका फैसला कर दीजिए।

माता सोच विचार में पड़ गई विचार ही विचार मे माता के लौटने का समय आ गया। दानवों और देवों का अपना २ समय है। रात्रि में बारह बजे से पहले राक्षसों का समय होता है और उसके बाद देवों का समय आ जाता है। जब बारह बज गये तो देवी चली गई और सेठ बैठा रह गया।

सवेरा हुआ। उत्सुक दर्शनार्थियों की बेहद भीड़ जमा हो

गई। सेठ भी आया और राजा भी आया। मन्दिर के किवाड़ खोले गये तो लखपति सेठ बाहर आकर बोला—जय रामजी की!

राजा उसे जीवित देख कर चकित रह गया। उसने करोड़पति की तरफ रोष भरी आँखों से देखा और कहा-यह तो सच्चा है।

सेठ को अपने पैरों तले की जमीन खिसकती जान पड़ी। उनके लज्जा की सीमा न रही। बड़ी निराशा हुई। बीस लाख का माल गंवाया और बदले मे वेईमान कहलाया।

सेठ हताश होकर घर लौट आया, परन्तु उसके चित्त मे असह्य संतापानल धधकने लगा। वह वेचैन रहने लगा। परिणाम यह आया कि उसकी दुर्बलता बहुत अधिक बढ़ गई और उठना बैठना भी कठिन हो गया। तब सेठजी का लड़का राजा के पास गया और बोला—'पृथ्वीनाथ! चिन्ता और मानसिक व्यथा के कारण मेरे पिताजी सख्त बीमार हो गये हैं। पता नहीं कब क्या हो जाय?' राजा सेठजी से मिलने गया और कहा—'कहो सेठजी, क्या उपाय किया जाय? सेठ ने कहा—मुझे धन की चिन्ता नहीं, अपनी बात की चिन्ता है। मै सोलह आना सच्चा हूँ मगर दुनिया की निगाह मे झूठा बन रहा हूँ। यही मेरे दुःख का कारण है। आप से हो सके तो मेरे दुःख का निवारण कीजिए।

राजा बड़े असमंजस मे पड़ा था। उसका चित्त साक्षी देता था कि करोड़पति सेठ झूठ नहीं कह रहा है, मगर दिव्य परीक्षा में वह पराजित हो चुका था। फिर भी सोच समझ कर राजा ने कहा—'सोच मत करो। मै एक और उपाय करता हूँ।'

इस प्रकार आश्वासन देकर राजा अपने स्थान पर आया। उसने पुनः आरोपी लखपति सेठ को बुलाया और कहा—'कंठा

तुम्हारे पास ही है। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम झूठे हो। सच-सच कह दो, अन्यथा बुरी गति होगी।'

लखपति धूर्त्त ने कहा—'महाराज! जिस मामले मे देवी माता ने अपना निर्णय दे दिया है, उसमें संशय करने के लिए अब क्या अवकाश रह गया है? अब मुझे अपराधी समझना माताजी का अपमान है। फिर जैसी आपकी आज्ञा।

राजा—जब तुम अपने को सच्चा कहते हो तो दूसरी बार परीक्षा देने से क्यों डरते हो?

सेठ—हुजूर, डरता नहीं। साच को क्या आच? पर माता के अपमान से अनिष्ट होने का भय लगता है।

राजा—इसकी चिन्ता मै करूंगा।

सेठ—तो मैं तैयार हूँ। परीक्षा ले लीजिए।

राजा—कल परीक्षा होगी। इस बार तुम्हारे हाथो मे लोहे के गर्म गर्म गोले दिये जाएंगे। तुम सच्चे होओगे तो नही जलोगे, अन्यथा जल जाओगे। बोलो स्वीकार है?

सेठ—जी हाँ, स्वीकार है।

सेठ के मन में उथलपुथल मच गई, मगर सोच-विचार कर उसने एक तरकीब खोज निकाली। वह बाजार मे से एक कुब्जा लाया। उसमें वह कठा डाल दिया और पानी भर दिया। ऊपर ढक्कन लगा कर अच्छी तरह मुंह बंद कर दिया। फिर उसे साथ लेकर परीक्षास्थल पर पहुँचा।

राजा, करोड़पति सेठ और दूसरे बहुत लोग पहले से ही मौजूद थे। कुब्जा लेकर लखपति जब पहुंचा तो राजा ने पूछा—

यह क्या लाए हो ? उसने उत्तर दिया—हुजूर, लोहे के गर्म गोले हाथ मे रखने से कदाचित् प्यास लग आएगी, इसलिए पानी का कुञ्जा लेता आया हूँ।

तत्पश्चात् जब गोले हाथ मे लेने का समय आया तो उसने करोड़पति सेठ के पास जाकर कहा—थोडी देर के लिए इसे अपने हाथ मे थाम लीजिए।

सेठ ने कुँजा हाथों में ले लिया। तब उसने कहा—'हे ज्वालामुखी! तू सब जानती है कि सेठजी ने मुझे कंठा दिया था तो मैंने उन्हे हाथो हाथ दे दिया। न दिया हो तो मेरे हाथ जल जाएँ।

लोहे के गोले सेठ के हाथ मे रख दिये गये, परन्तु हाथों पर आग का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यह देखकर उसने राजा से कहा—'अन्नदाता, इन्हे कितनी देर तक हाथो मे रक्खूँ ?

राजा आदि सभी दर्शक दंग रह गए। सब लोग करोड़पति सेठ को झूठा बतलाने लगे। राजा ने कहा—सेठजी, हो गया न्याय। यह सच्चा है।

करोड़पति सेठ की लज्जा और चिन्ता का पार नहीं था। उसी समय वह सेठ उनके पास जाकर बोला—अब तो आपको संतोष हो गया ? लाइए मेरा कुंजा दे दीजिए।

सेठजी सोच रहे थे। क्या इस घोर कलिकाल मे देवता भी झूठे हो गये हैं ? वे भी घूंस खोर न्यायाधीश को तरह झूठे फैसले देने लगे हैं ? सच्चा होता हुआ भी मैं झूठा सिद्ध हो रहा हूँ। उन्हे देवताओं पर क्रोध हो आया था। क्रोध की हालत मे उन्होंने वह कुंजा जमीन पर दे मारा।

कुंजा टुकड़ा-टुकड़ा हो गया और कंठा बाहर निकल पड़ा।

चमचमाते हुए कंठे को देखकर सब लोग विस्मय के सागर में डूब गये। सेठ की चालाकी प्रकट हो गई। पाप फूट पड़ा—

छाने छाने पाप करे ज्यों रुई मे आग छिपावे रे।
फूटे पाप को घड़ो प्रकट आखिर पछतावे रे ॥
क्यों पाप कमावेरे, वरजे सतगुरु नहीं ध्यान में लावेरे।

अरे प्राणी! आखिर कहाँ तक तू छिप-छिप कर पाप करेगा? रुई में आग छिपाने का प्रयत्न जैसे व्यर्थ सिद्ध होता है, उसी प्रकार पाप छिपाने का प्रयत्न भी असफल होता है। पाप का घड़ा फूटे बिना रहता नहीं। कहा है—

पाप छिपाये ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दावे दूबे ना रहे, रुई-लपेटी आग ॥

लखपति सेठ का पाप कोई साधारण पाप नहीं था। वह अपने पाप रूपी आग को कपट की रुई में छिपाना चाहता था, पर कृतकार्य न हो सका। वहां उपस्थित जनसमूह उसके कपटाचार को देख कर आश्चर्य में डूब गया। सब उसकी निन्दा करने लगे। राजा ने कहा—तू सेठ और सम्पत्तिशाली कुलीन होकर भी इतनी नीचता कर सकता है? मगर यह तो बता कि यहाँ तो कुंजे में कंठा रख कर और सेठ को कुंजा पकड़ा कर तू बच गया, पर माताजी के मन्दिर में कैसे बच गया? क्योंकि—

झूठ पड्यो सब लोक के देखत,
पीछे कहा करिये जो अंदेसो।

ऊलर गाढो गयो जब ही भया,
काम विनायक को तब कैसो ?
पण्डित पण्डित वाद भयो,
छिपाय कहा हुवे ज्ञान को जैसो ।
ख्याल विनोद आये जब देखन,
नाचने बैठो तो घूंघट कैसो ? ॥

तुम्हारी बेईमानी जब सामने आ ही गई है, तो अब पूरी बात प्रकट कर देने मे क्यो संकोच है ? सेठ ने भी ऐसा ही सोचा। उसने माता के मन्दिर वाली सारी घटना ज्यो की त्यो कह सुनाई। तब राजा ने कहा—वाह रे बैरिस्टर के चचा ! तू ने माता को भी बहका लिया ।

आखिर राजा ने कंठे के असली स्वामी से पूछा—सेठजी ! आप सच्चे साबित हुए। अब कहो, इस कंठे का क्या करना चाहिए ?

सेठ ने कहा—अन्नदाता जो उचित समझे सो करें। चाहें तो इसी को दे दें, चाहें तो किसी अन्य कार्य मे लगा दें। मुझे तो अपनी प्रामाणिकता प्रमाणित हो जाने की ही प्रसन्नता है। मेरी प्रतिष्ठा रह गई, यही मेरे लिए पर्याप्त है ।

राजा ने सेठ की उदारता की सराहना करते हुए कहा—अच्छा, अपने मित्र के लिए क्या दड सुनाते हो ? इसने तुम्हें ही नहीं, मुझको भी ठगने मे कसर नहीं रक्खी है ।

सेठ ने अपनी उदारता पर कलश चढ़ाते हुए कहा—अन्न-

दाता ! इसे क्षमा कर दिया जाय। मै किसी को कष्ट देना नहीं चाहता। दुनिया में इसकी जो निन्दा होगी, वही दंड पर्याप्त है।

सेठ का यह क्षमाभाव देख कर लोग कहने लगे-सेठ हो तो ऐसा हो ! कितनी उदारता और कैसी उच्च कोटि की क्षमा ! और राजा हो तो हमारे अन्नदाता के समान हो, जिन्होंने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। किसी की ओर लेश मात्र भी पक्षपात का भाव नहीं प्रदर्शित किया।

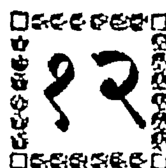
कहने का आशय यह है कि जिस आत्मा मे रागभाव का प्रादुर्भाव होता है, उसमें द्वेष की आग भी जले बिना नहीं रहती। राग-द्वेष के भयानक पिशाचों से ग्रस्त होकर मनुष्य अधम से अधम कृत्य करने में संकोच नहीं करता है। यही कारण कि वह किसी को किसी भी प्रकार की पीड़ा पहुंचाने लगता है। ठीक ही कहा है—

जो सताएगा किसी को वो सताया जायगा,
जो दबाएगा किसी को वो दबाया जायगा।
जो जलाएगा किसी को वो जलाया जायगा,
कर भला हो वे भला खोटे से खोटा पायगा॥

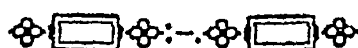
याद रक्खो ! बुरे का परिणाम बुरा ही होता है। पाप का फल सुख नहीं हो सकता और धर्म का आचरण करने से कदापि दुःख नहीं हो सकता। अतएव अगर दुख से बचना है तो पापों का परित्याग करो। कभी परधन या धर्मादे पर अपनी नीयत मत बिगाड़ो। हक़ का एक पैसा भी मोहर के समान है और वह सुखी बनाता है। इसके विपरीत बेईमान की मोहर भी धोखा देने वाली है, सुख देने वाली नहीं।

भाइयो ! राग और द्वेष संसार भ्रमण के मुख्य आधार हैं। इनका जितने-जितने अंश में त्याग करते चलोगे, उतने ही उतने अंश में आपके सुख की मात्रा बढ़ती जाएगी और आप अपूर्व शान्ति एवं स्वस्थता का अनुभव करते जाएँगे। अन्त में पूर्ण आत्मिक आनन्द की प्राप्ति कर सकोगे।

ब्यावर }
३-१०-४७ }



नरक से बचो



स्तुतिः—

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमास-
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥

भगवन् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवन् ! मुनिजन आपको सबसे उत्कृष्ट महापुरुष मानते हैं; क्यों कि आप सूर्य के समान वर्ण वाले, निर्मल और अन्धकार से परे हैं ! आपको प्राप्त करके या आपके वचनामृत का पान करके

और आप द्वारा अचीर्ण एवं प्रदर्शित पथ पर चलकर वे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त मोक्ष का दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है।

ऐसे श्री ऋषभदेव भगवान् हैं। उन्हें हमारा वार-वार नमस्कार है।

भाइयो ! जगत् विविधताओं का घर है। इसमें नाना प्रकार की विचित्रताएँ दृष्टि गोचर होती हैं। सबसे पहली विविधता, जिस पर हमारा ध्यान महज ही पहुंचता है, जड़ चेतन की है। फिर जड़ पदार्थों की ओर लक्ष्य दें तो इतनी विभिन्नताएँ नजर आएँगी कि उन.ी गणना करना असंभव है। जीव-जगत की ओर दृष्टि डालें तो भी यही बात है। मगर यह निसन्देह कहा जा सकता है कि जीव जगत में सबसे उत्कृष्ट यदि कोई प्राणी है तो वह मनुष्य ही है। मनुष्य सभी दृष्टियों से अन्य प्राणियों की अपेक्षा अत्यधिक विकासत है।

विकसित का ;अर्थ यह है कि जीव के जो असली गुण हैं, स्वभाव है, उमका मनुष्य मे अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक विकास है। जीव का असाधारण गुण उपयोग है जिसे चेतना भी कहते हैं। वह मनुष्य में जितनी मात्रा मे उपलब्ध होता है, किसी अन्य प्राणी में नही। मगर इसका अर्थ यह नही कि सभी मनुष्य एक ही कोटि के है। मनुष्य-मनुष्य मे भी महान् अन्तर देखा जाता है। कोई उच्च कोटि का ज्ञानवान् वुद्धिमान् और मेधावी है तो कोई जड़वुद्धि भी होता है। कोई अत्यन्त सहृदय, दयालु, चरित्रवान्, कषाय-मैल से रहित और निर्विकार है तो कोई वज्रहृदय, चरित्रहीन मलीनमन और विकारों का पुंज भी दिखाई देता है। संक्षेप में कहें तो यह कह सकते हैं कि जिस मनुष्य के ज्ञान और चारित्र

का जितना ही अधिक विकास हुआ है, वह उतना ही उत्कृष्ट मनुष्य है और जो ज्ञान-चरित्र की दृष्टि से जितना हीन है वह उतना ही निकृष्ट है।

मनुष्य की उत्कृष्टता को नापने का यही एक सही गज है। इस अर्थप्रधान युग में कोई लोग धन के पैमाने से मनुष्य की ऊँचाई को नापते है और बड़े से बड़े धनवान् को बड़े से बड़ा मनुष्य मानते हैं। प्रायः समाज में यही पैमाना चल रहा है और यही प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। किन्तु यह पैमाना समाज की जड़ता को सूचित करता है। धन सम्पत्ति आदि भौतिक साधनों से ही अगर मनुष्य की उत्कृष्टता नापी जाय तो संसार का सबसे बड़ा धनी सर्वोत्कृष्ट महापुरुष माना जायगा और उसी को परमात्मा के पद पर प्रतिष्ठित करना होगा। इसके विपरीत जो धन से सर्वथा रहित हैं, अकिंचन हैं, अपरिग्रह हैं, उनका दर्जा सब से नीचा हो जायगा। फिर तो हैदराबाद का नवाब और अमेरिका के अरबपति सिद्ध परमात्मा समझे जाने लगेंगे। मगर धर्म की दृष्टि यह नहीं है।

आचार्य श्री ने यहां भगवान् ऋषभदेव को सर्वोत्कृष्ट महापुरुष कहा है सो किसी बाह्य वस्तु के कारण नहीं, वरन् आत्मिक सम्पत्ति की वृद्धि के कारण ही कहा है। भगवान् की आत्मिक समृद्धि का अंतिम सीमा तक विकास हो गया था, अतएव वे सर्वोत्कृष्ट महापुरुष हैं। तीन विशेषणों द्वारा यह आशय यहाँ स्पष्ट कर दिया है। भगवान् आदित्यवर्ण हैं अर्थात् सूर्य के सदृश प्रकाश के पुञ्ज हैं। सूर्य में अंधकार के लिए अवकाश नहीं है, इसी प्रकार भगवान् में अज्ञान रूपी अंधकार नहीं, क्योंकि वे अनन्त अप्रतिहत केवलज्ञान से युक्त है। सूर्य जगत् में प्रकाश फैलाता है तो भगवान्

ने भी सर्वज्ञता प्राप्त करके संसार को अज्ञानान्धकार दूर करने के लिए अपनी दिव्यध्वनि द्वारा ज्ञान-आलोक प्रसारित किया है।

प्रश्न किया जा सकता है कि संसार में नाना प्रकार के देव माने जाते हैं। प्रत्येक पंथ या मत के देव प्रायः अलग-अलग हैं, तो भगवान् ऋषभदेव को ही सर्वोत्कृष्ट देव क्यों माना गया है? इसका उत्तर आचार्य महाराज ने आगे 'अमल' विशेषण लगा कर दे दिया है। भगवान् सर्वज्ञता प्राप्त करके सर्वोत्तम इस कारण बने कि उनकी आत्मा पूरी तरह निर्मल-निर्विकार-वीतराग हो गई थी। वीतरागता प्राप्त हुए बिना ज्ञान की पूर्णता नहीं हो सकती। जो क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष, मोह, काम, आदि मलों से अपनी आत्मा को मुक्त करके पूर्ण ज्ञानी बन जाता है, वह 'तमसः परस्तात् होता है, अर्थात् अंधकार से परे होकर अनन्त आलोक प्राप्त करता है।

संसार में जितने भी आस्तिक जन हैं, और जो साधनामय जीवन यापन कर रहे हैं, उनका एक मात्र यही ध्येय है कि वे किस प्रकार तम से दूर हट कर ज्योतिस्वरूप बनें। उनके हृदय से यही पुकार उठा करती है—

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

अर्थात् मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर लेजा।

मनुष्य जीवन का एक मात्र यही ध्येय है! साधना निरत योगी जनों का वही परम साध्य है। यही उनकी कामना है। इसी ध्येय को प्राप्त करने के लिए वे तपश्चरण का आश्रय लेते हैं। भगवान् वीतराग देव इस क्षेत्र में पराकाष्ठा पर पहुँच चुके हैं। अतएव मुनियों और योगियों के लिए वही उपास्य हैं और वही आराध्य हैं।

जो लोग बहिरात्मा है, अनात्मज्ञ है, जड़ के उपासक है, नास्तिक हैं, वे सांसारिक सफलता के आधार पर बड़प्पन की कल्पना करते है, धन--दौलत, राज्य, अधिकार आदि बाह्य वस्तुओं की अधिकता देख कर उत्कृष्टता मनते है, परन्तु मुनिजन, आस्तिक, ज्ञानी पुरुष और आत्मज्ञ लोग आत्मा के गुणों के विकास को ही उत्कृष्टता का आधार मानते है। इसी कारण यहाँ 'मुनयः' पद दे दिया गया है।

भाइयो ! जो वीतराग और सर्वज्ञ हो चुके है, उन्होने ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का मार्ग बतलाया है। बार-बार जन्म लेने और मरने का मार्ग तो दुनिया बता रही है कि खूब पाप करते जाओ, धन-दौलत इकट्ठा किये जाओ और जन्म मरण करते जाओ। जो छह काया का आरभ दुनिया कर रही है, यह जन्म-मरण बढ़ाने का ही रास्ता बना रही है। फलां चीज खाने से तंदुरुस्ती रहती है, यह कह कर अभक्ष्यभक्षण की सलाह दी जा रही है। कोई हिंसा बता रहे है, कोई जीवों के प्राण लूटते हैं। क्या-क्या पाप नहा हो रहे है ? कोई हरी हरी सब्जी काट रहे है तो कोई पानी ढोल रहे है। कोई ठगाई कर रहा है, चोरी कर रहा है, दूसरों को धोखा दे रहा है, लूट मचा रहा है और समझ रहा है कि इससे हमारा कल्याण होगा।

अनेको लोग जानवरो के प्राण ले रहे है। जानवरो के क्या मनुष्यों को ही मारने से नहीं डरते। ऐसे-ऐसे मजहब हैं जो कहते हैं कि दूसरों को मारने मे पाप ही नहीं है। मगर यह धर्म नहीं है। लोग स्वयं भ्रम में पड़े है और दूसरो को भ्रम मे डाल रहे हैं। वे 'स्वयं नष्टः परान्नाशयति' अर्थात् स्वय नष्ट हुआ दूसरो का नाश करता है, इस उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

सच्चा मजहब कौनसा है ? जो किसी को दुख देने की बात नहीं कहता। जो छह काया के प्राण लूटने की बात बतलाता है, वह मत झूठा है। ऐसे मतो के ग्रंथों मे थोड़ी-सी बाते अच्छी लिख दी जाती हैं, और फिर ऐसी-ऐसी अधर्म की बातें भर दी जाती हैं। लोग उन अच्छी बातों को देख कर समझने लगते है कि ये भी झूठ बोलने में पाप बतलाते है, चोरी करना अच्छा नहीं कहते, आदि आदि। नकली माल बेचने वाला दुकानदार असली की मिलावट करता है। कोरा नकली माल बिक नही सकता। ग्राहक मिलावट के कारण भ्रम में पड़ जाता है और नकली को असली समझ कर ले लेता है। धर्मों के विषय मे भी यही बात है। परन्तु याद रक्खो, पाप से पाप का नाश नहीं होता। रक्त से रंगा वस्त्र रक्त से साफ नहीं हो सकता। इसी प्रकार दुनिया हिंसा करके शुद्ध होना चाहती है, पर ऐसा कभी नहीं हो सकता। भगवान ने फर्माया है कि ऐसा करने वाले जीव उल्टे रास्ते पर जा रहे हैं।

भाइयो ! जो किसी से उधार ले आएगा, उससे लेने के लिए भी वह आएगा। इसी प्रकार तुम किसी के प्राण लोगे तो वह भी अवसर मिलने पर तुम्हारे प्राण लेगा। अगर तुम किसी के प्राण नहीं लोगे तो तुमसे कोई बदला लेने नहीं आएगा। किसी भी प्रकार का बदला न चुकाना पड़े, ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाना ही मोक्ष कहलाता है। बदला देने और लेने के लिए जन्म लेना पड़ता है। मोक्ष में ऐसा कोई झगड़ा नहीं रहता। मोक्ष रूपो निराकुलता है। अतएव जिसे पूर्ण शान्ति की आवश्यकता है और जो सब प्रकार की आकुलता से निवृत्ति चाहते हैं, उनके लिये यही सही राह है कि वे किसी के प्राण न लें।

भगवान् ने श्रीमद् आचारांगसूत्र में फर्माया है कि अज्ञानी जीव पुनः पुनः जन्म-मरण के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। अत--

एव कहा गया है कि जो जीव गर्भ में आएगा, उसे जन्म भी लेना पड़ेगा। पहले गर्भ का जिक्र किया जा चुका है! गर्भ में पहुँच कर जीव प्रथम रज और वीर्य का आहार करतो है। कई लोग कहते हैं कि पाँच महीने का गर्भ हो जाने पर जीव आता है, लेकिन यह बात मिथ्या है। सत्य यह है कि पहले जीव आता है, उसके बाद ही शरीर बनना आरंभ होता है। कहा है—

पहले कारीगर आता है और पीछे नींव लगाता है।
इसी तरह से गर्भाशय में तन का खेल रचाता है॥

सबसे पहले मकान बनाने के लिए कारीगर आता है। आकर वह नींव लगाता है। इसी प्रकार पहले जीव गर्भ में आता है और बाद में शरीर बनता है। फिर कोई लडके के रूप में, कोई लड़की के रूप में और कोई नपुंसक के रूप में जन्म लेता है। यह सब कैसे होता है? यह भेद कौन करता है? जब जीव गर्भ में आता है और आहार लेता है, तब यदि पिता की चीज (वीर्य) अधिक होती है और माता की चीज कम होती है, तो लड़का उत्पन्न होता है। माता की चीज ज्यादा और पिता की चीज कम होती है तो लड़की उत्पन्न होती है और दोनों की चीज समान रूप से ग्रहण करता है तो नपुंसक जन्म लेता है। मगर यह मात्र बहिरंग कारण है। अन्तरंग कारण इसका दूसरा है और वह है गर्भ में आने वाले जीव का उपार्जन किया हुआ अपना-अपना कर्म। इस प्रकार अपनी किसी भी स्थिति को बनाने वाला जीव ही है। तात्पर्य यह है कि पूर्व जन्म मे यदि पुरुष होने योग्य कर्म बाँधा हो तो पुरुष होता है स्त्री होने या नपुंसक होने योग्य कर्म का बन्ध किया हो तो स्त्री या नपुंसक होता है।

प्रश्न हो सकता है कि किन-किन कार्यों से लड़का, लड़की अथवा नपुंसक पर्याय को धारण करना पड़ता है ? इसका संक्षेप मे उत्तर है कि जिसने पूर्व जन्म मे सरल भाव रक्खा हो वह पुरुष होता है, जिसने कपट किया हो वह स्त्री होता है और जिसने कपट से भी ज्यादा कपट किया वह नपुंसक होता है।

इस प्रकार पहले कर्मप्रेरित जीव आता है, फिर गर्भ रहता है। गर्भस्थिति होने के पश्चात् शरीर का निर्माण आरंभ होता है और पाँचवें महीने में लगभग पूरा हो जाता है। उस समय गर्भस्थ शिशु हलन- चलन क्रिया के कारण अनजान लोग समझते हैं कि जीव अब आया है। कोई-कोई जीव सातवें महीने में ही जन्म ले लेते हे और जीवित भी रहते हैं। आठवे महीने मे जन्म लेने वाले कम बचते हैं। नौ महीने में तो आम तौर पर होते हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कर्मों के कारण जीव को अत्यन्त अशुचि समझे जाने वाले पदार्थों का आहार करना पड़ता है और नौ महीनों तक गर्भ रूपी अंधकारमयी गुफा में उलटा लटकना पड़ता है। इन कष्टों का विचार करो तो शरीर में एक बार कँपकँपी छूट जाएगी।

मगर प्रश्न तो यह है कि जीव गर्भ में आता ही क्यों है ? इसका उत्तर यही है कि राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के कारण जीव को गर्भ में आना पड़ता है और गर्भ में चमगीदड़ की तरह लटके लटके अकथनीय दुःख उठाने पड़ते हैं। किन्तु गर्भ की अपेक्षा भी अधिक दुःख जन्म के समय होते हैं। उस समय इतनी घोर व्यथा होती है कि कहा नहीं जा सकता।

गर्भ और जन्म के दुःख यों तो कहे नहीं जा सकते, किन्तु आचार्यों ने उपमा के द्वारा उन दुःखों का संकेत दिया है। जन्मते

समय के बच्चे के शरीर के साढ़े तीन करोड़ रोमछिद्रों मे से प्रत्येक मे यदि गर्म-गर्म सुईयाँ चुभा दी जाएँ और वैसाख जेठ मास की दुपहरी की धूप में उसे रख दिया जाय, तो उस बालक को जितना कष्ट होगा, उससे आठ गुना कष्ट जीव को गर्भ में होता है। इससे करोड़ गुणा दुःख जन्म लेते समय होता हैं और कोटा कोटी गुणा कष्ट मरते समय होता है। इस प्रकार क्या गर्भ में आना, क्या जन्म लेना और क्या मरना, सब कष्ट ही कष्ट है! शास्त्रकार इसी लिए चेतावनी देते है कि—

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ किस्संति जंतुणो ॥

अर्थात् मृगापुत्र राजकुमार ने अपनी माता को बतलाया कि-हे माता! जन्म का दुःख अतीव भयानक है, बुढ़ापा भी दुख-दायी है रोग भी पीड़ाजनक हैं और अन्त मे मरना भी बड़ा जबर्दस्त दु.ख है। एक सेठ को मरते समय कुछ होश था। उसने अपने कुटुम्बीजनों से कहा—महाराज कहते थे कि मरते समय कोटि-कोटि गुणित वेदना होती है, सो सत्य है। उस समय तो उनका कथन समझ में नहीं आ रहा था, परन्तु अब अनुभव में आ रहा है। इस समय वैसी ही वेदना मुझे हो रही है।

भाइयो! जिस समय जीव को उत्कृष्ट वेदना होती है, उस समय णमोकार मत्र सुनाओ तो भी वह नही सुनता और ढोल बजाओ तो भी वह नहो सुनता। वास्तव मे मरते समय अनन्त वेदना होती है शास्त्रकार कहते हैं कि ससार के प्राणी मात्र को मरण दुःख अनिवार्य है। कदाचित् कोई शारीरिक व्याधि से बच भी जाय मगर जिसने जन्म लिया है, वह मरण से नहो बच

सकता। इस प्रकार यह सारा संसार दुःखमय है और कर्म के वशीभूत हुए प्राणी संसार में क्लेश पा रहे हैं।

जब मनुष्य के प्राणों पर संकट आ पड़ता है तो हवेली, रुपया-पैसा, सोना-चांदी, बेटा-बेटी, पत्नी आदि कोई भी चीज बड़ी नहीं मालूम होती। उस समय तो जीवन ही सबसे अधिक मूल्यवान् प्रतीत होता है। अवसर पड़ने पर जीवन के लोभ से मनुष्य अपने बेटे-बेटी को भी काट कर खा जाते हैं। सब के लिए अपना जीवन बड़ा है।

एक नदी मे एक बंदरी अपने बच्चे को लेकर जा रही थी। पानी ऊँचा होने लगा तो वह अपने बच्चे को लेकर एक खजूर के पेड़ पर चढ़ गई। जब पानी और ऊँचा चढ़ा तो वह सबसे ऊची शाखा पर चढ़ गई। पानी फिर भी ऊँचा चढ़ा तो उसने बच्चे को सिर पर बिठा लिया। मगर पानी ऊपर ही ऊपर चढ़ता जा रहा था। जब कुछ और ऊपर चढ़ा तो बंदरी बच्चे को नीचे दबा कर और उस पर पैर रख कर खड़ी हो गई!

कहिए, अपना जीवन बचाने के लिए उसने अपने बच्चे की भी परवाह नहीं की। प्रत्यक्ष ही देखा जा सकता है कि प्राणों को रक्षा करने के लिए आजकल लाखा आदमी अपनी-अपनी हवेलियाँ और दौलत छोड़-छोड़ कर पाकिस्तान से भागे चले आ रहे हैं। इसी से जाना जा सकता है कि मरने के दुःख के बराबर दूसरा कोई दुःख नहीं है। मगर मरना क्यों पड़ता है?

वृक्ष जो फलते नहीं तो फल कभी गिरते नहीं।
जन्म जो लेते नहीं तो हम कभी मरते नहीं॥

वृक्ष में फल ही न लगे होते तो उनके गिरने का अवसर ही न आता। फल उत्पन्न हुए हैं तो निश्चय है कि वे सदा नहीं लगे रहेंगे। एक न एक दिन अपनी स्थिति पूर्ण होने पर वे पक कर नीचे गिर जाएँगे। इसी प्रकार जीव ने अगर जन्म न लिया तो मरने का भी प्रसंग न आता। जन्म लिया है तो मरना अनिवार्य है। कोई अनन्त काल तक जीवित नहीं रह सकता।

पुरन्दरसहस्राणि, चक्रवर्त्तिशतानि च।
निर्वापितानि कालेन, प्रदीपा इव वायुना॥

दीपक देदीप्यमान हो रहा है। अपने प्रकाश की सुनहरी रश्मियों से दसो दिशाओं को उद्भासित कर रहा है। सघन अंधकार के समूह को नष्ट करके मानों अपने पौरुष पर हँस रहा है। इतने ही मे हवा का एक हल्का सा झौंका आता है और उसे अंधकार में विलीन कर देता है, जिसका वह उपहास कर रहा था। यही हाल संसारी जीवो का है। सहस्रों इन्द्रों को और सैकड़ों चक्रवर्त्तियो को कालरूपी प्रबल वायु ने एक ही झौंके मे मिटा दिया है!

सन्त कहते हैं:—

तुल्यजातिवयोरूपान्, हतान् पश्यसि मृत्युना।
कथं ते नास्ति निर्वेदो, लोहं हि हृदयं तव॥

अरे प्राणी! तू प्रतिदिन देख रहा है कि जितनी जाति, उम्र और रूप तेरे समान था उन्हें मौत ने अपने पजे मे ले लिया। फिर भी तुझे इस संसार से विरक्ति और अरुचि नहीं होती! निश्चय ही तेरा हृदय फौलाद का बना है! ऐसा न होता तो अपने

सरीखे मनुष्यो का मरण देखकर तुझे अवश्य थोड़ा-बहुत विचार आता और तू मौत को जीतने का तथा परलोक को सुधारने का यत्न करता। मगर तू निश्चिन्त है! अपने मरे हुए सगे संबंधियो के लिए चिन्ता करता है, मगर अपने लिए तनिक भी चिन्ता नही करता।

हे भाई! हो सकता है कि कोई पूरा बचपन देखे अथवा न देखे, कोई यौवन भोगे या न भोगे और कोई बुढ़ापा देखे अथवा न देखे, मगर मृत्यु तो देखनी ही पड़ेगी। कोई किसी भी दशा मे जाय, मगर मौत की घाटी पार किये विना काम नही चल सकेगा। आखिरी स्टेशन का टिकिट तो कटवाना ही पड़ता है।

माना कि जीवन सब को प्रिय है और यह भी माना कि जीवन सब से ज्यादा प्रिय है, मगर उसका अन्त अवश्यंभावी है। संसार की कोई भी शक्ति उसे स्थिर नहीं रख सकती।

एक बुढ़िया थी। वह अपने दौहित्र से कहने लगी–'अब तो रामजी सँभाल ले तो अच्छा हो।'

दौहित्र विनोदप्रिय था। उसने कहा–रामजी सँभालने को तैयार बैठे हैं। मकान के चौथे मंजिल पर चढ़ कर सड़क पर कूद पड़ो। रामजी फौरन सँभाल लेंगे।

बुढ़िया बोली बेटा, यों तो कैसे मरा जाए!

लड़के ने कहा–तो फिर यही कहो न कि तुम मरना नहीं चाहती। वास्तव में जिंदा रहना चाहती हो।

जो जीवन इतना प्रिय है और मृत्यु अप्रिय है, फिर भी वह जीवन का अनिवार्य विधान है, अटल सत्य है। जीवन का अंतिम फल मौत ही है।

मृत्यु दो प्रकार की है-पण्डितमृत्यु अर्थात् ज्ञानियो का मरण और बालमृत्यु अर्थात् अज्ञानी जीवों का मरण। यद्यपि ज्ञानी भी मरते है और अज्ञानी भी मरते हैं, परन्तु दोनो के मरण में अंधकार प्रकाश जैसा अन्तर है। ज्ञानी पुरुष समभाव से, जीवन और मरण दोनो की कामना से ऊपर उठ कर निस्पृह भाव से शरीर का त्याग करते है। वे शरीर को ममता का परित्याग कर देते है। शरीर में रहते हुए भी शरीर को अपना नही समझते, परपदार्थ मानते है और परमात्मभावना में तन्मय हो जाते है। उनके अन्तःकरण मे लेश मात्र भी किसी परपदार्थ की कामना नही रह जाती। ऐसे धर्मध्याननिरत और समाधि में स्थित ज्ञानी जनों की मृत्यु को पण्डितमरण कहा है।

बालमृत्यु इससे विपरीत होती है। अज्ञानी जीव मृत्यु के समय आकुल-व्याकुल हो जाता है। हाय-हाय करता है। अपने आत्मीय जनो के और धन आदि पदार्थों के वियोग की तीव्र ज्वालाओं में जलता है। वह अत्यन्त मोहग्रसित अवस्था मे शरीर का त्याग करता है। ऐसे मोही जीव की मृत्यु बालमृत्यु कहलाती है।

पण्डितमरण अनन्त मरणो पर विजय प्राप्त कराने का साधन है और बालमरण से अनन्त जन्म-मरण की वृद्धि होती है। विवेकवान् पुरुष अपने जीवन में प्रतिदिन यह कामना करता है कि—प्रभो ! अन्त मे मुझे समाधिमरण (पण्डितमरण) की प्राप्ति हो, जिससे मैं शान्तिपूर्वक यहाँ से प्रयाण कर सकूं और अपना आगामी भव सुधार सकूँ।

शास्त्रकार ने आगे कहा है—'जे मारदंसी से निरयदंसी।' अर्थात् जो पाप करके मरेगा वह नरक में जाएगा।

धर्म करने वाले विरले है और पाप करने वाले बहुत है। पापी जीव धर्म से घृणा करते हैं अथवा धर्म करने से डरते है। आज प्रातःकाल हम जंगल जा रहे थे। दो भाई साइकिल पर बैठे जा रहे थे और कह रहे थे—सभी साधु हो जाएंगे तो दुनिया का काम कैसे चलेगा? उनकी बात हमने सुनी और विचार किया—ये बेचारे न जाने किस खयाली दुनिया मे चक्कर काट रहे हैं! सब साधु हो जाएंगे तो दुनिया का काम कैसे चलेगा, ऐसा विचार करते समय यह लोग क्यो नहीं सोचते कि सब करोड़पति हो जाएंगे तो मकान कौन बनाएगा? सभी राजा हो जाएंगे तो शासन किस पर किया जायगा? सभी तंदुरुस्त हो जाएंगे तो डाक्टर क्या ईंटे उठाएंगे? सब रईस हो जाएंगे तो कुली कहाँ से बुलाओगे? 'कुली, ओ कुली' चिल्ला-चिल्ला कर गला फाड़ते रहोगे तो भी क्या कुली कहीं मिलेगा? तथ्य यह है कि न सब राजा बनते हैं, न सब करोड़पति बनते हैं, न सब रईस ही हो सकते हैं। संसार में सदैव विविधता रही है और रहेगी भी। जो देश साम्यवाद की हिमायत करते हैं, उनके यहाँ भी समानता स्थापित नहीं हो सकी है और न जीवन के सब क्षेत्रों मे ऐसा होना सभव ही है। विविधता के बिना दुनिया जीवित रह नहीं सकती। इसी प्रकार सभी लोग साधु भी नहीं बन सकते। जब सब साधु नहीं बन सकते तो दुनिया का काम चलने की काल्पनिक समस्या का समाधान खोजने के लिए माथापच्ची करने की आवश्यकता ही नहीं है।

भाइयो! एक ही माता-पिता के चार भाइयों का भाग्य एक-सा नहीं होता। एक लखपती होता है तो दूसरा पेट भर भोजन भी नहीं पाता। सब की तकदीर न्यारी-न्यारी है, क्योंकि आत्माएँ न्यारी-न्यारी हैं। यदि आत्मा एक होती तो समानता होना संभव था। कमरा छोटा हो चाहे बड़ा, बिजली का प्रकाश समान रूप

से होता है, कम-ज्यादा नहीं होता, इसी प्रकार आत्मा भी एक हो जाय तो सब समान हो जाएँ।

सब जीवों के कर्म एक-से नहीं होते, इस कारण सब की दशा भी एक-सी नहीं होती। एक बीमार है तो दूसरा तन्दुरुस्त है। एक फटे चीथड़े पहनता है, दूसरा सुन्दर दुशाला ओढ़ता है। सबकी स्थिति समान क्यों नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न हो सकता है। कहा जा सकता है कि यह समाज-व्यवस्था का दोष है। समाज मे एक वर्ग ऐसा है जिसने लम्बी-चौड़ी जमीन अपने कब्जे में कर रक्खी या बड़े-बड़े कारखानों पर अपना स्वामित्व स्थापित कर रक्खा है। वे अपनी पूंजी के बल पर निर्धनों का शोषण करते है। खेती एवं कारखानों की अधिकांश उपज वे स्वयं हड़प जाते हैं और परिश्रम करने वाले कृषक एवं मजदूर चोटी से ऐड़ी तक पसीना बहाकर भी भरपेट नही खा पाते।

आज साधारणतया यही विचारधारा फैल रही है। मुझे पूंजीवाद या साम्यवाद के पक्ष-विपक्ष में कुछ नहीं कहना है। परन्तु मानव समाज की व्यापक विषमता के लिए यह उत्तर पर्याप्त नहीं है। जहाँ तक आर्थिक वैषम्य की बात है, थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि उसका कारण दूषित समाज व्यवस्था है, मगर विषमता सिर्फ आर्थिक ही तो नही है। वह तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे दिखाई देती है। बौद्धिक क्षेत्र मे क्या वैपम्य नही है? कोई मन्दबुद्धि है तो कोई तीव्रबुद्धि है। यह भी क्या समाज की दूषित अर्थप्रणाली के कारण ही है? किसी का रूप सुन्दर होता है, कोई कुरूप होता है। कोई जन्मान्ध होता है, किसी की आँखों की रोशनी तेज होती है। कोई मधुरभाषी होता है तो किसी के गले में फटे बास की सी आवाज निकलती है। दो आदमी विवाह करते हैं और

एक ही दिन उनका विवाह होता है, फिर भी एक निस्संतान रह जाता है और दूसरे के यहाँ सन्तानों की फौज सी खड़ी हो जाती है। किसी के माता पिता उसके बचपन में ही मर जाते हैं और दूसरे के काफी समय तक बने रहते हैं। यह सब विषमता भी क्या समाजव्यवस्था के दोष से होती है ? जहाँ की व्यवस्था आदर्श एवं प्रगतिशील समझी जाती है, वहाँ क्या यह सब विषमताएँ नहीं हैं ? वहाँ क्या सभी को समान प्रतिष्ठा प्राप्त है ? सब को समान सुखसाधन उपलब्ध हैं ? वहाँ कोई बाल्यावस्था में, कोई युवावस्था और कोई वृद्धावस्था मे नहीं मरता ? कोई बुद्धिमान् और कोई हीन बुद्धि नहीं होतो ? वहाँ मनुष्य मात्र का जीवन क्या एक ही साचे में ढला है ? नहीं।

तो फिर मानना पड़ेगा कि मनुष्य समाज की विविधता का एक मात्र जो कारण बतलाता जाता है, वह परिपूर्ण कारण नहीं है। उसके सिवाय और भी कोई कारण है, जिसे व्यक्तिगत मानना होगा। बस, वही कारण कर्म है, जिसे भाग्य तकदीर या अदृष्ट या अन्य कुछ भी कह सकते हैं। कहा है—

अजब तमाशा जगत का, देखो नजर यह आ रहा।
कोई दुशाला कोई गुदड़ी, ओढ़ कर यह जा रहा॥

देखो, कोई हस रहा है, कोई रो रहा है। सारी दुनिया एक सी क्यों नहीं दिखाई देती ? यह भेद किसने किया ? इसका अंतरग कारण अपना-अपना कर्म है।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा,
जो जस करही तस फल चाखा॥

इस संसार मे कर्म की प्रधानता है। कोई अच्छे कर्म करके आया है और कोई पाप कर्म करके आया है। जरा विचार करो, आज जो हजारों लाखों का खून कर रहे हैं, वे क्या आगे सुखी और समृद्धिशाली बनेंगे ? क्या राजा-महाराजा बनेंगे ? नहीं, उन्हे नरक का अतिथि बनना पड़ेगा। ऊँट की लीडियाँ क्या कभी गुलाबजामुन बनेगी ? कोई मन से ऐसा समझ भी ले तो क्या उसमें वैसा स्वाद आ जाएगा। चौमासे में गाय हरा-हरा गोबर करती है। कोई उसे बादाम का सीरा समझ ले तो क्या वह वास्तव में हो जायगा ? भाइयो ! तुम्हारे मानने से वस्तु का स्वरूप नहीं बदल सकता।

तो रक्त की नदियां बहाने वाले वे प्राणी क्या करोड़पति बनेंगे ? यहां देख लो, बुरे कर्म करने वाले को राजा सोना नहीं देता। तब हत्या करने वाले करोड़पति कैसे बन सकते हैं ? न उन्हें राजपाट मिल सकता है और न वे सुखी ही रह सकते हैं और न स्वर्ग मे जा सकते हैं। उनके लिए तो नरक का दरवाजा खुला हुआ है। उनकी गति कैसी बिगड़ती है—

नहीं धर्म किया जांकी कैसी बिगरी।
कैसी बिगरी रे भैया कैसी बिगरी ॥ टेर ॥

जिन्होंने धर्म नहीं किया, दान नहीं दिया, शील नहीं पाला और तपस्या नहीं की, बल्कि साधु-संत की निन्दा की, हिंसा की, भगवान् की बुराई की, उपासना करने वालों की भी निन्दा की, उनकी दशा कैसी बिगडी ? कहा है—

लाखों की ऋद्धि गये है छोरी।
ले गये संग में नहीं कोरी ॥

यहाँ पर करोड़पति थे, अरबपति थे, राजा थे, महाराजा थे, कितने ही बंगले थे, कोठियां थीं, घोड़े थे, मोटरे थीं याने किसी भी चीज की कमी नहीं थी, मगर मरे बाद उनकी दशा बिगड़ गई। क्यों बिगड़ गई? क्योंकि धर्म की परवाह नहीं की। मरते समय एक कौड़ी भी साथ नही ले गया। अरे जीव! आगे तू क्या खाएगा? एक गाँव से दूसरे गाँव जाता है, तो भी पन्द्रह बीस रुपए खर्च के लिए ले जाता है। खाली हाथ नही जाता। फिर इस लम्बे सफर मे कुछ भी साथ नहीं ले जाता। तू कितना विचारहीन है? बड़ी लज्जा की बात है—

पांच कोस के आंतरे, खरची लेवे लार।
परभव जाणो जीव ने, जिसकी बूम न वार॥

पहले कुछ लेकर आये थे तो यहाँ बेटा-बेटी, पोता-पोती, कोठी, हवेली. लाखों की सम्पत्ति मिल गई। लेकिन यहाँ से पधारोगे और साथ कुछ न ले जाओगे तो रोओगे। पहले कहते थे—हम तो यहीं रहेंगे। मगर यह स्वप्न भंग होने को ही था। इसी प्रकार आपको जाना होगा। भाईजी क्या साथ ले गए? जैसे वे सब छोड़ गये, उसी प्रकार आपको भी सब छोड़ कर जाना पड़ेगा। उस समय कुछ जोर नहीं चलेगा। मशीनगन, राइफल और पिस्तौल काम दे सकेगी? नहीं। मगर तुम्हे तो ले ही जाएंगे और ले जाने वाले कहेंगे—'राम नाम सत्य है।' दूसरे बोलेंगे—'माल-पुआ लाडू नित्य है।' उस समय किसी का जोर नहीं चलता। किसी की अकड़ाई काम नहीं आती।

डेली तक पत्नी का नाता, पोली तक माँ का नाता है।
मरघट तक सब घर के जाते, हंस अकेला जाता है॥

इस प्रकार कोई भी कुटुम्बी अन्त तक साथ नही जाता। सब यहीं रह जाते है। यह हंस अकेला परलोक की महायात्रा करता है।

भाइयो ! यह संसार की सम्पदा संसार मे ही रह जाएगी। जैसे कहीं से आते समय यहाँ कुछ भी नहीं लाए थे, उसी प्रकार यहाँ से जाते समय कुछ भी नहीं ले जा सकोगे। जो धन का जमीन मे गाड़ कर मरेगा वह साँप बनेगा। जो मकान ज्यादा खड़े करके जायगा वह जानवर होगा, किन्तु जो धर्म करेगा वह स्वर्ग मे जायगा। मोक्ष पायगा। भाई समझ ले। तेरे पास धन है और तू चाहे तो उसके द्वारा स्वर्ग भी खरीद सकता है और नरक भी खरीद सकता है। दोनों मे से क्या चाहता है ? स्वर्ग चाहता है तो धन को छाती से चिपटाये काम नहीं चलेगा। उसे दोनों हाथों से खर्च करना होगा। स्वर्ग का मोल चुकाना होगा। गरीबो को दान देना पड़ेगा, धर्म के कामो मे व्यय करना होगा। यदि नरक खरीदना है तो तिजोरियों में भर रख, जमीन मे गाड़ दे। धन जमीन में गाड़ने के लिए जो गड़हा बनता है, समझ ले कि नरक में जाने का रास्ता बना रहा है।

समझ में आता है ? न समझो तो तुम्हारी मर्जी ! हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, कुटुंब, परिवार आदि सब मरने तक के है। बाद में तो तेरा शरीर भी तेरा नहीं है। तेरा शरीर चिता पर रख दिया जायगा और भस्म कर दिया जायगा ! तेरे साथ जाएगा तेरे द्वारा किया हुआ धर्म अथवा अधर्म। अधर्म करेगा तो क्या होगा ?

जन्मा जाकर नरक कुंड में,
निकल गई सारी अकरी।

भाइयो ! पापी जीवों को नरक कुंड में जाकर जन्म लेना पड़ता हैं। ओह ! नरक की वेदना का क्या वर्णन किया जाय ? वहाँ की भूमि का स्पर्श भी इतना दुखः प्रद है कि जैसे हजार बिच्छुओ ने एक साथ डंक मारा हो। वहाँ जमदूत नारको के शरीर को काट-काट कर तिल के बराबर टुकड़े करते हैं। आग मे पकाते है, कड़ाही मे उबालते है। प्यास से तड़फाने पर उकला हुआ शीशा पिला देते है। ऐसी-ऐसी यातनाएँ देते है कि कुछ कहते नही बनता। ऐसे यातनामय नरक से अगर बचना चाहते तो पहले ही सावधान हो जाओ। पाप कर्मो से बचो और धर्म के मार्ग पर आओ। पीछे पछताने से कुछ भी बचाव नही होगा। कोई लाभ न होगा।

भूख प्यास शीत उष्ण अनन्त है, महा दुख भारी भय।
मारे कूटे जम राजा मिल डाले वैतरणी में पकर ॥

नरक मे पापी जीव को बहुत भूख लगती है, लेकिन खाने को एक दाना भी नहीं मिलता। कहा है—

तीन लोक को नाज जु खाय।
तो पण एक कण न लहाय ॥

ग्रथकार कहते है—सारी दुनिया का अनाज इकट्ठा करके नरक के जीव को खिलाया जाय और फिर पूछा जाय की तेरी भूख मिटी ? तो वह 'नहीं' मे उत्तर देगा। इसी प्रकार समस्त जलाशयो के जल से भी शान्त न होने वाली प्यास से वह पीड़ित होता है। फिर भी न दाना मिलता है, न पानी मिलता है। वहाँ की ठंड के सामने आपके शिमला की ठंड हजार-लाखवां अंश भी नहीं है। वहां की गर्मी इस दुनिया की गर्मी से सैकड़ों-हजारों गुणा अधिक है। जलती हुई हलवाई की भट्टी की गर्मी नरक के जीव को ऐसी

मालूम होती है, मानों फूलों की सेज बिछी हो। इतने-इतने दुःख भोगता हुआ भी नरक का जीव मरता नहा है।

तिस पर अपने मनोरंजन के लिए जम के दूत (परमाधार्मिक देव) उन्हे नाना प्रकार से सताते हैं। वे वैतरणी नदी में उन्हें स्नान कराते हैं, जिसके पानी में उनका शरीर गल जाता है। अर्थात् वह पानी तेजाब से भी ज्यादा तेज है। ऐसे-ऐसे कष्ट सहन करता हुआ नारक जीव क्या करता है:—

रोवे झूरे कुडुम्ब चितारे, काम न आवे डिकरा डिकरी।
सामली वृक्ष के तले बिठाना, पत्ते खिरे जब होवे ढकरी॥

नारक जीव उस समय बहुत रोता है, झूरता है और अपने परिवार का स्मरण करता है—'ऐ माँ बचाओ नी! ऐ फूल्यां की धाय! आओ नी' परन्तु वहाँ कोई काम नहीं आता। वहाँ किसी को कोई बचा नही सकता।

नरक मे साल्मलि नामक वृक्ष होते हैं। उनके पत्ते ऐसे तीखे होते है जैसे तलवार की धार! नरकपाल नारक जीवों को उन शाल्मलि वृक्षों के वन मे ले जाते है। और वृक्ष के नीचे बिठलाते है। फिर वृक्ष को हिलाते हैं। वृक्ष को हिलाने से वे पत्ते नारक जीव पर गिर कर उसके शरीर को ऐसा काट देते हैं, जैसे तलवार के प्रहार से काट दिया हो। उनके हाथ पैर और सारा शरीर कट जाता है।

और फिर क्या है?

बुरे बदले पाप भोगे, पल, सागर की है स्थितरी।
चौथमल उपदेश सुनावे, माने नहीं नुगरा नुगरी॥

इस प्रकार पापी जीव अपने पाप कर्मों का अनिष्ट फल भोगता है। यह दुःख कुछ वर्षों तक होता तो भी गनीमत थी,

मगर वहाँ तो दस हजार वर्ष से कम की किसी नारक की आयु ही नहीं होती। नरक की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। इतने लम्बे समय तक जीव वहाँ उक्त भयानक यातनाएँ भुगतता है।

यह वर्णन सुनकर अगर आपके मन में नरक से बचने की अभिलाषा होती है, तो अच्छी बात है। मगर बचने की अभिलाषा करने मात्र से बचाव नहीं होगा। आपको उन दुष्कर्मों का त्याग करना होगा, जिनसे नरक गति मिलती है, आचार्य कहते हैं:—

कृतघ्नो निर्दयः पापी, परद्रोहविधायकः।
रौद्रध्यानपरः क्रूरः, नरो नरक मागमेत ॥

जो जीव कृतघ्न होता है, अर्थात् अपने प्रति दूसरों द्वारा किये हुए उपकारों को भूल जाता है और उपकार के बदले उपकारी का अपकार करता है, जिसके घट में दया नहीं होती, जो किसी भी पाप में प्रवृत्त हो जाता है, दूसरों के प्रति द्रोह करता है-विश्वास--घाती होती है, जो सदा रौद्र ध्यान में लीन रहता है अर्थात् हिंसा झूठ चोरी व्यभिचार आदि पापों का निरन्तर विचार किया करता है और जिसमें क्रूरता को वास होता है, ऐसा मनुष्य नरक में प्रवेश करता है।

नरक से बचना है तो इतने कार्यों का आज ही त्याग कर दीजिए। और यह भी याद रखिए—

अनाथं कृपणं दीनं, रोगार्त्तं वृद्धमेव च।
नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते वै निरयगामिनः ॥

अर्थात्-जो मूढजन अनाथ, कृपण (लाचार), दीन, रोग से पीड़ित और बूढ़े लोगों पर दया नहीं करते, वे नरक गामी होते हैं। अर्थात् नरक से बचना हो तो इन पर दया भाव रक्खो। इनके

दुःख को अपना दुःख समझो और उसके प्रतिकार के लिए आपके पास जो भी साधन हो, उसे काम में लाओ। और कुछ न बन पड़े तो कम से कम उन्हे मधुर वाणी से सान्त्वना ही दो। और थोड़ा सुन लीजिए —

मद्यमांसरताश्चैव, गीतवाद्यरताश्च ये।
द्यूत संगरताश्चैव, ते वै निरयगामिनः ॥

अर्थात्-जो मदिरा पान मे और मांसभक्षण मे आसक्त रहते हैं, नाचने-गाने-बजाने के सिवाय जिन्हे कुछ सूझता नहीं है, और जो जुआ खेलने में मौज मानते हैं, वे मनुष्य नरकगामी होते हैं।

भाइयो! संसार मे बहुत पाप हैं, इतने पाप हैं कि इन सब का नाम गिनाने के लिए भी बहुत समय चाहिए। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आप अपनी आशा-तृष्णा को सीमित करो और परिग्रह को त्यागो या मर्यादित करो। जब आप महारभ और महापरिग्रह से निवृत्त हो जाएँगे तो महा पाप करने की भावना अपने आप हट जायगी और आप तब नरक से बच जाएँगे।

क्यों कि—

जे केई बाला इह जीवियट्ठी,
पावाइं कम्माइं करेंति रुद्दा।
ते घोर रूवे तमिसंधयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥

जो अज्ञानी जीव महारंभ और महापरिग्रह से युक्त हैं, पंचेन्द्रिय प्राणियों के घातक हैं और मांसभक्षण जैसे महा पापमय कृत्यों में संलग्न रहते हैं, वे असंयम रूप जीवन की इच्छा से प्रेरित

होकर जीवहिंसा आदि पाप कर्म करते है। वे तीव्र तर ताप वाले, और घोर अंधकार से युक्त अत्यन्त दुखदायी नरक में जाकर पड़ते हैं।

भाइयो! शास्त्रकारों की अनन्त दया है कि उन्होंने वीतराग प्रभु के उपदेश के अनुसार शास्त्रों में विस्तार पूर्वक नरक का स्वरूप जगत् के जीवों के समक्ष उपस्थित कर दिया है और साथ ही यह भी निर्देश कर दिया है कि नरकगति के कारण क्या है? इस सब वर्णन से हम काफी लाभ उठा सकते है और अपने आप को अतीव भीषण नरक से बचा सकते है। इस संबंध मे जिन्हे अधिक जानकारी प्राप्त करनी हो वे श्रीमत्सूत्रकृतांग सूत्र आदि का अध्ययन करें।

हमारे हृदय में भी आपके प्रति दयाभाव है। इसी से ह आपको यह वर्णन सुना रहे हैं और आपको नरक में जाने दे नहीं चाहते। मगर हमारा चाहना काम तभी आएगा जब हमारी बात मानेंगे। न मानेंगे तो हम क्या कर सकेंगे? ह तक हाथ लगाएँगे? जो विवेकवान् हैं, जिनमे केवल वर्त.. ही नहीं, भविष्य को भी सोचने की शक्ति है और जो दुःखो बचना चाहते हैं, वे मेरा कहना मानेंगे। जो नुगरे हैं वे इधर ध्या नहीं देंगे। उन्हें नरक की भीषण ज्वालाओ से हम तो क्या भी नहीं बचा सकते। अतएव कहना मानो और राग-द्वेष क्रो मान आदि कषयों का त्याग करके जन्म--मरण के चक्र से छुड़ लो तो नरक की यातनाओ से अनायास ही बच जाओगे औ आनन्द ही आनन्द पाओगे।

ब्यावर }
५-१०-४७ }

श्री दिवाकर दिव्य ज्योति

भाग १ से १५

मूल्य प्रत्येक भाग का २ रुपया

अगले भाग भी जल्दी ही आपकी सेवा में पेश किये जायँगे।

प्राप्ति स्थानः

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति

कार्यालय

मेवाड़ी बाजार, मु० पो० ब्यावर (अजमेर)

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्याख्यान के भाग एवं गद्य. पद्य पुस्तकें एवं अन्य जैन संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकें तथा पात्रे की जोडे, ओघे, पूंजणी, माला बैठके सूती ऊनो, रेत की जर्मनी घडी, सन्मति ज्ञान पीठ आगरा के साहित्य रेकार्ड जैन आरती आदि धार्मिक चीजें हमारे कार्यालय से प्राप्त हो सकती हैं। अवश्य खरीदकर पढें।

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति

कार्यालय

मेवाडी बाजार, मु. पो. ब्यावर (अजमेर)

केवल टाइटल जनता आर्ट प्रेस,
ब्यावर में छपा।